LiFE
Lifestyle for Environment

71 वां अंक – 2023

पर्यावरण

सत्यमेव जयते

भारत सरकार
पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय
नई दिल्ली

प्रकृतिः रक्षति रक्षिता
Nature Protects if She is Protected

GREEN GOOD DEEDS

लीना नन्दन
LEENA NANDAN

सत्यमेव जयते

सचिव
भारत सरकार
पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन
SECRETARY
GOVERNMENT OF INDIA
MINISTRY OF ENVIRONMENT, FOREST
& CLIMATE CHANGE

संदेश

मुझे प्रसन्नता है कि पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय अपनी हिंदी पत्रिका 'पर्यावरण' का 71वां अंक प्रकाशित करने जा रहा है। इस अंक में पर्यावरण संरक्षण, प्रदूषण नियंत्रण, वन एवं वन्य जीव संरक्षण, जैव विविधता, भारत में पाए जाने वाले औषधीय वृक्षों, फलों, फूलों और तितलियों आदि से संबंधित सारगर्भित लेखों एवं पर्यावरण से जुड़ी कुछ भावपूर्ण कविताओं को शामिल किया गया है। पत्रिका का उद्देश्य पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं पर एक-साथ नवीनतम जानकारी उपलब्ध कराना है।

मैं आशा करती हूं कि यह पत्रिका रोचक, ज्ञानवर्धक और प्रेरणादायक होगी। पत्रिका के उद्देश्यों की सफलता के लिए मेरी शुभकामनाएं।

(लीना नन्दन)

इंदिरा पर्यावरण भवन, जोर बाग रोड़, नई दिल्ली-110 003 फोन : (011)-2081-9408, 2081-9308, फैक्स : (011)-2081-9238
INDIRA PARYAVARAN BHAWAN, JOR BAGH ROAD, NEW DELHI-110 003, PH. : 011-2081-9408, 2081-9308, FAX : 011-2081-9238
E-mail : secy-moef@nic.in, Website : moef.gov.in

ऋचा शर्मा
RICHA SHARMA

सत्यमेव जयते

अपर सचिव
भारत सरकार
पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय
Additional Secretary
Government of India
Ministry of Environment, Forest
and Climate Change

संदेश

यह हर्ष का विषय है कि पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय अपनी हिंदी पत्रिका 'पर्यावरण' का 71वां अंक प्रकाशित करने जा रहा है। 'पर्यावरण' पत्रिका के इस अंक में पर्यावरण, पारिस्थितिकी, प्रदूषण, वानिकी, वन्यजीव, पशु-पक्षी, औद्योगिक अपशिष्ट के पुन:चक्रण एवं पुन:प्रयोग, वन एवं वन्यजीव संरक्षण, जैव विविधता आदि पर उपयोगी और उत्कृष्ट लेखों को संकलित किया गया है जो पर्यावरण संरक्षण के प्रति हमारी सोच एवं कर्तव्यों को प्रतिबिम्बित करते हैं।

सरकारी अधिकारियों एवं कर्मचारियों में हिंदी के प्रति रुचि पैदा करने तथा अपने ज्ञान, अनुभव, भावों व विचारों को सहज रूप से अभिव्यक्त करने के लिए इस प्रकार की पत्रिकाएं सशक्त माध्यम होती हैं। मंत्रालय द्वारा प्रकाशित की जा रही पर्यावरण पत्रिका का उद्देश्य राजभाषा हिंदी को सहज रूप में प्रचारित करने के प्रयास के साथ जन-सामान्य को अपनी भाषा में पर्यावरण के लगभग सभी पहलुओं पर एक साथ नवीनतम जानकारी उपलब्ध कराना है।

पत्रिका के प्रकाशन के लिए मेरी बहुत-बहुत शुभकामनाएं।

ऋचा

(ऋचा शर्मा)

इंदिरा पर्यावरण भवन, जोर बाग रोड़, नई दिल्ली-110 003, फोन: 011-24695242, ई–मेल: sricha@ias.nic.in
Indira Paryavaran Bhawan, Jor Bagh Road, New Delhi-110 003, Ph.: 011-24695242, E-mail: sricha@ias.nic.in

सत्यजित मिश्रा
SATYAJIT MISHRA

सत्यमेव जयते

संयुक्त सचिव
भारत सरकार
पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय
Joint Secretary
Government of India
Ministry of Environment, Forest &
Climate Change

संदेश

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की वार्षिक पत्रिका 'पर्यावरण' का 71वां अंक पर्यावरण के विभिन्न विषयों पर नवीनतम जानकारी उपलब्ध कराने के लिए समर्पित है। पर्यावरण पत्रिका के माध्यम से हमारा यह प्रयास रहता है कि मंत्रालय और इसके क्षेत्रीय व अधीनस्थ कार्यालयों के अधिदेशों, कार्यकलापों और नवीन अनुसंधानों की जानकारी हिंदी भाषा में आमजनों तक पहुंचे।

पत्रिका के इस अंक में मंत्रालय और इसके क्षेत्रीय एवं अधीनस्थ कार्यालयों के अधिकारियों द्वारा लिखे गए पर्यावरण विषयक उत्कृष्ट लेखों एवं कुछ भावपूर्ण कविताओं को शामिल किया गया है। मैं उन सभी अधिकारियों और कर्मचारियों को शुभकामनाएं देता हूं जिन्होंने इस पत्रिका में अपने लेख के माध्यम से जनमानस तक पर्यावरण विषयक जानकारी पहुंचाने का प्रयास किया है। साथ ही पर्यावरण प्रदूषण के विभिन्न आयामों व उनकी रोकथाम के विभिन्न उपायों पर भी प्रकाश डाला है। पत्रिका के लिए राजभाषा प्रभाग का महत्वपूर्ण योगदान भी प्रशंसनीय है। आशा है पत्रिका का यह अंक पर्यावरण के प्रति व्यावहारिक एवं उचित दृष्टिकोण बनाने में अपना योगदान देगा।

पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए मेरी ओर से शुभकामनाएं। मैं आशा करता हूं कि यह पत्रिका नित नए आयामों के साथ प्रगति की ओर अग्रसर हो।

स. मिश्रा।
(सत्यजित मिश्रा)

प्रथम तल, अग्नि विंग, इंदिरा पर्यावरण भवन, जोर बाग रोड, नई दिल्ली–110 003
फोन: 011–20819232, फैक्स: 011–20819137
1st Floor, Agni Wing, Indira Paryavaran Bhawan, Jor Bagh Road, New Delhi-110 003
Ph.: 20819232 Fax: 20819137, E-mail: satyajit.mishra@nic.in

आज़ादी का अमृत महोत्सव

प्रधान संपादक की कलम से .....

प्रिय पाठकों,

सृष्टि की उत्पति से लेकर आज तक मानव व प्रकृति में एक शाश्वत संबंध चला आ रहा है। प्रकृति ने मानवमात्र को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण जीव-जगत को अपनी जीवनदायी शक्ति से लाभान्वित किया है जिसके लिए हमें सदैव इसका कृतज्ञ होना चाहिए। परन्तु आज के इस भौतिकतावादी दौर में मानव अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा अपने जीवन को और अधिक वैभवशाली बनाने की होड़ में प्राकृतिक संसाधनों के अविवेकपूर्ण दोहन करने में लगा हुआ है जिसका परिणाम हम अनेक प्रकार की पर्यावरणीय समस्याओं के रूप में देख रहे हैं।

बेहतर जीवन यापन के लिए मानव नए-नए आविष्कार करता गया और साथ ही बड़े-बड़े उद्योगों व इमारतों का निर्माण करते हुए जाने-अनजाने प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करता गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि पर्यावरणीय समस्याएं जैसे जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, पारिस्थितिकी तंत्र में परिवर्तन, जलवायु परिवर्तन आदि का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष में दिखना शुरू हो गया। उद्योगों से निकलने वाला हानिकारक धुआं, प्रकृति में व्याप्त वायु को दूषित करने के साथ-साथ मानव जीवन के स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए मानव को स्वार्थ का परित्याग करना होगा और सामूहिक प्रयासों के द्वारा पर्यावरण को स्वस्थ और सुरक्षित रखने की दिशा में तत्काल प्रभाव से कार्य शुरू करना होगा। जन-मानस को प्रकृति के साथ जोड़ने तथा पर्यावरण संरक्षण के प्रति उन्हें जागरूक करने के उद्देश्य से मंत्रालय 'पर्यावरण' पत्रिका का 71वां अंक प्रकाशित करने जा रहा है।

'पर्यावरण' के इस अंक में पर्यावरण, पारिस्थितिकी, प्रदूषण, वानिकी, वन्यजीव, पशु-पक्षी, औद्योगिक अपशिष्ट के पुन:चक्रण एवं पुन:प्रयोग, वन एवं वन्यजीव संरक्षण, जैव विविधता आदि पर उपयोगी और उत्कृष्ट लेखों को संकलित किया गया है। हमारा उद्देश्य पाठकों को पर्यावरण-प्रदूषण, वन्यजीव, पेड़-पौधों आदि से संबंधित विभिन्न प्रकार की जानकारी से अवगत कराना है ताकि यह अंक पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक बन सके।

पत्रिका के इस अंक के बारे में प्रबुद्ध पाठकों के सुझाव सादर आमंत्रित हैं। मेरा अनुरोध है कि मंत्रालय के साथ-साथ इसके सभी अधीनस्थ कार्यालय के अधिकारी एवं कर्मचारी अधिक से अधिक संख्या में आगे आएं और अपने मंत्रालय की इस महत्वपूर्ण पत्रिका के लिए अपने लेख भेजें ताकि आगामी अंक के लिए और अधिक रोचक, ज्ञानवर्धक तथा उच्च स्तरीय सामग्री उपलब्ध हो सके।

(उर्मिला हरित)

पर्यावरण

(पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की पत्रिका) (अंक 71, 2023)

मुख्य संरक्षक

सुश्री लीना नंदन

सचिव, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय

संरक्षक

सुश्री ऋचा शर्मा

अपर सचिव, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय

मार्गदर्शन

श्री सत्यजित मिश्रा

संयुक्त सचिव एवं प्रभारी (राजभाषा)

प्रधान संपादक

सुश्री उर्मिला हरित

निदेशक (राजभाषा)

संपादक

श्री नारायण मल्या एल.

सहायक निदेशक (राजभाषा)

संपादन सहयोग

श्री परमानन्द शर्मा, परामर्शी (राजभाषा)

श्री प्रवीण कुमार, वरिष्ठ अनुवाद अधिकारी

टंकण सहयोग

श्री किरणपाल, कार्यालय सहायक

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं है कि संपादक मंडल उनके विचारों से सहमत हो। लेख/कविताओं की मौलिकता एवं प्रमाणिकता के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, इंदिरा पर्यावरण भवन, जोर बाग रोड, नई दिल्ली

अनुक्रम

क्र. सं.	रचना	रचनाकार (सर्वश्री / श्रीमती / सुश्री)	लेख / कविता	पृष्ठ
1.	हिमाचल प्रदेश द्वारा जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के प्रयास	ट्विंकल ठाकुर एवं केसर चंद	लेख	1
2.	हम 'पर्यावरण' से हैं 'पर्यावरण' हमसे नहीं	डॉ. विमल कुमार हटवाल	लेख	3
3.	हाइड्रोपोनिक खेती – एक उभरती हुई कृषि तकनीक	विनीत कुमार मल्ल	लेख	5
4.	लद्दाख भू–क्षेत्र की मूल्यवान जैवविविधता परिचय, चुनौतियां एवं संभावनाएं	सुरेश राना एवं ललित गिरी	लेख	10
5.	मेरी देन – भविष्य को	निर्मला चौहान	कविता	15
6.	वन रोपणी में प्लास्टिक का उपयोग : महत्व, समस्याएं और विकल्प	मनीष कुमार विजय एवं ननिता बेरी	लेख	16
7.	वन्यजीव अपराध और न्यायालयी (फोरेंसिक) जांच का महत्व	एस. इन्दिरा सुधा	लेख	18
8.	संतुलित पर्यावरण के लिए कार्बन प्रबंधन अभ्यास	रुबी पटेल एवं विनय गौड़	लेख	21
9.	विश्व में पेड़ बचाने के लिए 363 बिश्नोइयों का अद्वितीय बलिदान	अर्जुन सिंह सैनी	लेख	24
10.	सुनो पेड़ क्या कहता है	नाज़ रिज़्वी एवं हरप्रीत कौर कालरा	लेख	26
11.	सिंगल यूज प्लास्टिक का पृथ्वी एवं संपूर्ण पर्यावरण पर घातक प्रभाव	रामेश्वर	लेख	28
12.	राष्ट्रीय वन इन्वेंट्रीः प्रतिदर्श अभिकल्प एवं वानिकी में इसका महत्व	कमल पाण्डेय, योगेश कुमार बंसल एवं सुविक्रम प्रकाश	लेख	31
13.	सेमीकार्पस एनाकार्डियम (भिलवां) और फ्लैकोर्टिया इंडिका (कंटायी) मध्य भारत की औषधीय रूप से महत्वपूर्ण जंगली फल प्रजातियां	मनीष कुमार विजय	लेख	35
14.	भोजताल, भोपाल की तितली विविधता – तितली सर्वेक्षण एक प्रारंभिक प्रयास	डॉ. मनोज कुमार शर्मा, नाज़ रिज़्वी, डॉ. संगीता राजगीर एवं मो. खालिक	लेख	38
15.	पर्यावरण संरक्षण में क्षेत्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, भोपाल की भूमिका	डॉ. मनोज कुमार शर्मा एवं नाज़ रिज़्वी	लेख	41
16.	प्राचीन फलदार वृक्ष अनार	दिव्या मेहता	लेख	45

17.	बांस : काष्ठ का विकल्प	आलोक यादव एवं राहुल निषाद	लेख	47
18.	पर्यावरण और प्रदूषण	डॉ. वासंती रामचंद्रन	लेख	50
19.	पर्यावरण संरक्षण के लिए इलेक्ट्रॉनिक कचरा (ई–वेस्ट) का उचित प्रबंधन एवं निपटान	राकेश कुमार सिंह	लेख	55
20.	प्राकृतिक जल स्रोत : महत्व एवं संरक्षण	डॉ. राजेश कुमार मिश्रा	लेख	61
21.	भारत में वन्यजीव अपराध की नवीनतम प्रवृत्तियां	डॉ. मनोज कुमार	लेख	64
22.	पूनिका ग्रेनेटम (जंगली अनार): हिमाचल प्रदेश के मध्यवर्ती पहाड़ी क्षेत्रों के स्थानीय समुदायों की आजीविका का महत्वपूर्ण साधन	डॉ. स्वर्ण लता एवं शिव पॉल	लेख	70
23.	भारत में रोडोडेंड्रोन का वितरण, उपयोग व प्रवर्धन	डॉ. विनोद कुमार	लेख	73
24.	कूनो की शान चीता	सुशील कुमार चौरे	कविता	77
25.	आर्द्रभूमि क्षरण और इसके संरक्षण के उपाय	विपुला व्यास, संगीता सिंह, तन्मय कुमार भोई, वर्षा गिरी एवं अपूर्वा यादव	लेख	78
26.	कैंथ (पायरस पेशिया) : महत्वपूर्ण बहुपयोगी जंगली वृक्ष प्रजाति	डॉ. जोगिंद्र सिंह, डॉ. जगदीश सिंह एवं अखिल शर्मा	लेख	80
27.	कार्बन न्यूट्रल बनने की दिशा में भारतीय पहल और उसकी सार्थकता	प्रशांत कुमार शर्मा	लेख	82
28.	अकेसिया अलबिडा के द्वारा मरू क्षेत्र में आर्थिक उन्नति एवं हरियाली	डॉ. नवीन कुमार बोहरा	लेख	87
29.	काफल : एक अद्भुत जंगली फल	रण सिंह, शिवांगी ठाकुर एवं संदीप शर्मा	लेख	90
30.	उत्तर बस्तर की अमूल्य वन विरासत : एक परिदृश्य	दिग्विजय सिंह राठौड़, सौरभ दुबे, डॉ. ननीता बेरी, कौशल त्रिपाठी एवं डॉ. दर्शन के. यू.	लेख	93
31.	कैसे करें सामान्य जन–जीवन में "पुनर्चक्रण एवं पुनः उपयोग" की अनुपालना	मयंक निम्बार्क	लेख	97
32.	कुसुम : एक बहु उपयोगी वृक्ष	इरशाद अली सौदागर, सुषमा मरावी, त्रिलोक गुप्ता, मानसी मिश्रा एवं डॉ. फातिमा शिरीन	लेख	101

33.	क्रॉस लेमिनेटेड टिंबर : एक परिचय	प्रियंक मैठाणी, शक्ति सिंह चौहान एवं अनिल कुमार सेठी	लेख	105
34.	जंगली जामुन (प्रनूस कोर्नाटा) एक बहुउपयोगी जंगली खाद्य पौधा	कुलदेश कुमार एवं दृष्टि	लेख	112
35.	पर्यावरण	आशा. एस.	कविता	115
36.	खतरे में हल्दू के पेड़ का अस्तित्व	विवेक वर्मा एवं डॉ. फातिमा शीरीन	लेख	116
37.	जलवायु और आर्थिक कृषि वानिकी की लाभकारी पद्धतियां	पंकज कुमार एवं सत्य प्रकाश विश्वकर्मा	लेख	118
38.	दम तोड़ती दिल्ली की यमुना	हरप्रीत कौर कालरा	लेख	120
39.	तितलियां : एक मूल्यवान पर्यावरणीय संकेतक	शिवानी भटनागर, अमीन उल्लाह खान, राज कुमार सुमन एवं ममता सांखला	लेख	124
40.	पडरी : एक अद्भुत औषधि वृक्ष	रवि शंकर प्रसाद एवं रिकेश कुमार	लेख	127
41.	तेलंगाना राज्य के कुछ महत्वपूर्ण नट वनोत्पाद	पंकज सिंह, कोडम चन्द्रप्रकाश, मैरी चन्दना एवं वरूण सिंह	लेख	130
42.	ट्रांस – हिमालयः एक अनूठा पारितंत्र	दुष्यंत	लेख	132
43.	पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय में राजभाषा नीति का कार्यान्वयन	राजभाषा प्रभाग	रिपोर्ट	136

*****

हिमाचल प्रदेश द्वारा जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के प्रयास

– ट्विंकल ठाकुर एवं केसर चंद
गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र, मोहल, कुल्लू– 175 126, हिमाचल प्रदेश, भारत
लेखक : thakurtink09@gmail.com

पिछले कुछ दशकों में जलवायु परिवर्तन एक बड़ी चिंता का विषय बन गया है। दुनिया भर में मौसम बदल रहा है, हिमाचल प्रदेश राज्य कोई अपवाद नहीं है। हिमाचल प्रदेश पहाड़ी इलाकों, बारहमासी नदियों और साधन–संपन्न जंगलों से ढ़का हुआ है। राज्य के ज्यादातर निवासी प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हैं, परंतु जलवायु परिवर्तन से यह संसाधन नकारात्मक रूप से प्रभावित हो रहे हैं। तापमान और वर्षा में बदलाव जलवायु परिवर्तन को महसूस कराने के मुख्य कारकों में से एक है। इस बात का प्रमाण यह है कि जलवायु परिवर्तन सीधे तौर पर प्राकृतिक और खेती वाले पौधों दोनों को प्रभावित कर रहा है, साथ ही जल संसाधन (नदियों और नालों में पानी की मात्रा), जैव विविधता, कृषि/बागवानी तथा स्वास्थ्य आदि जैसे विभिन्न क्षेत्रों को भी प्रभावित कर रहा है। इसके अतिरिक्त, वह भू–भाग जो स्थायी रूप से बर्फ से ढ़का हुआ था, अब धीरे–धीरे घास के मैदान या जंगल में बदल रहा है।

जलवायु परिवर्तन के लिए प्रमुख रूप से मानवजनित गतिविधियां (वन कटाव, जीवाश्म ईंधन का जलाना, अपशिष्ट जलाना) जिम्मेदार हैं, लेकिन कुछ प्राकृतिक कारक भी जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार हैं। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग (आई. एम.डी.) ने हिमाचल प्रदेश में तापमान और भारी वर्षा की बढ़ती प्रवृत्ति की सूचना समय–समय पर दी है। परिणामस्वरूप, अधिकतम मौसम की घटनाएं भी हो रही हैं, जोकि, आई.पी.सी. ए.आर.6 की रिपोर्ट में भी बताया गया है। मौसम की गंभीर घटनाओं (जंगल में आग लगना, बाढ़, भूस्खलन, भूकंप, बादल फटना आदि) की बढ़ती तीव्रता और आवृत्ति क्षेत्र के स्थानीय लोगों की आजीविका को लगातार प्रभावित कर रही है। जलवायु परिवर्तन का बढ़ता खतरा मानव जीवन के साथ–साथ पशुधन को भी प्रभावित कर रहा है। हिमाचल प्रदेश को पहाड़ी इलाके के कारण देश में सबसे नाजुक और आपदा संभावित राज्यों में से एक माना जाता है। प्राकृतिक आपदाओं जैसे भूकंप, भूस्खलन, हिमस्खलन, जंगल की आग, मिट्टी का कटाव, सूखा और अन्य ने राज्य पर गंभीर तनाव पैदा किया है। इस प्रकार की आपदाओं से मानव जीवन के साथ–साथ जानवर और संपदा का भारी नुकसान हो रहा है।

हिमाचल प्रदेश में पिछले कुछ दशकों के दौरान जनसंख्या में वृद्धि, बंदोबस्त विस्तार, सड़क और अन्य ढांचागत विकास होने से जोखिम और भेद्यता अधिक गंभीर हो गयी है। इस संदर्भ में, हिमाचल प्रदेश सरकार ने जलवायु परिवर्तन के प्रभावों और इससे होने वाली आपदाओं को कम करने के लिए पहल की है। हिमाचल प्रदेश के कुल्लू जिला के "जिला आपदा प्रबंधन प्राधिकरण" ने "जुआरे" नामक एक पहल की है जिसमें, आपदा जोखिम में कमी के लक्ष्य को आगे बढ़ाने के लिए जिला कुल्लू के स्थानीय समुदायों को आपदा प्रबंधन, आपदा तैयारियों और आपदाओं की प्रतिक्रिया के लिए न्यूनतम लेकिन प्रभावी हस्तक्षेप और तकनीकी के संबंध में 61,498 लोगों को 219

अलग–अलग स्थानों पर प्रशिक्षित किया। ताकि स्थानीय समुदाय और समाज इस बात की बेहतर समझ हासिल कर सकें, कि जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप इन आपदाओं की भयावहता, आवृत्ति और प्रभाव कैसे बदल रहे हैं, और आपदाओं के परिणामों और शमन उपायों की उचित और बेहतर जानकारी होने पर वे इन प्रभावों को कम कर सकें। राज्य में सतत विकास और पर्यावरण सरंक्षण सुनिश्चित करने तथा वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर को कम करने के लिए, जल विद्युत और सौर ऊर्जा, इलेक्ट्रिक वाहन जैसे हरित ईंधन का उपयोग ज्यादा किया जा रहा है। राज्य जल विद्युत संसाधनों में बहुत समृद्ध साबित हुआ है और अब तक 10519 मेगावाट का दोहन किया जा चुका है।

जलवायु परिवर्तन होने की वजह से राज्य के कुछ क्षेत्रों में कृषि/बागवानी फसलें अत्यधिक प्रभावित हुई हैं, जिसके चलते फसल पैदावार में भारी गिरावट महसूस की गयी है। जिसके लिए फसलों में लगने वाले कीट तथा तापमान में होने वाले बदलाव, अनियमित वर्षा आदि जिम्मेदार हैं, जलवायु परिवर्तन होने से कीटों के लिए अधिक अनुकूल स्थिति पैदा हो गयी है। राज्य सरकार द्वारा विभिन्न योजनाएं प्रदान की गयी हैं, जिनसे कृषि प्रणाली पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम किया जा सके। इनमें विभिन्न योजनाएं जैसे, प्राकृतिक खेती, खुशहाल किसान योजना, उठाऊ सिंचाई योजना का निर्माण एवं बोरवैल योजना, परंपरागत कृषि विकास योजना, स्वर्ण जयंती परंपरागत बीज सुरक्षा योजना, मुख्यमंत्री नूतन पालीहाउस परियोजना, जल कृषि योजना, अच्छी गुणवत्ता युक्त बीजों का गुणन एवं उनका वितरण इत्यादि शामिल हैं।

हम सभी को इस तथ्य का ज्ञान है कि जलवायु परिवर्तन एक गंभीर समस्या का कारण बनता जा रहा है, जिसे तुरंत रोका तो नहीं जा सकता, परंतु इससे होने वाले प्रभावों को कम जरूर किया जा सकता है। जिसकी शुरुआत ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम करके सार्वजनिक परिवहन का उपयोग करके की जा सकती है। अतः हमें ऐसी तकनीकों का उपयोग करना होगा जिससे वैश्विक तापमान को कम किया जा सके, नहीं तो आने वाले समय में हमें इसका इससे भी ज्यादा भयंकर रूप देखने को मिल सकता है।

*****

हम 'पर्यावरण' से हैं, 'पर्यावरण' हमसे नहीं

– डॉ. विमल कुमार हटवाल
वैज्ञानिक 'ई'
एकीकृत क्षेत्रीय कार्यालय, चंडीगढ़

आज 'पृथ्वी' का अस्तित्व खतरे में है। 'पृथ्वी' को बचाओ। 'पृथ्वी' की रक्षा करो। हम अक्सर ये नारे सुनते रहते हैं। परन्तु ये कितने प्रासंगिक हैं और क्या इनमें सच्चाई है? यदि हम पृथ्वी पर 'जीवन' के क्रमिक विकास को देखें तो ये खोखले नारों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। हाँ, 'मानव जाति' स्वयं निश्चित रूप से खतरे में है क्योंकि वह प्रकृति के नियमों से लगातार खिलवाड़ कर रही है। 'जीवन' तो यहाँ मानव अस्तित्व से पहले भी रहा है और बाद में भी फलता–फूलता रहेगा।

'मानव जाति' पर उत्पन्न इस खतरे को उन्हीं के द्वारा फैलाये जा रहे 'प्रदूषण' की परणिति कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। हाल में ही घटित कुछ प्राकृतिक घटनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्थिति अब अत्यंत भयावह हो चुकी है और कुछ मामलों में यह 'अपरिवर्तनीय' भी है।

तो क्या 'पर्यावरण संरक्षण' के लिए किये जाने वाले प्रयासों को हमें बंद कर देना चाहिए? बिल्कुल भी नहीं। अपितु पर्यावरण के पंचतत्वों जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि और आकाश को संरक्षित व स्वच्छ बनाये रखने के लिए इन प्रयासों को अधिक प्रभावी तथा तेज किये जाने की आवश्यकता है। यह सर्वविदित है कि इन्हीं पंचतत्वों से ही मानव का शरीर भी बना हुआ है। यदि इन तत्वों में से किसी में भी असंतुलन आ जाये या वे प्रदूषित हो जाएँ तो मानव जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि विगत कुछ वर्षों में जलवायु परिवर्तन के कारण विश्व भर में असामान्य तापमान, बरसात, बाढ़ और अनियंत्रित दावाग्नि की घटनाओं में अप्रत्याशित वृद्धि देखने को मिली है। उदाहरण के लिए मार्च से मई, 2022 के महीनों के दौरान भारत में रिकॉर्ड अत्यधिक उच्च तापमान का अनुभव किया गया है, जो कि 122 वर्ष पूर्व शुरू किये गए अभिलेखों के बाद से सबसे गर्म महीने रहे हैं। इसी प्रकार असामान्य उच्च तापमान हाल के महीनों में पूरे यूरोप में तथा पिछले वर्ष कनाडा में भी देखने को मिले हैं। ऑस्ट्रेलिया के कुछ हिस्सों में हाल के दिनों में भारी वर्षा और अमेज़न के जंगलों में 2019 में लगी भीषण आग भी जलवायु परिवर्तन के हानिकारक प्रभावों के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

निर्विवाद रूप से ये हानिकारक प्रभाव समुद्री पारिस्थितिक तंत्र पर भी देखने को मिले हैं। उदाहरण के लिए मैंग्रोव वन, जो कि पृथ्वी पर सबसे अधिक उत्पादक समुद्री पारिस्थितिक तंत्रों में से एक है, विशेषज्ञों के अनुसार ये प्रति वर्ष 1–2 प्रतिशत की वैश्विक दर से समाप्त हो रहे हैं। यहाँ तक कि पिछले 20 वर्षों में दुनिया भर से एक तिहाई मैंग्रोव वन समाप्त हो चुके हैं। कमोबेश यही स्थिति विश्व भर में फैले प्रवालों के साथ भी है। एक व्यापक अंतरराष्ट्रीय रिपोर्ट के अनुसार, मुख्य रूप से जलवायु परिवर्तन के कारण 2009 के बाद के दशक में विश्व ने अपनी प्रवाल भित्तियों का लगभग 14 प्रतिशत खो दिया है।

अब प्रश्न उठता है कि क्या हम इन दुष्प्रभावों को रोक सकते हैं या कम कर सकते हैं? यदि हाँ तो कैसे? क्या विकास पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा? क्या विकास और पर्यावरणीय संतुलन दोनों एक साथ चल सकते हैं? ये तमाम ऐसे प्रश्न हैं जो वैश्विक स्तर पर चर्चा के केंद्र में हैं। इन्हीं को दृष्टिगत रखते हुए विश्व के तमाम देश सतत विकास के 17 लक्ष्यों के साथ पेरिस समझौते में प्रदूषण के दुष्परिणामों को कम करने और असंतुलन को साधने के लिए साथ आए। इस समझौते का लक्ष्य औद्योगिक काल के पूर्व के स्तर की तुलना में वैश्विक तापमान में बढ़ोत्तरी को 2 डिग्री सेल्सियस तक कम रखना है, और 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित रखने के लिए विशेष प्रयास करना है।

इस संबंध में यदि भारत के प्रयासों को देखा जाए तो व्यावहारिक रूप से हमारी प्रगति विश्वभर के देशों में अग्रणी है। सस्ती, स्वच्छ और अक्षय ऊर्जा का लक्ष्य इन सब में सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से अन्य सभी सतत विकास के लक्ष्यों से जुड़ा हुआ है। भारत ने 2030 तक अक्षय ऊर्जा के 500 गीगावॉट का महत्वाकांक्षी लक्ष्य रखा है, जो उस समय की स्थापित क्षमता का कुल 50 प्रतिशत होगी।

कार्बन डाइआक्साइड और अन्य ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन जलवायु परिवर्तन के कुछ प्रमुख कारणों में से एक और अधिकतर समस्याओं की जड़ है। अतः इस पर तत्काल कोई ठोस कदम उठाए जाने की आवश्यकता है। सर्वप्रथम, समेकित विकास को नकारात्मक रूप से प्रभावित किए बिना, पूर्व तथा वर्तमान में उत्सर्जित ग्रीनहाउस गैसों को तेजी से सोखने की जरूरत है और यह काम प्राकृतिक कार्बन सिंक में वृद्धि करके किया जा सकता है।

जापानी वनस्पतिशास्त्री अकीरा मियावाकी द्वारा विकसित 'मियावाकी विधि' कम समय में घने, देशी प्रजातियों के जंगलों को उगाने के लिए एक परखी हुई और अनुभूत वैज्ञानिक विधि है जो तेजी से प्राकृतिक कार्बन सिंक अर्थात जंगलों को बढ़ाने के काम आ सकती है। इस विधि ने खाली पड़ी जमीन को लघु–वनों में बदलकर शहरी वनीकरण की अवधारणा में क्रांति ला दी है। ये लघु–वन पारंपरिक तरीकों से लगाए गए पौधों की तुलना में 10 गुना तेजी से बढ़ते हैं कई गुना सघन और अधिक जैव विविधता वाले होते हैं। साथ ही तीन वर्षों के बाद रखरखाव–मुक्त भी हो जाते हैं। युद्धस्तर पर ऐसी सरकारी / बिना स्वामित्व वाली, गैर–सरकारी, छोटी, बड़ी खाली पड़ी जमीनों की शिनाख्त कर मियावाकी विधि से वन लगाए जाने की आवश्यकता है।

ये लघु–वन शहरी क्षेत्रों में वाहनों के उत्सर्जन से हो रहे वायु प्रदूषण को कम करने में बहुत प्रभावी हैं। साथ ही हिमालयी क्षेत्र में हो रहे विकास कार्यों जैसे सड़कों का निर्माण, उनका चौड़ीकरण, रेलवे लाइन तथा सुरंगों के निर्माण आदि से निकले हुए चट्टानी मलबे (अपशिष्ट) को निर्दिष्ट स्थल पर एकत्र कर वहां पर भी मियावाकी विधि अपनाई जा सकती है। बंद खनन स्थलों के पुनरुद्धार के लिए भी यह विधि निर्विवाद रूप से कारगर बताई गई है।

आइए हम यह स्वीकार करें कि हमारी पर्यावरण के प्रति असंवेदनशीलता के कारण इस खूबसूरत ग्रह पर 'मानव जाति' को खतरा उत्पन्न हो चुका है और 'जलवायु परिवर्तन पर पेरिस समझौता' संभवतः इस खतरे को दूर करने का अंतिम अवसर है।

*****

हाइड्रोपोनिक खेती - एक उभरती हुई कृषि तकनीक

विनीत कुमार मल्ल
अनुसंधान सहायक (पर्यावरण)
सी. पी. प्रभाग
पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय

वर्तमान परिदृश्य में तेजी से शहरीकरण, औद्योगीकरण और ग्लोबल वार्मिंग के कारण हिमखंडों के पिघलने से कृषि योग्य भूमि कम होती जा रही है। मिट्टी की उर्वरता भी संतृप्त स्तर पर पहुंच गई है और उर्वरक, कीटनाशकों तथा रसायनों के अत्यधिक मात्रा में उपयोग के कारण उत्पादकता में सार्थक वृद्धि नहीं हो रही है। इसके अतिरिक्त, कुछ कृषि योग्य क्षेत्रों में मिट्टी की खराब उर्वरता, लगातार सूखे की स्थिति, जलवायु और मौसम के स्वरूप की अप्रत्याशितता, तापमान में वृद्धि, नदी प्रदूषण, खराब जल प्रबंधन और भारी मात्रा में पानी की बर्बादी, भूजल स्तर में गिरावट, पारंपरिक कृषि से होने वाले खाद्य उत्पादन को खतरे में डाल रही है। ये घटनाएं भूमि में फसल उगाने की क्षमता को प्रभावित कर रही हैं, जिससे दुनिया भर में भोजन की कमी हो रही है।

ऐसी परिस्थितियों में केवल कृषि उत्पादन के ओपन–फील्ड सिस्टम का उपयोग करके निकट भविष्य में पूरी आबादी का भरण–पोषण करना असंभव हो जाएगा। हाल के वर्षों में हमने कृषि विज्ञान के क्षेत्र में फसल रोटेशन, पॉलीकल्चर, पर्माकल्चर और हाइड्रोपोनिक खेती (या हाइड्रोपोनिक्स) सहित स्थायी खाद्य उत्पादन के तरीकों में एक बड़ा बदलाव देखा है।

वर्तमान परिदृश्य में उपरोक्त चुनौतियों का सामना करने के लिए मृदा–रहित कृषि एक महत्वपूर्ण तकनीक के रूप में उभरकर सामने आ रही है।

हाइड्रोपोनिक खेती क्या है?

हाइड्रोपोनिक्स ग्रीक शब्द 'हाइड्रो' (पानी) और 'पोनोस' (श्रम) से निकला है, इसलिए इसका शाब्दिक अर्थ है 'पानी का काम करना'। यह शब्द बिना मिट्टी के फसल उगाने की एक विधि को संदर्भित करता है। यह अनुचित लग सकता है क्योंकि हम जानते हैं कि पौधे अपने विकास के लिए मिट्टी से आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त करते हैं और मिट्टी के बिना वे संभवतः जीवित नहीं रह सकते। चूंकि हाइड्रोपोनिक पौधे पानी के घोल के माध्यम से सभी आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त करते हैं, इसलिए मिट्टी की उपस्थिति इनके अस्तित्व के लिए अनावश्यक हो जाती है।

हाइड्रोपोनिक खेती की प्रमुख आकर्षक विशेषताओं में से एक यह है कि इस पद्धति को छोटे और साथ ही बड़े पैमाने पर भी प्रयोग किया जा सकता है। जिन लोगों के पास बड़ा स्थान नहीं है, जैसे कि वे लोग जो अपार्टमेंट में रहते हैं या जिनके पास बगीचा नहीं है, वे फसल उगाने के लिए इस तकनीक का सफलतापूर्वक उपयोग कर सकते हैं।

यद्यपि हाइड्रोपोनिक्स खेती का एक स्थायी तरीका प्रदान करने के लिए एक कुशल तकनीक है, लेकिन कुछ पौधे ऐसे भी हैं जो हाइड्रोपोनिक स्थिति में ठीक से विकसित नहीं होते हैं। ऐसी श्रेणी में वे शामिल हैं, जिनकी जड़ें गहरी होती हैं, जैसे आलू, या फिर वे पौधे जो लंबे होते हैं जैसे बेलें।

हाइड्रोपोनिक खेती कैसे काम करती है?

पौधे की वृद्धि के लिए तीन चीजें आवश्यक हैं: धूप, पानी और पोषक तत्व। पारंपरिक स्थितियों में पौधे मिट्टी में उगाए जाते हैं जो एक माध्यम के रूप में कार्य करते हैं जिससे उन्हें आवश्यक पोषक तत्व और पानी मिलता है। हाइड्रोपोनिक पौधे वे सभी आवश्यक पोषक तत्व एक घोल के माध्यम से प्राप्त करते हैं जो विभिन्न प्रकार के उपकरणों के माध्यम से उनकी जड़ों तक पहुंचता है।

हाइड्रोपोनिक खेती के प्रकार

साधारणतः हाइड्रोपोनिक सेटिंग को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :

- **ऐक्टिव प्रणाली** : इस प्रणाली में पोषक तत्वों को पौधों की जड़ों तक पानी के घोल द्वारा पम्प के माध्यम से पहुंचाया जाता है। कुछ किसानों को यह प्रणाली जटिल प्रतीत हो सकती है। इस प्रणाली में प्रयुक्त पंप पोषक तत्वों के घोल को जलाशय से जड़ों तक ले जाते हैं। अतिरिक्त घोल, जिसे जड़ें अवशोषित नहीं कर पाती हैं, वापस जलाशय में चला जाता है।

- **पैसिव प्रणाली** : इस प्रणाली में पोषक तत्वों के घोल को प्रसारित करने के लिए किसी पंप की आवश्यकता नहीं होती है। इसके बदले में पौधों को पानी के घोल में लटका कर रखा जाता है जिससे पोषक तत्व विभिन्न तरीकों से जड़ों तक पहुँचते हैं जैसे गुरुत्वाकर्षण, कोशिका प्रणाली, इत्यादि। इस प्रकार की हाइड्रोपोनिक खेती को नियोजित करना सरल है क्योंकि इसमें कोई पंप सम्मिलित नहीं है। हालांकि, उत्पादकों को बार–बार पानी बदलना पड़ता है। इसके अतिरिक्त पंपों की अनुपस्थिति से शैवाल में वृद्धि हो सकती है और पोषक तत्वों का घोल खराब हो सकता है।

हाइड्रोपोनिक खेती के लाभ

हाइड्रोपोनिक्स एक कुशल तकनीक है और निकट भविष्य में खाद्य उत्पादन के क्षेत्र में प्रयोग किए जाने वाले सबसे संभावित टिकाऊ तरीकों में इसकी गिनती होगी। यह तकनीक कई फायदे प्रदान करती है जिनका उल्लेख नीचे किया गया है :

1. **बड़ी आबादी के लिए उच्च गुणवत्ता वाले भोजन का उत्पादन** : एक इनडोर तकनीक होने के कारण हाइड्रोपोनिक प्रणाली में कीटनाशकों की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसलिए कीट के संक्रमण का कम खतरा होता है। साथ ही पौधों को आवश्यक पोषक तत्व सीधे घोल से प्राप्त होते हैं जिससे बीमारियों से मुक्त रहते हैं और तेजी से विकसित होते हैं। हाइड्रोपोनिक्स से न केवल उच्च गुणवत्ता वाले भोजन का उत्पादन होता है अपितु इसकी सहायता से शहरी क्षेत्रों में घनी आबादी के लिए स्थानीय भोजन की उपलब्धता को और भी सुनिश्चित किया जा सकता है।

2. **कीट और कवक की कम दर** : इस तकनीक में पौधों को उगाने के लिए मिट्टी की उपस्थिति अनिवार्य नहीं होती है, इसलिए पौधों में मिट्टी से होने वाली बीमारियाँ भी कम होती हैं। चूंकि यह खेती इनडोर में की जाती है, इसलिए पौधों को वृद्धि के लिए एक नियंत्रित वातावरण मिल पाता है। इस कारण सूक्ष्मजीवी संक्रमण और कीट संक्रमण की

संभावना कम हो जाती है। अतः पौध संरक्षण में ज्यादा मेहनत व्यर्थ नहीं होती है।

3. **बेहतर उपज** : इस तकनीक में पोषक तत्वों को सीधे पौधे की जड़ों तक पहुंचाया जाता है जिससे उन्हें छोटी जड़ों के साथ तेजी से बढ़ने में सहायता मिलती है। इनडोर सेटिंग के कारण उपज भी सकारात्मक रूप से प्रभावित होती है क्योंकि उत्पादकों को मौसम पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। इसका अर्थ यह है कि मौसम में बदलाव, कीटों के प्रकोप और खेत में जानवरों और पक्षियों से परेशानी जैसे बाह्य कारकों के कारण उपज के नुकसान का सामना किए बिना, पूरे वर्ष बेहतर उपज के साथ फसलें उगाई जा सकती हैं।

4. **कम पानी की खपत** : पारंपरिक कृषि पद्धति की तुलना में हाइड्रोपोनिक खेती में बहुत कम पानी का उपयोग होता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि पोषक जल के घोल का पुनः उपयोग किया जाता है और एक हाइड्रोपोनिक सेटिंग में पाइप के माध्यम से पुनः परिचालित किया जाता है। अतिरिक्त पानी को फिर पोषक घोल जलाशय में वापस कर दिया जाता है। सूखा संभावित क्षेत्रों के लिए यह एक बहुत ही उपयोगी कृषि तकनीक है। इस खेती में कुल पानी के लगभग 1/20 भाग की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत पारंपरिक खेती में बड़ी मात्रा में पानी की खपत होती है, जिससे अधिकांश पानी वाष्पीकरण और खराब सिंचाई पद्धतियों के कारण व्यर्थ हो जाता है। अंत में पौधों के अंदर दिये गए पानी का केवल एक छोटा हिस्सा ही पहुंचता है।

5. **समय की बचत** : पारंपरिक कृषि पद्धतियों के लिए किसानों से जुताई, छंटाई, पानी देना और धूमन की देखरेख के लिए बहुत प्रयास और समय की आवश्यकता होती है और वह सब उपज की गुणवत्ता और मात्रा के संदर्भ में हमेशा पर्याप्त या संतोषजनक नहीं हो सकते हैं। इसके विपरीत, हाइड्रोपोनिक्स में हमें केवल इसे अपने पसंदीदा स्थान पर स्थापित करने और उसकी निगरानी करने की आवश्यकता है। इसके लिए शुरुआती निवेश और समय की आवश्यकता हो सकती है। लेकिन अगर इसे अच्छी तरह से प्रबंधित किया जाए, तो यह लंबी अवधि में अत्यंत लाभदायक सिद्ध होती है।

6. **क्षेत्र/क्षेत्रीय विविधता का इष्टतम उपयोग** : हाइड्रोपोनिक खेती द्वारा प्रदान किया जाने वाला एक बहुत प्रभावशाली लाभ यह है कि यह जगह बचाता है। पारंपरिक कृषि में पौधों को मिट्टी में पोषक तत्वों की खोज करनी पड़ती है जिससे पौधों की जड़ें गहरी होती हैं। दूसरी ओर, हाइड्रोपोनिक्स में जड़ों तक पोषक तत्वों की सीधे आपूर्ति की जाती है इसलिए पौधों को उनकी खोज नहीं करनी पड़ती है। परिणामस्वरूप उनके पास छोटी और कम घनी जड़ें होती हैं। ऐसे पौधे कम जगह लेते हैं जिससे हाइड्रोपोनिक्स छोटे और बंद क्षेत्रों, रेगिस्तानी प्रवण क्षेत्रों और अत्यधिक ठंडे क्षेत्रों में रहने वाले शहरवासियों के लिए एक आदर्श विकल्प बन जाता है। इस मिट्टी रहित खेती के लिए कुल जगह का लगभग 1/5 भाग आवश्यक है। हाइड्रोपोनिक खेती में पोषक तत्वों का कुशल उपयोग संभव हो पाता है क्योंकि पूरी प्रक्रिया नियंत्रित होती है और पौधों को आवश्यक

मात्रा में मैक्रो और माइक्रो पोषक तत्वों की आपूर्ति की जाती है।

हाइड्रोपोनिक्स के माध्यम से उगाए गए पौधे पारंपरिक खेती के माध्यम से उगाए गए पौधों की तुलना में बेहतर उपज और उच्च विकास दर प्राप्त करते हैं। पारंपरिक पौधे मिट्टी में मौजूद पोषक तत्वों पर निर्भर होते हैं जो आगे विभिन्न पर्यावरणीय मापदंडों पर निर्भर होते हैं। उदाहरण के लिए आर्द्रता और तापमान एवं पानी की गुणवत्ता में भिन्नता पौधों को तनाव में डाल सकती है और उसकी जैव रसायन क्षमता नकारात्मक रूप से प्रभावित हो सकती है। परिणामस्वरूप पौधों की वृद्धि और उपज की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

हाइड्रोपोनिक खेती की सीमाएं

पारंपरिक कृषि की तुलना में हाइड्रोपोनिक कृषि आसान और अधिक प्रभावशाली है। हालाँकि, कई लाभों के बावजूद, हाइड्रोपोनिक खेती की कुछ सीमाएँ भी हैं।

1. **उच्च स्थापना लागत** : हाइड्रोपोनिक प्रणाली स्थापित करना महंगा है। बड़े पैमाने पर इस सिस्टम के प्रयोग हेतु विशेष रूप से संशोधित डिज़ाइन का उपयोग करना पड़ता है। इस प्रणाली को स्थापित करने के लिए उपयोग किए जा रहे स्वचालित और प्रौद्योगिक यंत्र जैसे पोषक टैंक, जल उपचार संयंत्र, वायु पंप, प्रकाश व्यवस्था, जलाशय, तापमान नियंत्रक, अम्लता नियंत्रण, और पाइपलाइन प्रणालियों सहित संरचना की प्रारंभिक स्थापना के लिए एक विशाल प्रारंभिक पूंजी निवेश की आवश्यकता हो सकती है। हालांकि प्रतिफल अधिक है, परंतु इसकी उच्च लागत को देखते हुए, यह मृदा रहित कृषि उच्च मूल्य वाली फसलों तक ही सीमित है।

2. **उच्च–स्तरीय रखरखाव और निगरानी** : हाइड्रोपोनिक प्रणाली में विभिन्न घटक एक समन्वित तरीके से काम करते हैं जिसके परिणामस्वरूप पौधों को पोषक तत्वों की सुचारू आपूर्ति होती है। इनमें से किसी भी घटक की किसी भी प्रकार की विफलता से बचने के लिए उत्पादकों को अत्यधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। पंप सही ढंग से काम कर रहे हैं या नहीं, तापमान और प्रकाश पर्याप्त है या नहीं, यह जांचने के लिए निरंतर निगरानी आवश्यक है।

3. **निरंतर विद्युत आपूर्ति पर निर्भरता** : यह तकनीक अपने विभिन्न घटकों को लगातार संचालित करने के लिए बिजली पर अत्यधिक निर्भर होती है। यदि बिजली गुल हो जाती है तो पूरी प्रणाली के विफल होने का खतरा होता है, जो पौधों को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है। हालांकि नई पीढ़ी के फार्म जैसे बोवेरी फार्मिंग सौर ऊर्जा संचालित हाइड्रोपोनिक प्रणाली, इनडोर वर्टिकल हाइड्रोपोनिक गार्डन इत्यादि का भी उपयोग हो रहा है जहां सौर ऊर्जा प्राथमिक बिजली आपूर्ति का केंद्र है। फिर भी प्रारंभिक परिचालन लागत को देखते हेतु विद्युत स्रोत की निरंतरता को बनाए रखना एक गंभीर चुनौती है।

4. **तकनीकी विशेषज्ञ की आवश्यकता** : हाइड्रोपोनिक प्रणाली में बहुत सारी तकनीकी शामिल हैं। प्रणाली में सम्मिलित उपकरणों और तकनीकों को सुचारू रूप से कार्यरत रखने हेतु उचित तकनीकी ज्ञान और उसके

प्रयोग विशेषज्ञ की आवश्यकता होती है। उत्पादक की उचित विशेषज्ञता के अभाव में पौधों के बढ़ने की संभावनाएँ कम हो जाती हैं, जो उपज को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है जिससे भारी नुकसान हो सकता है।

5. **जल जनित रोगों के लिए संवेदनशीलता** : हाइड्रोपोनिक्स के माध्यम से पौधों की खेती करने से मिट्टी से होने वाली बीमारियों का खतरा कम हो जाता है। लेकिन इस प्रणाली के माध्यम से पानी के निरंतर प्रसार के कारण पौधों में कुछ जल जनित रोगों के संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है। कभी–कभी, ये रोग पानी के घोल से एक पौधे से दूसरे पौधे में फैल जाते हैं। यह संभावित रूप से प्रणाली के जुड़े सभी पौधों को नष्ट कर सकता है।

6. **जैविक लेबल की विवादास्पद प्रकृति** : हम जानते हैं कि हाइड्रोपोनिक खेती में कीटनाशकों का उपयोग शामिल नहीं है। क्या हाइड्रोपोनिक पौधों को जैविक के रूप में प्रमाणित करने का यह पर्याप्त कारण हो सकता है? कुछ जैविक खेती करने वाले इस विचार के विरुद्ध हैं क्योंकि जैविक खेती में मिट्टी की गुणवत्ता और उसकी उर्वरता में सुधार लाने की दिशा में काम करना भी शामिल है। चूंकि हाइड्रोपोनिक प्रणाली मिट्टी का उपयोग नहीं करती है, इसलिए इस दृष्टिकोण से उन्हें जैविक प्रमाण पत्र देना गलत है। हालांकि, संयुक्त राज्य अमेरिका में नौवें सर्किट कोर्ट ने हाइड्रोपोनिक प्रणाली से उत्पादित पौधों को प्रमाणित जैविक होने की अनुमति देने के पक्ष में फैसला सुनाया, बशर्ते वे रासायनिक उर्वरकों, आनुवंशिक रूप से संशोधित जीवों (जीएमओ) और सीवेज से मुक्त हों।

निष्कर्ष :

हाइड्रोपोनिक खेती घर के अंदर पौधों को उगाने की एक कुशल तकनीक है, और इसके अपने विभिन्न प्रकार के लाभ हैं। यह उत्पादकों को कीटनाशकों के उपयोग के बिना उच्च उपज में पोषक तत्वों से भरपूर पौधों का उत्पादन करने में सहायता करता है। हालाँकि इस तकनीक की कुछ सीमाएं भी हैं, लेकिन इसके फायदे कमियों की तुलना में अधिक हैं। इस मिट्टी रहित खेती और ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोतों के दोहन के उचित ज्ञान के साथ, व्यक्ति, फर्म और समुदाय पूरे वर्ष रोग मुक्त पौधों को विकसित करने के लिए हाइड्रोपोनिक्स का उपयोग कर सकते हैं।

भविष्य में इस उद्योग के तेजी से बढ़ने की उम्मीद है, क्योंकि मृदा आधारित पारंपरिक कृषि की स्थिति दिन–प्रतिदिन कठिन होती जा रही है। विशेष रूप से भारत जैसे देश में, जहां शहरी आबादी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, उपज की मात्रा और गुणवत्ता में सुधार करने हेतु इस मृदा रहित कृषि को अपनाना एक बहुत ही मूल्यवान कदम सिद्ध हो सकता है। साथ ही यह हमारी खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में अत्यंत सहायक सिद्ध हो सकता है।

****

लद्दाख भू-क्षेत्र की मूल्यवान जैवविविधता: परिचय, चुनौतियां एवं संभावनाएं

सुरेश राना, ललित गिरी
गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
लद्दाख क्षेत्रीय केंद्र, लेह, लद्दाख (संघ राज्य क्षेत्र)

लद्दाख भारत के ट्रांस–हिमालयी क्षेत्र में स्थित भू–क्षेत्र को, हिमालयी क्षेत्र की जैविक, और सामाजिक एवं सांस्कृतिक संपदा के क्षेत्र में अद्वितीय माना जाता है। लद्दाख का भू–क्षेत्र समुद्र तल से 3 हजार मीटर से अधिक ऊंचाई पर स्थित है। यह क्षेत्र अपनी जटिल पर्यावरणीय परिस्थितियों के लिए जाना जाता है। यहां शीतकाल में निम्न तापमान–30 डिग्री सेल्सियस और वर्षा लगभग 150 मि.मी. तक ही होती है। यहां आर्द्रता 50 प्रतिशत से कम और सूर्य विकिरण अर्थात पराबैंगनी किरणों का उत्सर्जन अधिक प्रभावकारी होता है। इन चुनौतियों के बाद भी प्रकृति ने इस क्षेत्र में खूबसूरत झीलें, नदियां, चारागाह एवं ऊंचे दर्रे दिए हैं, जो जीव–जन्तुओं और पादपों के विशेष आवास बनाते हैं। दुनियां में जैवविविधता सूचनाओं का संग्रह करने वाली विश्व प्रसिद्ध विश्वसनीय संस्था ग्लोबल बायोडायवर्सिटी इनफार्मेशन फैसिलिटी (जीबीआइएफ) ने लद्दाख क्षेत्र को जैव विविधता की दृष्टि से सम्मानजनक माना है।

जीबीआइएफ आंकड़ों के अनुसार यहां कुल 2462 प्रजातियां विद्यमान हैं, जिसमें पादप, जन्तु, जीवाणु और शैवाल प्रजातियां सम्मिलित हैं। यहां 1682 पादप प्रजातियां पाई जाती हैं, जिसमें 1638 पुष्पीय पादप, 9 अपुष्पीय, 14 ब्रायोफाईट्स तथा 13 टेरिडोफाईट्स कुल की हैं। शुष्क जलवायु होने के कारण यहां सर्वाधिक झाड़ियों वाली वनस्पतियां होती हैं। नदियों के किनारे और घाटियों में यह अधिक देखी जाती हैं। कुछ स्थानिक पादप विश्व में केवल इसी भू–भाग में पाए जाते हैं और लद्दाख को नई पहचान भी देते हैं। इसमें एलिस्सुम लाडाकेंसिस, एस्ट्रैगलस ड्रैसियनस, एस्ट्रैंगलस लाडाकेंसिस, बर्बेरिस यूलिसिना, लाडाकिएला क्लिमेसी, पोआ सुरुआना, पोर्टेटिला करोकोरमि, पोटेंटिला आर्निथोपोडा, सेनेकियो लाडाकेंसिस आदि प्रमुख हैं। किंतु ये प्रजातियां इस क्षेत्र में भी बहुत कम पाई जाती हैं। अर्थात इनका आवास वितरण अत्यंत कम है।

लद्दाख के पादपों की एक और विशेषता है कि वे द्वितीय उपापचय अधिक करने के कारण औषधीय प्रभावों में अधिक होते हैं। इसके पीछे यहां के भौतिक पर्यावरणीय दबाव हैं, जिसमें पादपों को कम वर्षा, कम आर्द्रता, अधिक धूप और विकिरण आदि परिस्थितियों का सामना करना होता है। इसी कारण लद्दाख की स्थानीय परम्परागत औषधि परम्परा भी सम्पन्न है। अध्ययनों के अनुसार लद्दाख में प्रसिद्ध पारम्परिक चिकित्सा सोवा रिग्पा में 397 पादप प्रजातियों से अनेक बीमारियों का उपचार किया जाता है। उदाहरण के लिए स्थानीय औषधीय पादपों में से 65 पादपों का उपयोग मानव शरीर को शीत, सर्दी, खांसी, ज्वर आदि से बचाने के लिए किया जाता है, वहीं 68 प्रजातियां मूत्र विकारों और गुर्दे सम्बंधी रोगों के उपचार में प्रयुक्त होती हैं। विभिन्न रोगों के उपचार में अत्यधिक प्रभावशाली मानी जाने वाली औषधि (रोडियोला रोजिया) स्थानीय नाम 'सोलो' यहां पाई जाती है, जिसे देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने वर्ष 2019 में लद्दाखी संजीवनी कहा था। कुछ औषधीय पादप चित्र 1 में दिखाए गए हैं।

लद्दाख की विषम परिस्थितियों और कम वनस्पति

के बाद भी यहां की जैव–विविधता आश्चर्यजनक है। अनुकूलन के लिए यहां के जीवों में अनेक विशेषताएं देखी जाती हैं। जैसे पक्षियों का प्रवासी होना, स्तनधारी जीवों की त्वचा में मोटे रोवे, घनी पूंछ, बड़े नथून, शीत के अनुसार ढला शरीर आदि। यहां पाए जाने वाले अधिकांश स्तनधारी जीव मुख्यतः कुत्ता, हिरन, मूषक, खरगोश, बिल्ली आदि परिवार से हैं। लद्दाख का राज्य पशु हिम तेंदुआ विश्वविख्यात है। वह यहां की विशिष्ट प्रजाति है। इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंज़र्वेशन ऑफ़ नेचर (आई.यू.सी.एन.) ने जिसे अति संवेदनशील श्रेणी में रखा है। रिपोर्ट के अनुसार लद्दाख में इसकी सर्वोत्तम आवासीय परिस्थिति होने के कारण इसकी सर्वाधिक संख्या लद्दाख में ही दर्ज हुई है। लद्दाख भू–क्षेत्र में 665 जलाशय मौजूद हैं, जो पर्यटन के साथ–साथ स्थानीय व प्रवासी पक्षियों के भोजन और प्रजनन के महत्वपूर्ण स्थान हैं। अध्ययनों के अनुसार यहां दर्ज 478 पक्षी प्रजातियों में से लगभग 110 प्रवासी प्रजातियां हर वर्ष प्रजनन और भोजन के लिए यहां आती हैं। ब्लैक नैक क्रेन एक विशेष प्रवासी पक्षी है जो भारत में प्रजनन हेतु हर वर्ष केवल लद्दाख के चांगथांग में देखे जाते हैं, जो पर्यटन के आकर्षण का केंद्र बनते हैं। इसके अतिरिक्त सरिसृप, उभयचर, मछली, कीट आदि की कुछ प्रजातियां इस क्षेत्र में देखी जा सकती हैं। लद्दाख में पाए जाने वाले कुछ जानवर चित्र 2 में दिखाए गए हैं।

बीते दो–तीन दशकों में इन क्षेत्र में अनेक बाह्य और आंतरिक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं। क्षेत्र में पर्यटन का विकास तेजी से हुआ है। जिस कारण अनेक मानव जनित दबावों से भी क्षेत्र गुजर रहा है। इसमें आवासीय विकास, होटल व यातायात सेवाओं का विस्तार, पर्यटन के दबाव, प्रदूषण, अपशिष्ट का संचयन आदि प्रमुख हैं। मानव जनित दबावों के साथ जलवायु परिवर्तन ने भी लद्दाख क्षेत्र के संवेदनशील पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव डाले हैं। वहीं यहां के औषधीय पादपों के दोहन की समस्या भी सामने आई है। जिस कारण अनेक औषधीय प्रजातियां संकट ग्रस्त होती जा रही हैं। आई.यू.सी.एन. रिपोर्ट के अनुसार लद्दाख में 69 जीव और पादप प्रजातियां विभिन्न संकटग्रस्त श्रेणी में हैं अर्थात आज लद्दाख का पर्यावरण और पारिस्थितिकी तथा विशेष जैव विविधता के संरक्षण पर चिंतन शुरू हो गया है।

अनुसंधानकर्ता मानते हैं कि यहां की जैव विविधता से अनेक अवसर खोजे जा सकते हैं। सतत विकास विधियों से यहां के समाज की आजीविका को बढ़ावा दिया जा सकता है। इसमें यहां के औषधीय पौधों का कृषिकरण व वन्यजीव पर्यटन आदि से युवाओं को जोड़कर उनकी सतत आजीविका जैसे उपाय प्रमुख हो सकते हैं।

तालिका 1: लद्दाख भू–क्षेत्र की जैवविविधता

समूह	कुल प्रजातियां
क. पौधे	
1. पुष्पीय पादप	1638
2. अपुष्पीय पादप	9
3. ब्रायोफाइट	14
4. टेरिडोफाइट	13
ख. जानवर	
1. स्तनधारी	42
2. पक्षी	478
3. उभयचर और सरीसृप	9
4. मछली	19
5. अकशेरूकीय	197
ग– कवक	13
घ– जीवाणु	30

वर्गिकी समूह	महत्वपूर्ण प्रजातियां
औषधीय पादप प्रजातियां	रोडियोला रोजिया, रोडियोला इम्ब्रिकाटा, एकोनिटम हेटरोफिलम, एसेंथोलिमोन लाइकोपोडायोइड्स, अर्नेबिया यूक्रोमा, एलियम प्रेजवलस्कियानम, एरेनेरिया ब्रायोफिला, बर्बेरिस यूलिसिना, कैपैरिस स्पिनोसा, कोरीडालिस फ्लैबेलेट, क्रेमेन्थोडियम एलिस, लाइसियम रूथेनिकम, नेपेटा फ्लोकोसा, पेगनम हरमाला, फिजोक्लेना प्रील्टा, रुम टिबेटिकम, आदि।
स्तनधारी प्रजातियां	हिमतेंदुआ, हिमालयन ब्राउन बीयर, हिमालयन मर्मोट, साइबेरियन आइबेक्स, लद्दाख यूरियाल, रेड फॉक्स, अर्गली, नीलीभेड़, यूरेशियन लिंक्स, लद्दाख पिका, माउंटेन वीजल, पलास की बिल्ली, तिब्बती चिकारा, तिब्बती लोमड़ी, तिब्बती भेड़िया, तिब्बती जंगली गधा, वूली खरगोश, आदि।
पक्षी प्रजातियां	बार–हेडेड गूज, दाढ़ी वाले गिद्ध, ब्लैक–नेक क्रेन, ब्लूथ्रोट, बूटेड ईगल, ब्रैंड्ट्स माउंटेन फिंच, चुकार, कॉमन मूरहेन, यूरेशियन कर्लेव, यूरेशियन ईगल–उल्लू, यूरेशियन मैगपाई, फेरुगिनस डक, गोल्डन ईगल, ग्रेट क्रेस्टेड ग्रीब, हिमालयन स्नोकॉक, हॉर्नड लार्क, इबिस्बिल, लिटिल आउल, ग्राउंड टिट, पेरेग्रीन फाल्कन, रॉबिन एक्सेंटर, तिब्बती लार्क, तिब्बती सैंडग्राउस, तिब्बती स्नोकॉक, वॉलक्रीपर, सफेद पंखों वाला रेडस्टार्ट, आदि।

चित्र 1: लद्दाख में पाए जाने वाले कुछ औषधीय पादप (1. रोडियोला रोजिया, 2. जेनसियाना नुबिजिना, 3. हायोसायमस नाइजर, 4. एकोनिटम हेटरोफिलम, 5. सौसुरिया ग्लैसिअलिस, 6. इनुला ओबटुसिफोलिया, 7. डैक्टिलोरिज़ा हटाजिरिया, 8. क्रेमेन्थोडियम एलिसि, 9. डेल्फीनियम ब्रुनोनिएनम, 10. रोजा वेबबियाना, 11. बर्बेरिस यूलिसिना, 12. हिप्पोफे रमनोइड्स)

चित्र 2. लद्दाख में पाए जाने वाले कुछ जानवर (1. हिम तेंदुआ, 2. यूरियाल, 3. चिरु, 4. कियान्ग, 5. ब्लैक नैक क्रेन, 6. ब्राउन हेडेड गल्ल, 7. हिमालयन स्नो कॉक, 8. लॉन्ग टेल मारमोट, 9. पइका)

***

मेरी देन - भविष्य को

निर्मला चौहान
प्रधान निजी सचिव
एकीकृत क्षेत्रीय कार्यालय, देहरादून

उज्ज्वल गगन कहाँ है हम खोजते हैं।
वायु सर सर बहती थी साफ सुथरी भरी–भरी
कहाँ गई हम खोजते हैं।
स्वच्छ और शुद्ध नीला जल ही जल
प्राणदायक, जीवन संचारक जल से धरती थी भरी भरी
कहाँ गया हम ढूंढते हैं।
जल निर्जल हो गया प्रदूषित, विकृत, निर्जीव, जीवनविहीन।
भरा– भरा वन–जीवन – प्राणदायक, आश्रयदाता, चहचहाता गूंजता, महकता, खिलता और मुस्कुराता हुआ
कहाँ गया हम खोजते हैं।
खोजते हैं संताप भोगते हैं हम।
धरा, वन, नभ और जल जो जीवनदायक, फलदायक, दानी और भलाकर्ता हैं
कहाँ गए हम खोजते हैं।
जागो अब नवजीवन की अलख जगाओ मिलजुल कर सोचें और बढें।
जो हुआ उससे सीखें और आशाविहीन जीवन को जगाओ
और जीवन संचार को बढ़ाओ।
हमने भोगा पर आने वाली पीढ़ियों को सुरक्षित जीवन मिले
जगत का पहिया चलता रहा
जीवन पथ पर हम बढ़ते रहें खिलते रहें।
हम रहें न रहें हम यादों में नहीं और फ्रेम पर फोटो के रूप में नहीं
चहकती जिंदगी और जीवन से भरा–पूरा जीवन को भोगते हुए
हमारी आने वाली पीढ़ियों के मन में रहे।
आओ हम सब मिलकर वनों, जलवायु और पर्यावरण को स्वच्छ और जीवन से भरपूर बनाएं ताकि जीवन
आगे बढ़ता रहे और सुरक्षित रूप से खुशियों के साथ चलता रहे।

***

वन रोपणी में प्लास्टिक का उपयोग: महत्व, समस्याएं और विकल्प

मनीष कुमार विजय एवं ननिता बेरी
उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर (म.प्र.)
ई–मेलः manishvijay89@gmail.com, vijaym@icfre.org

प्लास्टिक को एक अत्यंत लचीली और अनुकूलनीय सामग्री के रूप में विकसित किया गया था। लेकिन यह आज हमारे सामने सबसे गंभीर पर्यावरणीय चुनौतियों में से एक बन गई है। भारत में हर व्यक्ति सालाना 3 किलो प्लास्टिक कचरा पैदा करता है। एकल उपयोग वाले प्लास्टिक कचरे के उत्पादन के मामले में भारत शीर्ष 100 देशों में 94 वें स्थान पर है। सरकार ने 1 जुलाई, 2022 से एकल–उपयोग वाले प्लास्टिक के उत्पादन, आयात, भण्डारण, वितरण, बिक्री और उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया है। पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने समय समय पर राज्यों के प्रधान मुख्य वन संरक्षकों को राज्य के वन विभागों के तहत वनीकरण और अन्य गतिविधियों हेतु नर्सरी पौध उगाने के लिए विभिन्न आकारों के पॉलीथिन थैली के उपयोग को कम से कम करने के लिए निर्देशित किया है।

नर्सरी में प्लास्टिक का उपयोग अक्सर खरपतवार नियंत्रण, पैकेजिंग, बीज बुआई, भण्डारण और अन्य उद्देश्यों के लिए किया जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्लास्टिक के अपने फायदे हैं, यह किफायती, हल्का, परिवहन, रख–रखाव में आसानी एवं महत्वपूर्ण बात है कि इसने बागवानी, कृषि और वानिकी में कई नवाचारों की सुविधा प्रदान की है जिससे लागत और समय दोनों की बचत हुई है। समस्या प्लास्टिक के साथ एक सामग्री के रूप में नहीं है, बल्कि हमारी दिखावटी संस्कृति और पुनः उपयोग की कमी के साथ है। दुनिया के प्लास्टिक कचरे का केवल 9 प्रतिशत ही रिसाइकल किया जाता है। इसका अधिकांश हिस्सा अंततः हमारे महासागरों एवं भूमिभराई (लैंडफिल) में अपना रास्ता खोज लेता है, वातावरण में छोड़ दिया जाता है या जला दिया जाता है।

मृदा स्वास्थ्य पर प्लास्टिक के कुप्रभावः

पर्यावरण में प्लास्टिक तीन अलग–अलग तरीकों (क्षतिग्रस्त होना, खराब होना या त्याग दिया जाना) से प्रवेश करता है। उर्वरक के रूप में सीवेज सलज के उपयोग द्वारा भी प्लास्टिक सीधे मिट्टी में मिल सकता है। दुर्भाग्य से, अपशिष्ट उपचार विधियां घरेलू, वाणिज्यिक और औद्योगिक अपशिष्ट में पाए जाने वाले सभी माइक्रोप्लास्टिक को पूरी तरह से समाप्त नहीं करती हैं। पर्यावरण में प्रवेश करने वाले प्लास्टिक के लिए इनमें से कोई भी मार्ग अंततः माइक्रोप्लास्टिक्स में परिणत होता है, जिसे पुनःप्राप्त करना लगभग कठिन होता है। माइक्रोप्लास्टिक्स (व्यास में 5 मि.मी. से कम के कण) मिट्टी के जीव जंतु, उर्वरता, जल निकासी और संरचना को बाधित कर सकते हैं, जो अंकुरण, जड़ विकास को नुकसान पहुंचा सकते हैं। प्लास्टिक के कण भी अपनी भौतिक विशेषताओं के कारण मिट्टी में नमक, रोगजनकों और खतरनाक यौगिकों के लिए एक चुंबक के रूप में काम करते हैं। यांत्रिक खेती, जल निकासी और मिट्टी के जीवों के माध्यम से, माइक्रोप्लास्टिक्स समय के साथ इकट्ठा हो सकते हैं और मिट्टी की रूपरेखा में गहराई से प्रवेश कर सकते हैं। प्लास्टिक को मिट्टी में प्रवेश करने से रोकना, मिट्टी की खाद्य उत्पादन और भविष्य में कार्बन को स्टोर करने की क्षमता को सुरक्षित रखने का एक तरीका है। खाद्य सुरक्षा की गारंटी और जलवायु परिवर्तन से मुकाबला करने के लिए स्वस्थ मिट्टी आवश्यक है।

वन रोपणी में प्लास्टिक कल्चर को कम करने के विकल्प : हाल ही में, दुनिया भर के दो–तिहाई से अधिक देशों ने किसी न किसी रूप में प्लास्टिक प्रतिबंध कानून लागू किए हैं। परन्तु वर्तमान में प्लास्टिक का वास्तव में कोई अच्छा विकल्प नहीं है। उम्मीद है, भविष्य में प्लास्टिक निर्मित वस्तुओं के लिए और अधिक विकल्प होंगे क्योंकि प्लास्टिक प्रदूषण रोकने हेतु जागरूकता बढ़ी है।

क. **बीज बुआई में काम आने वाले औजारों के विकल्प** : पॉलीथीन थैली के स्थान पर लकड़ी के बक्से, नारियल खोल, जूट के बर्तन, बांस के बर्तन, जूट की थैली, बांस के पत्ते के बर्तन, मिट्टी के बर्तन, धातु के बर्तन, एल्यूमीनियम या तांबे के पत्ती बैग एवं अनुपयोगी कागज लुगदी के बर्तन भी विकल्प के रूप में सुझाए गए हैं। वर्ष 2009–2011 के दौरान एफआरआई, देहरादून में विकसित कागज और कपड़े के थैले पॉलीथीन थैली के सामाजिक एवं आर्थिक रूप से अनुकूल अच्छे विकल्प हो सकते हैं।

ख. **पौध संरक्षण और इन्सुलेशन के विकल्प** : ग्लास क्लॉच, हेसियन और स्ट्रॉ, और कार्ड बोर्ड इन्सुलेशन गैर–प्लास्टिक विकल्पों के उदाहरण हैं। अधिक लागत और टूटने का अधिक जोखिम होने के बावजूद, वे अक्सर काफी लंबे समय तक चलते हैं।

ग. **प्लास्टिक मल्च के विकल्प** : नर्सरी में प्लास्टिक मल्च एक जटिल समस्या पेश करते हैं। दुनिया भर में कृषि प्लास्टिक की दूसरी सबसे बड़ी श्रेणी प्लास्टिक मल्च (ग्रीनहाउस प्लास्टिक के बाद दूसरा) है। पेपर मल्च पूरी तरह से जैवघटीय (बायोडिग्रेडेबल) है। इस तकनीक का उपयोग करते हुए नर्सरी बेड को शिल्प कागज (क्राफ्ट पेपर) के एक बड़े रोल के साथ शामिल किया गया है, और किनारों को गीली घास का उपयोग करके सील कर दिया गया है। अन्य जैवघटीय विकल्पों में खाद, पुआल, लकड़ी के चिप्स या कवर फसलों की मोटी परत के साथ क्षेत्र को कवर करना शामिल है।

घ. **प्लास्टिक पैकेजिंग के विकल्प** : प्लास्टिक पैकेजिंग से बचना चुनौतीपूर्ण हो सकता है, चाहे वह उत्पादों या इनपुट (बीज) को बेचने के लिए उपयोग किया जाता हो। ग्राहक इन्हें पुनः प्रयोज्य कंटेनरों में खरीद सकते हैं जिन्हें वे उपयोग करने के बाद जमा के लिए वापस कर सकते हैं। बेयररूट पौधे खरीदना पीट और प्लास्टिक के उपयोग को कम कर सकता है।

भविष्य के दृष्टिकोण :

यद्यपि खाद्य पदार्थों के व्यापार से प्लास्टिक को पूरी तरह समाप्त करना असंभव है, फिर भी यह महत्वपूर्ण है कि बेहतर विकल्प होने की स्थिति में प्लास्टिक पर हमारी निर्भरता को कम करने के तरीकों पर विचार किया जाए। पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार ने प्लास्टिक बैगों के उपयोग को समाप्त करने के लिए कदम उठाए हैं। जड़ संवर्धन संचालन के साथ बेयररूट पौध का उपयोग एक तरीका हो सकता है। जैवघटीय (बायोडिग्रेडेबल) बर्तनों का उपयोग भी प्लास्टिक बर्तनों के अच्छे विकल्प के रूप में सुझाया गया है, हालांकि, इन पात्रों में पानी की हानि पॉलीथीन की थैलियों की तुलना में काफी अधिक पायी गई है। इसलिए वर्तमान स्थिति में रूट ट्रेनर ही पॉलीथीन थैली के लिए एकमात्र विकल्प है जिसका उपयोग वानिकी वृक्षारोपण कार्यक्रमों में विश्वसनीय रूप से किया जा रहा है। वन रोपणी संचालक तब तक प्लास्टिक सामग्री पर भरोसा करना जारी रखेंगे जब तक कि अधिक मजबूत वैकल्पिक समाधान जो विनिर्माण की मांगों का पूरा कर सकने में सक्षम, व्यापक रूप से उपलब्ध और सस्ते नहीं हो जाते। प्लास्टिक पर पूरी तरह से प्रतिबंध लगाने के बजाए तीन क्षेत्रों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है, पहला डिस्पोजेबल के बजाए पुनः प्रयोज्य वस्तुओं का उपयोग करना, दूसरा कम प्लास्टिक का उपयोग करना और तीसरा प्लास्टिक उत्पादों के पुनर्चक्रण को बढ़ाना।

***

वन्यजीव अपराध और न्यायालयी (फोरेंसिक) जांच का महत्व

एस. इन्दिरा सुधा
सहायक निदेशक (प्रशिक्षण)
वन्यजीव अपराध नियंत्रण ब्यूरो, मुख्यालय

परिचय

वन्यजीवों को सभी (वन्य) वनस्पतियों और जीवों (जानवरों, पक्षियों, मछलियों, पौधों और सूक्ष्म जीवों) के रूप में परिभाषित किया जाता है जो जंगलों और अन्य अलग–अलग क्षेत्रों में अपने प्राकृतिक आवास में रहते हैं। वन्यजीवों की न तो खेती की जाती है और न ही उन्हें पालतू बनाया जाता है।

वन्यजीव जैव विविधता के लिए आवश्यक है क्योंकि यह खाद्य श्रृंखला को बनाए रखने में मदद करता है और विभिन्न प्राकृतिक प्रक्रियाओं की स्थिरता को बनाये रखता है। वन्यजीवों को संगठित संघ (सिंडिकेट) द्वारा तस्करी के माध्यम से देश से बाहर ले जाया जाता है, जो जानवरों या उनके शरीर के अंगों को भोजन, विदेशी जानवर पालतू बनाने, हाथी दांत (Ivory) के शो–पीस, बाघ तथा तेंदुए के पंजे के गहने, सीप, पंख, खाल से बने उत्पादों के लिए खरीददारों की मांगों को पूरा करने के लिए बेचते हैं तथा पारंपरिक चिकित्सा के लिए, गैंडा का सींग, जानवरों के दांत और आंतरिक अंग भी इस्तेमाल करते हैं।

व्यापार में अधिकांश जानवर बाघ, हाथी, पैंगोलिन, गैंडा, शेर, मगरमच्छ, कछुआ, नेवला, विदेशी पक्षी, जीवित सरीसृप, कांच की ईल (Glass eel) और अन्य हैं। वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 में अनुसूचियां हैं जिनके तहत वन्यजीवों की रक्षा की जाती है और अवैध वन्यजीव व्यापार दंडनीय है।

वन्यजीव अपराध

वन्यजीव अपराधों के अंतर्गत वन्यजीव का शिकार करना, खरीदना या बेचना, जंगली जानवरों को मारना, तस्करी करना, विदेशी प्रजातियों को अवैध रूप से आयात करना, अवैध कब्जे, उत्पादों की जमाखोरी या उनके आवास में गड़बड़ी करना आदि शामिल हैं। अवैध शिकार, प्रजातियों का व्यापार, अवैध लकड़ी काटना, संरक्षित प्रजातियों पर कब्जा करना, संरक्षित वनस्पतियों और जीवों का दोहन ऐसे कार्य हैं जो वन्यजीव संरक्षण के लिए खतरा पैदा करते हैं।

यह एक ऐसा अपराध है जो पूरे देश में फैला है और पर्यावरणीय मुद्दों के कारण विश्व स्तर पर प्रभाव डालता है। वन्यजीव अपराध ड्रग्स, आतंकवाद और मानव तस्करी के बाद चौथा सबसे बड़ा अपराध है।

वन्यजीव अपराध एक संगठित अंतरराष्ट्रीय अपराध है। यह जैव विविधता के लिए खतरा है और अपराध से उत्पन्न धन को देश की अर्थव्यवस्था को नष्ट करने के लिए निवेश किया जाता है। यह एक मूक अपराध है, अपराधियों पर मुकदमा चलाने के लिए कोई चश्मदीद गवाह नहीं मिलता है। ऐसे में कोर्ट में अपराधी बरी हो जाता है।

अपराध स्थल पर साक्ष्य

जब कोई अपराध होता है, तो अनजाने में अपराध स्थल पर सबूत छूट जाते हैं और यह जांचकर्ताओं का कर्तव्य है कि वे अपराध और अपराधियों को जोड़ने

के लिए सबूतों का पता लगाएं और अपराधियों पर मुकदमा चलाकर न्याय करें। जांचकर्ताओं द्वारा दिए गए सबूतों के आधार पर वन्यजीव शिकारियों को सजा दी जाती है और दंडित किया जाता है।

अपराधी की उपस्थिति को स्थापित करने और अपराध के दृश्य के पुनर्निर्माण में वन्यजीव फोरेंसिक की बड़ी भूमिका होती है। अपराध स्थल पर सबूत एकत्र करने से लेकर अदालत कक्ष में गवाही तक, फोरेंसिक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

फोरेंसिक का महत्व

वन्यजीवों की मौत के कारणों का मूल्यांकन करने और वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग करके साक्ष्य के लिए अपराध स्थल की जांच करने के लिए फोरेंसिक विज्ञान का अनुप्रयोग होता है। यह विज्ञान की एक शाखा है जो गैर–मानवीय और मानवीय साक्ष्यों की पहचान और तुलना से संबंधित है। फोरेंसिक विज्ञान जंगली जानवरों और लुप्तप्राय प्रजातियों से रक्त, फर और पंजों के नमूनों के संग्रह के माध्यम से मानव द्वारा शिकार जानवरों की मौत के सबूत की जांच से वन्यजीव अपराध के अपराधियों का पता लगाने के लिए एक सबूत प्रदान करता है।

प्रजातियों के जीनोम का निर्धारण करने की तकनीक, डीएनए नमूनों का परीक्षण, जीपीएस टैग वाले जानवरों का पता लगाना, मौके पर अंगुली चिन्ह (फिंगरप्रिंट) के सबूत, जानवरों की त्वचा के स्केल्स से उंगलियों के निशान उठाना, ये सभी वन्यजीव फोरेंसिक का हिस्सा हैं।

फोरेंसिक वैज्ञानिक किसी विशेष वन्यजीव लेख की प्रामाणिकता की पुष्टि करने के लिए बताए गए संकेतों की तलाश करते हैं। उदाहरण के लिए, प्रजातियों की वास्तविकता को स्थापित करने के लिए हाथीदांत में श्रेगर पैटर्न (Schreger Pattern) नामक क्रॉसिंग की अनूठी रेखाओं की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार तेंदुए के दांतों की विशेष आकार, बाघ की धारियों में एकरूपता की उपस्थिति उनकी असलियत का साक्ष्य है। जब जहर से किसी जानवर की मौत का संदेह होता है, तो फोरेंसिक टॉक्सिकोलॉजिकल (Forensic Toxicological) तकनीकों को नियोजित किया जाता है।

फोरेंसिक सीरोलॉजी (Forensic Serology) प्रजाति–विशिष्ट एंटीबॉडी की पहचान करने में मदद करती है और जानवरों की प्रजातियों को स्थापित करने में मदद करती है। अपराध स्थल पर अपराधी की उपस्थिति को स्थापित करने के लिए सुलगाये हुए सिगरेट का टुकडा, वीर्य, पसीने या बलगम आदि से डीएनए प्राप्त किया जाता है।

नवीनतम तकनीक

फेसिअल रिकग्निशन (चेहरे की पहचान संबंधी) तकनीक, आइसोटोप विश्लेषण, कपाल तथा दांत (क्रैनियो–डेंटल) सिग्नेचर स्टडी, नैनोपोर सीक्वेंसिंग (Nanopore Sequencing) एटीआर एफ़टी–आईआर (Atr Ft-IR) स्पेक्ट्रोस्कोपी (Spectroscopy) और केमोमेट्रिक्स (Chemometrics) का उपयोग, माइटोकॉन्ड्रियल (Mitochondrial) डीएनए (DNA) विश्लेषण जैसी नई प्रौद्योगिकियां वन्यजीवों के कुछ आगामी फोरेंसिक उपकरण हैं। स्कॉटलैंड के शोधकर्ताओं ने फ्लोरोसेंट पाउडर विधियों का उपयोग करके पंखों और अंडों से उंगलियों के निशान बरामद किए। पोर्ट्समाउथ विश्वविद्यालय ने कम चिपकने वाली जिलेटिन परत के साथ जिलेटिन उत्थानक (Lifter) का उपयोग करके फोरेंसिक फिंगरप्रिंटिंग तकनीक विकसित की है और पैंगोलिन के स्केल्स से उंगलियों के निशान उठाए हैं।

निष्कर्ष

फोरेंसिक, अवैध वन्यजीव व्यापार को हल करने का एकमात्र समाधान नहीं है, लेकिन यह वन्यजीवों के संरक्षण के लिए आयुधशाला (Arsenal) का एक हथियार है। जब भी अपराध का कोई मामला पेश किया जाता है तो अदालतें साक्ष्य की मांग करती हैं। पुलिस तथा वन अधिकारी को नवीनतम तकनीकों का ज्ञान होना जरूरी है और यह सुनिश्चित करना है कि अपराध स्थल को संसाधित करते समय अधिक से अधिक साक्ष्य एकत्र किए जा सकें, हिरासत श्रृंखला की स्थापना उचित रूप से पैक किए गए साक्ष्य और फोरेंसिक लैब के लिए उचित दस्तावेजीकरण मुद्दे को सुदृढ़ता प्रदान करने में सहायक होंगे।

"जय हिंद"

***

संतुलित पर्यावरण के लिए कार्बन प्रबंधन अभ्यास

रूबी पटेल एवं विनय गौड़
वन जैवविविधता संस्थान, हैदराबाद
पत्राचार लेखक: rubypatelssac@gmail.com

परिचय :

दुनिया भर में जनसंख्या में तेजी से वृद्धि के परिणामस्वरूप, अत्यधिक उत्पादन के लिए, कृषि भूमि पर अधिक से अधिक दबाव डाला जा रहा है। कृषि योग्य भूमि कम होती जा रही है, जिससे किसान उर्वरकों और कीटनाशकों का अधिक से अधिक उपयोग करने पर मजबूर हो रहे हैं, जो ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन और प्रदूषण के मुख्य कारण हैं। खाद्य क्षेत्र, वैश्विक ग्रीन हाउस गैस (जीएचजी) उत्सर्जन में लगभग चौथाई (26%) का योगदान देता है, जिसमें से केवल फसल उत्पादन के कारण, खाद्य क्षेत्र का 27% ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन होता है। एशियाई देशों में, कृषि उपकरणों में फसल अवशेषों और जीवाश्म ईंधन को जलाना, कृषि रसायनों के अंधाधुंध उपयोग और एशियाई देशों में चावल की खेती, ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन के मुख्य कारण हैं।

एशियाई देशों की मिट्टी में दुनिया की कृषि भूमि का 25% मृदा कार्बनिक कार्बन होता है, फिर भी वे भूमि क्षरण के लिए मध्यम से बेहद कमजोर हैं। सघन खेती और जुताई के कारण, मृदा कार्बन का नुकसान होता है। मृदा कार्बन के नुकसान को पूरा करने के लिए, उपयुक्त कार्बन प्रबंधन रणनीतियां जैसे भौतिक–रासायनिक संरक्षण के माध्यम से मिट्टी में कार्बन की मात्रा को बढ़ाने के लिए रणनीतियों को अपनाने की संस्तुति की गई है। एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (आईएनएम), पुराने विकास वन संरक्षण, कृषि–वानिकी, संरक्षण कृषि (सीए), संतुलित उर्वरीकरण और फसल विविधीकरण, बेहतर मिट्टी संरचना निर्माण, बेहतर जड़ संरचना और कुल संबद्ध कार्बन के स्थिरीकरण को बढ़ावा देता है। कार्बन प्रबंधन से मिट्टी की उर्वरता में सुधार होता है और अनाज और पुआल की उपज में भी सुधार होता है। अधिक उपज मिट्टी में अधिक बायोमस जोड़ देती है। मृदा कार्बन पृथक्करण जलवायु परिवर्तन से संबंधित मुद्दों का एकमात्र रामबाण नहीं हो सकता है, लेकिन निश्चित रूप से समृद्ध मिट्टी की उर्वरता, उन्नत कृषि उत्पादन के साथ–साथ मानवजनित जीएचजी उत्सर्जन को ऑफसेट करने के लिए अनुकूली–शमन का एक तरीका है।

धान की खेती, वैश्विक CH_4 उत्सर्जन का 11% हिस्सा है। किसान फसल की पैदावार में सुधार के लिए कृत्रिम उर्वरक का उपयोग करते हैं, जो उत्सर्जन का तेजी से बढ़ता स्रोत है जिसकी 2001 से लगभग 37% की वृद्धि दर है। इसके अतिरिक्त, कई मशीनों का उपयोग जीवाश्म ईंधन के जलने से CO_2 उत्सर्जन में योगदान देता है। मिट्टी के कार्बन को वायुमंडल में छोड़ने में योगदान देने वाला एक अन्य कारक असंतुलित उर्वरक का उपयोग करना है। भोजन और फसल उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को समझने और दैनिक खाद्य जरूरतों को पूरा करने के लिए, कृषि हितधारकों को दो प्रकार के आकलन, अर्थात् शमन और अनुकूलन करना चाहिए। अनुकूलन कृषि स्रोतों से जीएचजी उत्सर्जन को कम करेगा जबकि शमन कृषि और अन्य स्रोतों से जीएचजी के उत्सर्जन को कम करेगा। दोनों रणनीतियों को विभिन्न नीतियों के माध्यम से विनियमित किया जा सकता है जैसे कि कार्बन के आर्थिक मूल्य को सुनिश्चित

करना और इसका पृथक्करण कृषि क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण विकास होगा। कार्बनिक रूप में मिट्टी में कार्बन को पकड़ने के लिए अनुकूली–शमन तकनीक CO_2 उत्सर्जन को नियंत्रित करने के साथ–साथ मिट्टी की गुणवत्ता और स्वास्थ्य में सुधार के लिए एक संभावित कारक है।

कार्बन प्रबंधन अभ्यास

महत्वपूर्ण कार्बन प्रबंधन पद्धतियां नीचे दी गई हैं :

1. कृषि वानिकी
2. **Old & Growth** वन संरक्षण
3. संरक्षण कृषि
4. कवर फसलें
5. एकीकृत और संतुलित पोषण

1. कृषि वानिकी :

कृषि–वानिकी एक विशिष्ट भूमि–उपयोग प्रणाली है जिसमें अस्थायी अनुक्रम या स्थानिक व्यवस्था के किसी रूप में फसल और पशुधन घटकों के साथ बारहमासी पौधे (पेड़, झाड़ियाँ, आदि) का एकीकरण शामिल है। वर्तमान में, स्थायी वातावरण और जलवायु परिवर्तन शमन और अनुकूलन में कृषि वानिकी प्रथाओं की भूमिका पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है। कृषि क्षेत्रों में, कृषि वानिकी जैसे अनाज, फलीदार, दलहनी और चारा फसलों के साथ–साथ तेजी से बढ़ने वाले, नाइट्रोजन फिक्सिंग वाले पेड़ों और झाड़ियों के रोपण, मिट्टी की उर्वरता में सुधार और कटाव को कम करने के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है।

2. Old & Growth वन संरक्षण : जैव–विविधता को बनाए रखने, स्थलीय कार्बन भंडारण को स्थिर करने और अन्य पारिस्थितिकी तंत्र कार्यों को प्रदान करने के लिए पुराने–विकास (Old & Growth) और अक्षुण्ण वन महत्वपूर्ण हैं। ये वन दुनिया की वन भूमि की सतह (12 एम किमी2) का 22% योगदान करते हैं, जिनमें से तीन देशों (रूस, ब्राजील और कनाडा) के पास उस क्षेत्र का लगभग दो–तिहाई हिस्सा है। पुराने पेड़, कम पोषक तत्व और कम पानी को अवशोषित करते हैं, लेकिन पुराने पेड़ से कार्बन जो मिट्टी और बायोमास में जमा होता है, वह युवा पौधों से बहुत अधिक हो सकता है। कुल कार्बन घनत्व (154 Mg ha^{-1}) और निर्जीव पौधों का कार्बन घनत्व (120 Mg ha^{-1}), आसपास के छोटे पौधों के कार्बन घनत्व (5 Mg ha^{-1}) की तुलना में पुराने विकास वाले जंगलों में अधिक है। इसलिए, वनों की कटाई और क्षरण को कम करके पुरानी वृद्धि वाली वन संरक्षण रणनीति को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

3. संरक्षण कृषि : संरक्षण कृषि प्रबंधन एक तकनीक है जिसका उद्देश्य फसल की भूमि में प्राकृतिक संसाधनों और जैव विविधता का संरक्षण करना है, और यह तकनीक तीन सिद्धांतों पर आधारित है: i) न्यूनतम मिट्टी की जुताई, ii) स्थायी जैविक कवर या कवर फसलें, और iii) फसल विविधीकरण। प्रत्येक सिद्धांत व्यक्तिगत रूप से और संयुक्त रूप से मिट्टी में कार्बन के निर्माण में योगदान देता है। कम जुताई, आच्छादित फसलें और फसल विविधीकरण पारंपरिक जुताई प्रथाओं की तुलना में मिट्टी के पृथक्करण की क्षमता को बढ़ाता है।

4. कवर फसलें : कवर फसल, एक विशिष्ट पौधे की फसल है जो मुख्य रूप से फसल की उपज के बजाय मिट्टी के लाभ के लिए उगाई जाती है। कवर फसलों में क्लोवर, वेच, लोबिया और हरी खाद की फसलें, राईग्रास, ओट्स, विंटर राई आदि जैसी घासों का मिश्रण शामिल है। कवर फसलें मिट्टी के स्वास्थ्य और गुणवत्ता में सुधार करके इसे क्षरण और पोषक तत्वों के नुकसान से बचाती हैं।

5. एकीकृत और संतुलित पोषण (INM) : एकीकृत और संतुलित पोषण (INM) तकनीक, मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में सुधार करती है, जिससे पौधों की संख्या और उपज में बढ़ोत्तरी होती है। एफवाईएम (FYM), मूंग के अवशेष (GR), वर्मीकम्पोस्ट, बायोचार, चावल–गेहूं की फसल के अवशेष (CR) और सल्फिटेशन प्रेस मड (SPM) जैसे जैविक उपचार, बायोमास पैदावार में लगातार सुधार कर सकते हैं और मिट्टी में कार्बन पृथक्करण और स्थिरता बढ़ा सकते हैं।

6. निष्कर्ष : मृदा कार्बन पृथक्करण, सभी जलवायु परिवर्तन संबंधी मुद्दों के लिए एक स्थायी समाधान नहीं है, लेकिन एक ही समय में खराब मिट्टी को उपयोगी बनाने, कटाव को कम करने, कृषि संबंधी पैदावार बढ़ाने और वातावरण में CO_2 उत्सर्जन को कम करने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण है। इस प्रकार, इसे कृषि और पर्यावरण के अनुकूल बनाने के लिए जलवायु और मिट्टी की स्थिति के अनुसार कार्बन प्रबंधन अभ्यास का सावधानीपूर्वक चयन आवश्यक है।

******

विश्व में पेड़ बचाने के लिए 363 बिश्नोइयों का अद्वितीय बलिदान

अर्जुन सिंह सैनी,
सलाहकार (निजी सचिव)
वायु गुणवत्ता एवं प्रबंधन आयोग,
जवाहर व्यापार भवन, नई दिल्ली

खेजड़ी का वृक्ष अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग नामों से जाना जाता है। राजस्थान में इसे खेजड़ी, ज्यांट, ज्यांटी, शमी, हरियाणा में ज्यांड, ज्यांडी, ज्याट, ज्यांटी, पंजाब में जंड, उत्तर प्रदेश में छोंकरा और संयुक्त अरब अमीरात में घफ के नाम से जाना जाता है। अंग्रेजी में इसे 'प्रोसोपिस सिनरेरिया' कहा जाता है। राजस्थान सरकार ने 1983 में ही इसे अपना राजकीय वृक्ष घोषित कर दिया था।

'खेजड़ली' और 'खेजड़ी' शब्द एक दूसरे के पर्याय है। 'राजस्थान के जोधपुर जिला मुख्यालय से 27 किलोमीटर दूर खेजड़ली नामक स्थान है जहां 'खेजड़ी' या ज्यांटी के हरे भरे पेड़ बहुतायत में पाए जाते हैं जो मई–जून महीनों की रूह तपाती गर्मी और चिलचिलाती धूप में हरे भरे रहते हैं। जोधपुर के तत्कालीन राजा अभय सिंह को अपने महल के लिए लकड़ियों की जरूरत पड़ी तो उन्होंने खेजड़ली क्षेत्र से खेजड़ी के पेड़ों को काटने के आदेश दिए। आदेश पाकर राजा के लोग 12 सितम्बर, 1730 को खेजड़ली पहुंच गए। बिश्नोई समाज के लोग अमृतादेवी बिश्नोई के नेतृत्व में खेजड़ी के पेड़ों को बचाने के लिए यहां पहुंचने लगे।

खेजड़ी का पेड़ हर तरह से उपयोगी और लाभकारी है। इसकी छाल का उपयोग औषधि बनाने के लिए, इसका फल, जिसे 'सांगरी' कहा जाता है, का उपयोग सब्जी बनाने के लिए तथा मरूस्थल में मई–जून की चिलचिलाती गर्मी में इसकी छाया में आराम करना बहुत आरामदायक होता है। इसके फूल 'मींझर' कहलाते हैं, फल 'सांगरी' जो सूख

राजस्थान का राज्य वृक्ष खेजड़ी और राज्य पशु एवं रेगिस्तान का जहाज ऊंट

जाने के बाद 'झींझ' कहलाते हैं जिन्हें राजस्थान में सूखे मेवे के रूप में जाना जाता है। कृमिनाशक, रेफ्रिजरेटर और टॉनिक माने जाने वाले इस पेड़ की छाल का उपयोग विभिन्न प्रकार की बीमारियों के इलाज के लिए किया जाता है। खेजड़ी के पेड़ की छाल अस्थमा, पेचिस, त्वचा विकार, ब्रोंकाइटिस, मांसपेशियों में कंपन, बवासीर, कुष्ठ आदि के इलाज के लिए लाभकारी प्रभाव डालती है। इस पेड़ के फल में कई कार्यात्मक खाद्य गुण होते हैं। गर्मी में

इसकी हरी–भरी छाया में पशु–पक्षी आराम करते हैं। वर्ष 1899 में पड़े 'छपनिया' अकाल के समय लोगों ने अन्न के अभाव में खेजड़ी की छाल को खाकर अपनी जान बचाई थी। खेजड़ी के पेड़ के नीचे और आस–पास की जमीन पर फसल की अच्छी पैदावार होती है। इसकी लकड़ी को हवन–यज्ञ में उपयोग में लिया जाता है। बताया जाता है कि लंका विजय से पूर्व भगवान श्री राम ने शमी या खेजड़ी के वृक्ष की पूजा की थी। रावण दहन के बाद खेजड़ी अथवा शमी के पत्ते लूटकर लाने की प्रथा है जो स्वर्ण का प्रतीक मानी जाती है।

वर्ष 1730 में जोधपुर के बिश्नोई समाज द्वारा खेजड़ली में हरे–भरे पेड़ बचाने के लिए अमृतादेवी बिश्नोई की अगुवाई में 363 बिश्नोईयों द्वारा दिए गए बलिदान की याद में सन् 2013 में भारत के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने एक लाख रुपए के नकद पुरस्कार के साथ अमृता देवी बिश्नोई राष्ट्रीय 'वन्य जीव संरक्षण पुरस्कार' (नेशनल वाईल्ड लाईफ प्रोटेक्शन अवार्ड) शुरू किया है। खेजड़ी में 363 बिश्नोईयों द्वारा अपनी कुर्बानी दिए जाने की याद में खेजड़ली में एक स्मारक भी बनाया गया है।

खेजड़ली, जोधपुर में 363 बलिदानी बिश्नोईयों की याद में बना समारक

प्राकृतिक संसाधनों में, पेड़–पोधों, फूल–पत्तियों, कन्द–मूल और जड़ी बूटियों का अपना–अपना महत्व है। जड़ी–बूटी, पेड़ की छाल और पत्तियों के सही मिश्रण से तीर–तलवार और भालों के बड़े–बड़े घाव भर जाते थे। कालांतर में समय के साथ–साथ हम अपनी प्राकृतिक विरासत और पेड़ों के महत्व को भूलते गये और वन भूमि को नष्ट कर वहां पर कुकरमुत्ते के पेड़ों की तरह रिहायशी इमारतें खड़ी करते गए। मनुष्य द्वारा ऐसा करना प्रकृति और स्वयं मानव जाति के लिए आत्मघाती साबित होता जा रहा है।

प्रकृति को बचाने के लिए हमें कार्बन उत्सर्जन, जलवायु परिवर्तन, ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण और जल प्रदूषण को कम करने के लिए जनसाधारण को प्रोत्साहित करना होगा कि वे अधिक से अधिक पेड़ लगाए और पेड़ों की रक्षा करें। पेड़–पौधे केवल पर्यावरण को ही नहीं बचाते हैं अपितु वे हमारे लिए जीवनदायी भी साबित होते रहे हैं। उनमें औषधीय गुण भी होते हैं, इसका खेजड़ी के पेड़ से ज्यादा और क्या उदाहरण हो सकता है जिसका हर अंश उपयोगी ही उपयोगी है। आइए, हम सब मिलकर उन 363 बिश्नोईयों के अद्वितीय बलिदान के लिए उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करें और प्रण लें कि हम हर तरह से अपने वन्यजीवों, पेड़–पौधों की आजीवन रक्षा करते रहेंगे।

***

सुनो पेड़ क्या कहता है

नाज़ रिज़्वी
(निदेशक, राष्ट्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय),
हरप्रीत कौर कालरा
(वरिष्ठ अनुवादक, राष्ट्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय)

मैं इस सृष्टि के लिए वरदान हूँ। युगों पूर्व जब तुम न थे, मैंने ही इस सृष्टि को तुम्हारे लिए सजाया–सँवारा। मैं पृथ्वी की जीवनधारा हूँ। तुम्हारे जीवन के सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक, पर्यावरणीय इन सभी पक्षों को नया आयाम देता हूँ। भारतीय संस्कृति में तो मुझे पूजनीय माना गया है। इससे ही मेरा महत्व समझना चाहिए तुम्हें। भारतीय संस्कृति और सभ्यता का समग्र विकास वनों में वृक्षों के नीचे ही हुआ है। फिर भी आज का आधुनिक भारत मेरे और वनों के महत्व को भूल गया है। चलो एक बार फिर से याद दिलाता हूँ कि मैं क्या हूँ और कितने काम का हूँ।

मैं हवा से कार्बन–डाईऑक्साइड को खींचकर तुम्हें ऑक्सीजन देता हूँ। जानते हो, एक साल में एक एकड़ में फैले हम बड़े–बड़े पेड़, 18 लोगों के लिए ऑक्सीज़न देते हैं। और जितनी कार्बन–डाईऑक्साइड तुम्हारे छब्बीस हज़ार मील दूर तक गाड़ी चलाने से निकलती है, एक साल में केवल एक एकड़ में फैले, हम सभी पेड़ उसे सोख लेते हैं।

अपनी पत्तियों से जल–वाष्प के ज़रिए तुम्हें ठंडी हवा देता हूँ, तभी तो, जब तुम थक–हारकर मेरी कोमल छाँव में बैठ जाते हो तो ठंडक तुम्हें आनंदित कर देती है। घर के आसपास अगर नियोजित तरीके से मुझे लगाओ तो तुम्हारे परिवार की ए.सी. की ज़रूरत को मैं 50 प्रतिशत तक घटा सकता हूँ। ए.सी. से बेहतर हूँ मैं।

बारिश के पानी को अपने तने से ज़मीन के अंदर भेज देता हूँ। इससे स्टॉर्म–जल, महासागर में प्रदूषक अपने साथ नहीं ले जा पाता। जब मल्च किया जाता हूँ तो मृदा की नमी और तापमान को बनाए रखने में मदद करता हूँ और बारिश के पानी को फिल्टर कर भूमिगत जल को रीचार्ज करता हूँ। इस प्रकार मैं पानी बचाता हूँ। पानी के साथ–साथ मृदा अपरदन को रोककर मृदा संरक्षण में भी मददगार हूँ।

सूर्य की कैंसर–कारक यू.वी. किरणों से तुम्हारा बचाव करता हूँ। जानते हो, हम बहुत सारे पेड़ मिलकर 50 प्रतिशत तक यू.वी.–बी किरणों से तुम्हारा बचाव करते हैं।

मैं तुम्हें, पशु–पक्षियों और वन्यजीवों को खाना देता हूँ।

तुम्हारे ही अध्ययन ने साबित किया है कि वे मरीज़ जिनकी खिड़कियों से पेड़ नज़र आते हैं, वे जल्दी और कम परेशानियों के साथ बीमारी से उभर जाते हैं। प्रकृति के संपर्क में रहने वाले ए.डी.एच.डी. से जूझते बच्चों में भी कम लक्षण उभरते हैं। पेड़ों और प्रकृति का सानिध्य तुम्हारी मानसिक थकान को घटाकर, एकाग्रता को बढ़ाता है।

अध्ययन में यह भी सिद्ध हुआ है कि बंजर भूमि पर बने घरों के आसपास हिंसा की अधिक घटनाएँ देखने को मिलती हैं। जबकि हरे–भरे इलाकों में हिंसा और डर का स्तर भी कम रहता है।

मुझे देखने मात्र से ही तुम बता सकते हो कि कौन–सी ऋतु चल रही है।

मैं तुम मनुष्यों के लिए आर्थिक संभावनाएं भी उत्पन्न करता हूँ। सामूहिक बागानों में उगाए गए फलों–फूलों की बिक्री, आय का अच्छा साधन है। हरित–कूड़ा प्रबंधन एवं परिदृश्य के क्षेत्र में भी लघु उद्योगों के लिए बहुत संभावनाएँ हैं, ज़रूरत है कि शहर, मल्चिंग और उसके द्वारा होने वाले जल–संरक्षण के महत्व को समझें। पर्यावरणीय कार्यों में रुचि लेने वाले युवा वर्ग को इस क्षेत्र में पेशेवर प्रशिक्षण देना भी उनके लिए आर्थिक संभावनाएं तैयार करने का एक अच्छा ज़रिया है।

मैं इस पृथ्वी के प्राकृतिक सौंदर्य का अभिन्न हिस्सा हूँ। यही प्राकृतिक सौंदर्य जहाँ मनुष्य को प्रसन्न बनाता है वहाँ उसके मन, बुद्धि और आत्मा को विकारों से दूर करता है। मनुष्य की निर्विकारता उसकी आध्यात्मिक उन्नति का आधार है। अतः मैं तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन का भी अभिन्न हिस्सा हुआ। भारतीय संस्कृति तो इसका प्रमाण है। प्राचीन भारत में गुरुकुल तो वृक्षों के बीच ही स्थापित किए जाते थे। वृक्ष साधकों की आध्यात्मिक भावनाएं जगाने, बढ़ाने और स्थिर रखने में सहायक होते थे। यह तथ्य आज के आधुनिक भारत में भी प्रासंगिक है।

मेरी जड़ें मृदा से पोषक–तत्व और पानी सोखती हैं और सूखे जैसी स्थिति में ज़मीन के ऊपरी भाग में मौजूद हिस्से को सिग्नल देती हैं। विशेष रूप से जो प्रजातियाँ सूखे के क्षेत्र में उगती हैं, उनकी जड़ों में पानी ढूँढ़ निकालने की क्षमता होती है। ये जड़ें ज़मीन की गहराई में जाकर भूमिगत जल को सतह पर लाने का कार्य करती हैं।

अंत में यही कहना चाहता हूँ कि मैं आज के जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों जैसे ग्लोबल वार्मिंग, सूखा, बाढ़ जैसी परिस्थितियों से लड़ने का सबसे सस्ता और अच्छा साधन हूँ। इस पृथ्वी की आधारभूत संरचना में केवल एक मैं ही ऐसा हूँ जिसकी कीमत समय के साथ बढ़ती जाती है। फिर भी मैं अनमोल हूँ और तुमसे यही कहूँगा कि मुझे अपने फायदे के लिए लगाओ। हे मनुष्य! पेड़ लगाओ और अपने जीवन को खुशहाल बनाओ।

*****

सिंगल यूज प्लास्टिक का पृथ्वी एवं सम्पूर्ण पर्यावरण पर घातक प्रभाव

रामेश्वर, अनुभाग अधिकारी
केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, दिल्ली

सर्वविदित है कि ब्रहमांड की संरचना परमपिता परमेश्वर ने की। पृथ्वी के उद्भव के पश्चात, प्रकृति से हमें सुन्दर, मनमोहक एवं स्वच्छ पर्यावरण का उपहार मिला। इससे मानव का विकास भी निरंतर हुआ। पर्यावरण में स्वच्छ जल, हरे–भरे छायादार वृक्ष, फल–फूल, मेवे, नदी, झरने, पहाड़, वन आदि का उपभोग करके मानव निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर होता गया। मानव अपने विकास की दौड़ में इतना तेज भागने लगा कि उसे पता ही नहीं चला कि उसने पर्यावरण को कितना नुकसान पंहुचा दिया है। यूँ तो पर्यावरण को प्रदूषित करने के लिए कई कारक जिम्मेदार हैं, लेकिन अन्य कारकों के अतिरिक्त सिंगल यूज़ प्लास्टिक भी एक बहुत बड़ा कारक है, जिसके द्वारा पर्यावरण को अत्यधिक नुकसान पहुँच रहा है। सिंगल यूज प्लास्टिक के सभी उत्पादों को सड़ने/गलने में अत्यधिक समय लगता है। ये भूमि में कई वर्षों तक पड़े रहते हैं जो मिट्टी एवं जल दोनों को प्रदूषित करते हैं, जिसके दुष्प्रभाव से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है।

सिंगल यूज़ प्लास्टिक :– सिंगल यूज़ प्लास्टिक का सरल भाषा में यह अभिप्राय है कि ऐसे प्लास्टिक उत्पाद, जो एक बार इस्तेमाल करने के पश्चात साधारणतः दोबारा उपयोग में नहीं लाए जा सकते एवं उन्हें ऐसे ही खुले वातावरण में फेंक दिया जाता है, उदाहरणतः प्लास्टिक की थैलियां, प्लास्टिक स्ट्रॉ, प्लास्टिक बॉटल्स, प्लास्टिक के कटलरी आइटम्स, जैसे चम्मच, कप, गिलास, चाकू, कांटे इत्यादि।

सिंगल यूज़ प्लास्टिक के अत्यधिक उपयोग के प्रमुख कारणः– सिंगल यूज प्लास्टिक का उपयोग दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है। इसके निम्न प्रमुख कारण हैं:

आसान प्रयोग : प्लास्टिक को किसी भी आकार में आसानी से ढ़ाला जा सकता है एवं इसका उपयोग आसानी से किया जा सकता है। दैनिक जीवन में प्लास्टिक का उपयोग कई छोटी–छोटी जरूरतों की पूर्ति आसानी से करने लगा, इस कारण इसकी मांग दिनों–दिन बढ़ती गई।

कम कीमत – सिंगल यूज़ प्लास्टिक के उपयोग बढ़ने का प्रमुख कारण इसकी कीमत का कम होना है, सस्ता होने के कारण इसकी मांग विभिन्न उत्पादों में तेजी से बढ़ने लगी जबकि कपड़े या कागज से बने उत्पाद महंगे होने का कारण लोगों ने इनका उपयोग सीमित कर दिया। इसके कारण बाजारों में प्लास्टिक उत्पादों की संख्या निरंतर बढ़ने लगी एवं ऐसा प्रतीत होने लग रहा है कि हमारी पृथ्वी ही सिंगल यूज प्लास्टिक में समा रही है।

सिंगल यूज़ प्लास्टिक का मानव जीवन पर प्रभाव – सिंगल यूज़ प्लास्टिक पृथ्वी के लिए अत्यधिक घातक है। सिंगल यूज़ प्लास्टिक आमतौर पर मिट्टी में जाकर जमा हो जाते हैं। बहुत सालों बाद ये प्लास्टिक छोटे–छोटे कणों में परिवर्तित होने लगते हैं। इस प्रक्रिया में यह अत्यधिक जहरीले रसायन छोड़ता है जो पर्यावरण एवं मानव जीवन के स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक हानिकारक है। ये हानिकारक रसायन जल एवं भोजन के माध्यम से व्यक्ति के शरीर के भीतर पहुंचते हैं तथा शरीर की पाचन क्रिया के दौरान भी इन कणों को पचाया नहीं जा सकता है एवं ये कण कई बार आंतों में फंस जाते हैं। इस प्रकार यह शरीर के विभिन्न अंगों को हानि पहुंचाते हैं। इन जहरीले रसायनों के प्रभाव से कैंसर जैसी गंभीर बीमारियां मानव के शरीर में जन्म लेती हैं।

सिंगल यूज़ प्लास्टिक का जीव जंतुओं पर प्रभाव– मानव की अज्ञानतावश कभी–कभी प्लास्टिक की थैलियां इधर–उधर फैंक दी जाती हैं जिन्हें गाय, भैसों, बकरियों एवं अन्य जानवरों द्वारा निगल लिया जाता है। प्लास्टिक शरीर की पाचन क्रिया द्वारा भी पचाई नहीं जा सकती, जिसके कारण गाय, भैंसें, बकरियां एवं अन्य जानवरों की तड़प–तड़प कर अकाल मृत्यु हो जाती है। समुद्री पर्यटन स्थलों पर समुद्र के किनारों पर पर्यटकों द्वारा सिंगल यूज प्लास्टिक, जैसे बोतल, पोलीथीन बैग, स्नैक्स के खाली पैकेट्स इत्यादि फैंक दिए जाते हैं। यह समुद्री बहाव के साथ समुद्र के अंदर चले जाते हैं। इन्हें जलीय जीवों द्वारा निगल लिया जाता है जिससे उनकी भी अकाल मृत्यु हो जाती है। इससे हमारा पारिस्थितिकी तंत्र भी प्रभावित हो रहा है।

सिंगल यूज़ प्लास्टिक का पेड़–पौधों पर प्रभाव– सिंगल यूज प्लास्टिक के उत्पाद कई सालों तक मिट्टी में पड़े रहते हैं तो उसमें पाए जाने वाले हानिकारक रसायन भी मिट्टी में सम्मिलित हो जाते हैं जिससे उस मिट्टी में उत्पन्न होने वाले पेड़–पौधों पर भी ये रसायन नकारात्मक प्रभाव डालते हैं एवं मिट्टी की उपजाऊ क्षमता को प्रभावित करते हैं।

सिंगल यूज प्लास्टिक पर प्रतिबंध – सिंगल यूज प्लास्टिक के अत्यधिक उपयोग के कारण पर्यावरण में उत्पन्न होने वाले प्रदूषण को रोकना अति आवश्यक है। अतः पर्यावरण को इस भयानक प्रदूषण के दुष्प्रभाव से बचाने के लिए भारत सरकार द्वारा 1 जुलाई, 2022 से पूरे देश में सिंगल यूज प्लास्टिक के निर्माण एवं उपयोग पर प्रतिबंध लगाया गया। प्लास्टिक अपशिष्ट के जलने से निकलने वाला धुआँ हवा में विषैली गैस का रिसाव करता है जो पर्यावरण के लिए अति नुकसानदायक है। सिंगल यूज प्लास्टिक से फैलने वाले अपशिष्ट से भूमि एवं जल प्रदूषित हो रहा है एवं पर्यावरण को नुकसान पहुंच रहा है। प्लास्टिक के विभिन्न उत्पादों की वजह से पृथ्वी पर रहने वाले जीव–जंतुओं के साथ–साथ समुद्री जीवों के अस्तित्व पर भी खतरा मंडराने लगा है। सिंगल यूज प्लास्टिक से निकले रसायनों से उपजाऊ भूमि लगातार बंजर होती जा रही है। प्लास्टिक बैग एवं अन्य उत्पादों से नालियों एवं सीवरों के जाम होने की समस्याओं में निरंतर वृद्धि हो रही है जिससे मानव जीवन प्रभावित हो रहा है। सिंगल यूज प्लास्टिक एवं अन्य प्लास्टिक उत्पादों के निरंतर उपयोग एवं उचित निस्तारण न होने की स्थिति में वह दिन दूर नहीं है कि हमारी पृथ्वी के अस्तित्व पर ही खतरा मंडराने लगे एवं समस्त पृथ्वी ही प्लास्टिक के आगोश में समा जाए।

आज समय आ गया है जब हमें सिंगल यूज प्लास्टिक की समस्या को गंभीरता से समझने की आवश्यकता है कि ये प्लास्टिक के उत्पाद किस प्रकार पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहे हैं और किस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हानि पहुंचा रहे हैं तथा इनके घातक प्रभाव से पेड़–पौधों, जीव–जंतुओं, समुद्री जीवों तथा सम्पूर्ण मानव जाति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है, इसे केवल सिंगल यूज प्लास्टिक के उपयोग को पूर्ण प्रतिबंध करके ही बचाया जा सकता है। अतः लोगों को सिंगल यूज प्लास्टिक के दुष्प्रभावों से अवगत कराते हुए सिंगल यूज प्लास्टिक के प्रतिबंध का समर्थन करना चाहिए एवं लोगों को जागरूक करना चाहिए।

*****

राष्ट्रीय वन इन्वेंट्री: प्रतिदर्श अभिकल्प एवं वानिकी में इसका महत्त्व

कमल पाण्डेय, उप निदेशक,
योगेश कुमार बंसल, डी०पी०ए०,
सुविक्रम प्रकाश, डी०पी०ए०,
भारतीय वन सर्वेक्षण, देहरादून

प्रस्तावना

वर्तमान के बदलते परिदृश्य को देखते हुए, जैव विविधता, जलवायु परिवर्तन एवं कार्बन उत्सर्जन पर जानकारी हेतु वन संसाधनों का प्रबंधन अति आवश्यक है। वन न केवल जीवित पौधे के रूप में अपितु मृत–काष्ठ, कूड़ा–करकट तथा मृदा के रूप में भी विशेष रूप से कार्बन का भंडारण गृह हैं जो कि एक साथ मिलकर वायुमंडल में पाए जाने वाले स्वतंत्र विचरित परिमाण का मुख्य हिस्सा है। देश के वन संसाधनों का आवधिक मूल्यांकन भविष्य की योजना के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। उसके लिए सांख्यिकीय रूप से सत्यापित एक प्रचलित प्रतिदर्श डिजाइन (sampling design) के आधार पर वन संसाधनों का मूल्यांकन, आकलन एवं निगरानी करने की आवश्यकता पड़ती है।

भारतीय वन सर्वेक्षण (भा०व०स०), पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय का एक प्रमुख संस्थान है जो देश के वन संसाधनों के नियमित रूप से आकलन एवं अनुश्रवण के लिए प्रतिबद्ध है। भारतीय वन सर्वेक्षण द्वारा यह कार्य अपनी स्थापना से ही करने के कारण, इस संस्थान के पास वन क्षेत्रों में इन्वेंट्री करने का वृहद अनुभव एवं विशेषज्ञता है।

2. भूमिका

इस कार्य की शुरुआत भारत सरकार द्वारा वर्ष 1965 में काष्ठ आधारित उद्योगों की स्थापना के लिए एक परियोजना के रूप में की गयी जिसका उद्देश्य देश के काष्ठ समृद्ध क्षेत्रों (forest rich areas) का चयन करना था। यह परियोजना एफ़०ए०ओ० (FAO), यू०एन०डी०पी० (UNDP) और भारत सरकार के द्वारा संयुक्त रूप से संचालित की गयी थी। इसके पश्चात् वर्ष 1976 में राष्ट्रीय कृषि आयोग की सिफरिश पर इसे भारतीय वन सर्वेक्षण के रूप में संगठित किया गया जिसका उद्देश्य मूलतः नियमित एवं समयबद्ध वन संसाधनों का सर्वेक्षण करना था। जिसके पश्चात 1 जून, 1981 को भारतीय वन सर्वेक्षण का गठन किया गया। तभी से यह संस्थान देश के वन संसाधनों का आकलन नवीनतम प्रौद्योगिकी, तकनीक का अनुसरण करते हुए देश सेवा में कार्यरत है।

3. वर्तमान प्रतिदर्श अभिकल्प की विशेषताएं

भारतीय वन सर्वेक्षण, वन संसाधनों के आकलन हेतु नवीनतम प्रौद्योगिकी तथा उन्नत तकनीकों के अनुसार, समय–समय पर राष्ट्रीय वन इन्वेंट्री (NFI) के प्रतिदर्श अभिकल्प (sampling design) में बदलाव करता रहा है। वर्तमान में नए अभिकल्प, जो कि 2016 से लागू हैं, की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

- राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर मापदंडो के आकलन की गुणवत्ता में सुधार (राष्ट्रीय स्तर पर सटीकता सीमा 5% एवं राज्य स्तर पर 10%)।
- पुनरावलोकन (revisit time) के समय को घटाया गया है (वन क्षेत्र में 5 वर्ष एवं वनेतर क्षेत्र में 10 वर्ष पुनरावलोकन समय निश्चित

किया गया है जो कि पुराने राष्ट्रीय वन इन्वेंट्री प्रतिदर्श में 20 वर्ष था)।

- उच्च परिशुद्धता को दर्शाते हुए सम्पूर्ण देश में एक समान प्रतिदर्श भू–खंड, उच्चतर प्रतिदर्शी तीव्रता को सुनिश्चित करता है।
- कुछ महत्वपूर्ण परिमाप (parameters) जैसे गैर काष्ठ वन उपज (NTFP), तेजी से बढ़ने वाली वृक्ष प्रजातियां (Invasive Species), जल की उपलब्धता आदि का समावेश किया गया है।

4. राष्ट्रीय वन इन्वेंट्री अभिकल्प

वर्तमान राष्ट्रीय वन इन्वेंट्री का अभिकल्प अंतरराष्ट्रीय चलन के अनुरूप है, जो कि वैश्विक स्तर पर मान्य है। यह अभिकल्प पूरे देश के 5 कि.मी. X 5 कि.मी. के सम ग्रिड़ों पर आधारित है। जिसके अंतर्गत सिस्टेमेटिक सैम्पलिंग डिज़ाइन को अपनाते हुए प्रतिवर्ष वनों तथा वनेतर क्षेत्र में इन्वेंट्री का कार्य किया जाता है। वन इन्वेंट्री के लिए उसी ग्रिड का पुनरीक्षण समय 5 वर्ष और वनेतर क्षेत्र के लिए 10 वर्ष निर्धारित किया गया है। तदनुसार, वन इन्वेंट्री के लिए ग्रिडों को 1 से 5 एवं वनेतर इन्वेंट्री के लिए 1 से 10 के रूप में संख्याबद्ध किया गया है। वन इन्वेंट्री के ग्रिडों का निर्धारण करने के लिए अभिलिखित वन क्षेत्र/ ग्रीन वॉश सीमाओं की डिजिटल परत का उपयोग किया गया है। चूंकि, राज्य स्तर पर आकलन देना नए प्रतिदर्श अभिकल्प का मुख्य उद्देश्य है, अतः अनुकूलतम प्रतिदर्श की माप की गणना राज्य स्तर पर पिछले इन्वेंट्री आंकड़ों अभिलिखित वन क्षेत्र/ ग्रीनवॉश की डिजिटल परत के उपयोग से की गयी है। चित्र संख्या 1 में ग्रिड आधारित सिस्टेमेटिक सैम्पलिंग डिज़ाईन दिया गया है।

चित्र 1: 5 कि.मी. x 5 कि.मी. के राष्ट्रीय वन इन्वेंट्री ग्रिड को दर्शाता भारत का मानचित्र

4.1 राष्ट्रीय वन इन्वेंट्री : प्लॉट संरचना एवं परिमाप (parameters)

नवीन राष्ट्रीय वन इन्वेंट्री डिज़ाईन में प्लॉट की संरचना में भी मूलभूत परिवर्तन किए गए हैं। अब प्लॉट की संरचना वर्ग प्लॉट (स्क्वायर प्लॉट) की बजाय वृत्त के समूह प्लॉटों में बदल दी गई है। चित्र संख्या 2 में वृत्त प्लॉट की संरचना का डिज़ाईन दिया गया है।

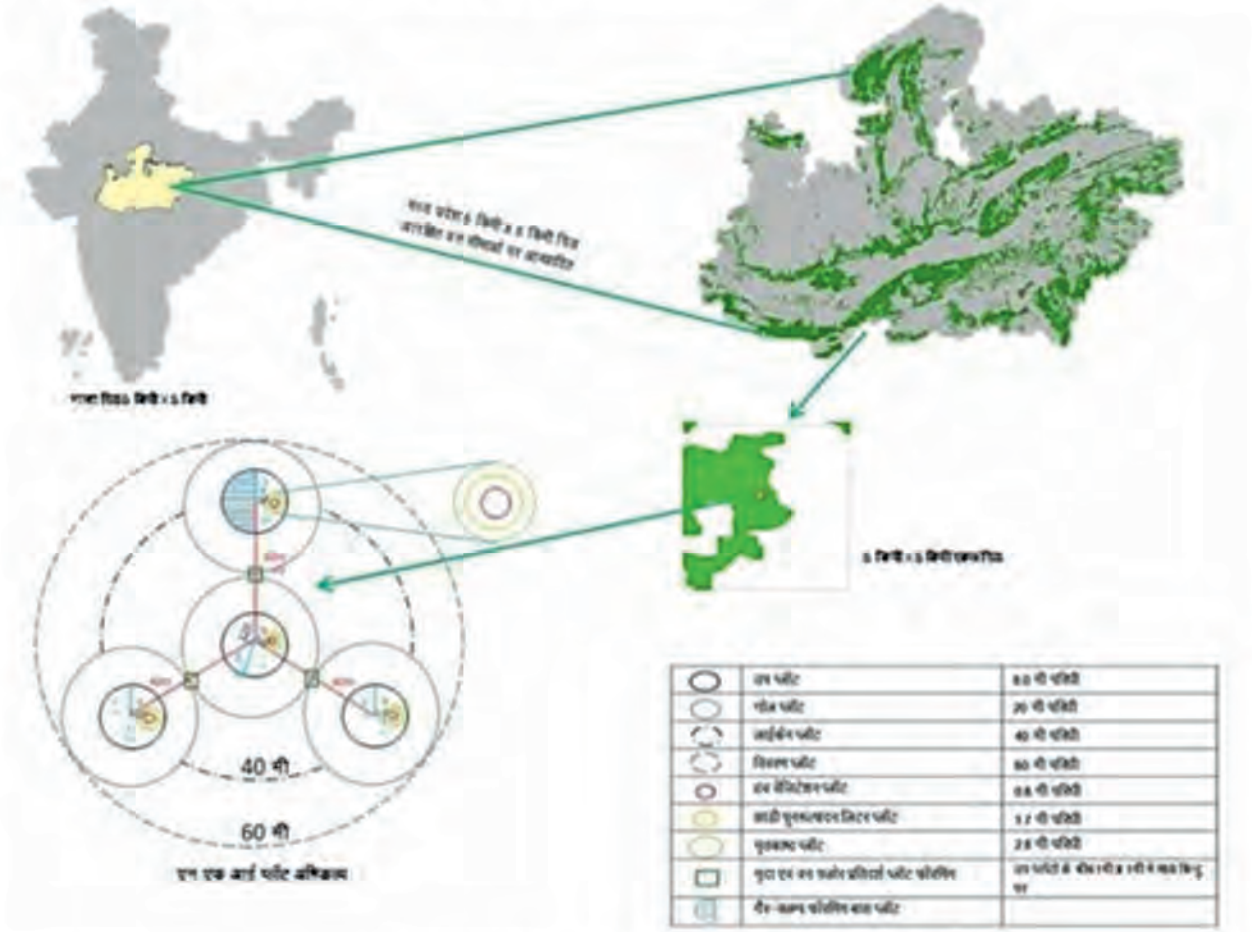

चित्र 2 : राष्ट्रीय वन इन्वेंट्री का प्लॉट विन्यास

इस नए अभिकल्प को लागू करने के लिए भारतीय वन सर्वेक्षण द्वारा राष्ट्रीय वन इन्वेंट्री पर व्यापक तकनीकी कार्यशालाओं एवं चर्चा के साथ–साथ भा. व.स. के सभी अंचलों में एक प्रायोगिक अध्ययन भी किया गया। नए डिज़ाइन में अतिरिक्त पैरामीटर जैसे गैर–काष्ठ वन उपज, तेजी से बढ़ने वाली प्रजाति, प्रतिदर्श प्लॉट के निकट जल निकाय, बीमारी आदि को भी वन इन्वेंट्री में शामिल किया गया है। इस अभिकल्प में, सैंपल प्लॉट्स के विभाजन में समानता को सुनिश्चित किया गया है तथा स्पेशियली बैलेंस्ड डिज़ाइन तथा लोकल वैरिअबिलिटी को कैप्चर करने की कोशिश की गयी है। वर्तमान में भारतीय वन सर्वेक्षण द्वारा राष्ट्रीय वन इन्वेंट्री के कार्य हेतु लगभग 17,000 (7000 वन इन्वेंट्री एवं 10,000 वनेतर क्षेत्र) प्लॉट्स पर प्रति वर्ष फील्ड सर्वेक्षण का कार्य किया जाता है। चित्र संख्या 3 में वर्ष 2016 से 2020 के दौरान राष्ट्रीय वन इन्वेंट्री के प्रतिदर्श प्वाइंट को दर्शाया गया है।

चित्र 3 : वर्ष 2016 से 2020 के दौरान राष्ट्रीय वन इन्वेंट्री के प्रतिदर्श प्वाइंट

राष्ट्रीय वन इन्वेंट्री का मुख्य उद्देश्य वन प्रबंधकों, योजनाकारों और नीति निर्माताओं को देश के विभिन्न क्षेत्रों में वानिकी मापदंडों जैसे कि लकड़ी की प्रजातियों का विवरण, वर्द्धमान निधि, जैव–भार, कार्बन स्टॉक, पुनरुत्पादन स्तर आदि का आकलन करवाने और प्रबंधन की रणनीतिक योजना के लिए आवश्यक आंकड़े उपलब्ध करवाना है।

***

सेमीकार्पस एनाकार्डियम (भिलवां) और फ्लैकोर्टिया इंडिका (कंटायी) : मध्य भारत की औषधीय रूप से महत्वपूर्ण जंगली फल प्रजातियां

मनीष कुमार विजय, वैज्ञानिक–बी
उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर (म.प्र.)
ई–मेलः manishvijay89@gmail.com , vijaym@icfre.org

प्रकृति ने मानवजाति को जीवित रहने एवं उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, विभिन्न जीवन रूप प्रदान किए हैं। पादप जैव विविधता भोजन, चारा, आश्रय, दवाओं और कई अन्य चीजों का प्राथमिक स्रोत है। खाद्य और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए खाद्य प्रकारों की विविधता को बढ़ाना अति आवश्यक है। जंगली खाद्य फल स्थानीय लोगों के लिए मुख्य भोजन एवं गैर–स्थानीय लोगों के लिए एक पूरक भोजन के रूप में काम करते हैं, और साथ ही नकद आय का वैकल्पिक स्रोत भी प्रदान करते हैं। अधिकांश कम उपयोग किए जाने वाले स्थानीय फलों का उपयोग पूरे भारत में औषधीय पौधों के रूप में यूनानी, आयुर्वेद और होम्योपैथी जैसी विभिन्न स्वदेशी चिकित्सा प्रणालियों में किया जाता है।

जानकारी का अभाव हमेशा कम उपयोग वाले पौधों की प्रजातियों के प्रचार में एक बड़ी बाधा रही है। भारत में, कम उपयोग वाले फलों पर प्रामाणिक प्रलेखन की कमी के कारण रणनीति विकास और उपयुक्त नीतियां काफी हद तक सीमित हैं। उक्त प्रजातियों के प्रचार हेतु स्वदेशी ज्ञान का दोहन और नए अवसर पैदा करने के लिए वैज्ञानिक समाधानों के साथ विलय किया जाना आवश्यक है। इस मुद्दे को ध्यान में रखते हुए, उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर में भारत सरकार के काम्पा निधि के सहयोग से सेमीकार्पस एनाकार्डियम (भिलावन) और फ्लैकोर्टिया इंडिका (कंटायी), जो कि मध्य भारत की औषधीय रूप से महत्वपूर्ण जंगली फल

प्रजातियाँ हैं, के संग्रह, मूल्यांकन, उपयोग, संरक्षण एवं रखरखाव के लिए एक परियोजना चल रही है। उक्त दोनों जंगली फल प्रजातियों के उपयोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः–

सेमीकार्पस एनाकार्डियम (भिलवाँ)

सेमीकार्पस एनाकार्डियम, जिसे आमतौर पर 'मार्किंग नट के रूप में जाना जाता है, एक मध्यम आकार का पर्णपाती पेड़ है, जो मोटे गहरे भूरे रंग की छाल के साथ 12–15 मीटर की ऊँचाई तक पहुँचता है।

- लाल–नारंगी भाग को इकट्ठा करके धूप में सुखाया जाता है। फलों के भुने हुए छिलके को स्थानीय लोग खाते हैं। गुठली भी खाने योग्य होती है। इस भोजन का उपयोग करते समय सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है, क्योंकि खोल का तेल त्वचा पर जलन पैदा करता है।
- ब्रोंकाइटिस, पेचिश, बुखार, अस्थमा और बवासीर के उपचार में फल का पेस्ट या रस प्रयोग किया जाता है। इसके फलों से प्राप्त शुद्ध काले तीखे रस का बाहरी उपयोग दर्द और मोच को दूर करने के लिए किया जाता है। इसके बीजों का लेप शहद में मिलाकर पेट की समस्याओं के उपचार में प्रयोग किया जाता है। बीजों का रस दाद और गंभीर रूप से फटे पैरों के उपचार में बाहरी रूप से लगाया जाता है। बीजों के रस को एक संभावित एंटीकैंसर एजेंट के रूप में परखा गया है। बीजों से प्राप्त तेल का उपयोग त्वचा के फोड़ों के उपचार के लिए किया जाता है। इसका उपयोग यौन शक्ति में सुधार और शुक्राणुओं की संख्या में वृद्धि, पाचन तंत्र से संबंधित रोगों को ठीक करने और शरीर में कफ (संस्कृत : कफ दोष) को संतुलित करने के लिए किया जाता है। यदि बहुत अधिक मात्रा में सेवन किया जाता है, तो इसे गर्भपात के लिए प्रेरित करना कहा जाता है। हालांकि, मध्यम मात्रा में इसे महिला प्रजनन प्रणाली के लिए अच्छा माना जाता है। जलोदर, गठिया, दमा, मिर्गी, और छालरोग के लिए भी फल का उपयोग किया जाता है। सिरदर्द, त्वचा रोग और खुजली के उपचार में बाहरी रूप से लेटेक्स का उपयोग किया जाता है।
- बीज के चारों ओर का छिलका (पेरिकार्प) काले, तैलीय, कड़वे और अत्यधिक वेसिकेंट जूस से भरपूर होता है, जिसका उपयोग परंपरागत रूप से लिनन को चिह्नित करने के लिए किया जाता रहा है। वेसिकेंट जूस जिसे व्यापार में भिलावन शेल लिक्विड (बीएसएल) के रूप में जाना जाता है, फिनोल का एक समृद्ध स्रोत है। बीएसएल का उपयोग वार्निश, लाख, एनामेल्स, पेंट्स, मोल्डिंग रचनाओं और जल प्रूफिंग और विद्युत सामग्री को इन्सुलेट करने के लिए आधार के रूप में किया जाता

है। लकड़ी का उपयोग लकड़ी का कोयला बनाने के लिए किया जाता है।

फ्लैकोर्टिया इंडिका (कंटायी) : एक शाखित, पर्णपाती और द्विलिंगी झाड़ी या छोटा पेड़ है जो आमतौर पर 3–5 मीटर ऊँचा होता है और इसे आमतौर पर 'इंडियन प्लम्श, 'गवर्नर प्लम, 'मेडागास्कर प्लम्श के रूप में भी जाना जाता है।

- फल आकार में एक छोटे बेर के समान, गहरे लाल से बैंगनी रंग का मीठा और स्वादिष्ट होता है। इसका उपयोग जैम, प्रिजर्व, जेली आदि बनाने में किया जाता है।
- आयुर्वेद में बुखार, दस्त और सूजन जैसी स्थितियों का इलाज करने के लिए छाल, पत्तियों और जड़ के अर्क का औषधीय रूप से उपयोग किया जाता है। पत्ता कार्मिनिटिव, कफ निस्सारक, अस्थमा, दर्द से राहत, स्त्री रोग, कृमिनाशक, निमोनिया और आंतों के कीड़े के लिए उपचार के रूप में उपयोग किया जाता है। सांप के काटने पर इसके पत्तों का उपयोग विषहर औषधि के रूप में किया जाता है।
- पौधे आमतौर पर कांटेदार होते हैं और एक करीबी अभेद्य बाधा बनाते हैं जो लंबी हेज, विंडब्रेक या सीमा स्क्रीन के रूप में कार्य करता है।
- छाल का उपयोग टैनिंग सामग्री के रूप में किया जाता है। सैपवुड हल्का भूरा होता है, धीरे–धीरे चॉकलेट–ब्राउन हार्टवुड में विलीन हो जाता है। हल, पोस्ट, बिल्डिंग पोल, रफ बीम, वॉकिंग स्टिक और टर्नरी आर्टिकल्स के निर्माण जैसे कृषि उपकरणों के लिए उपयोग किया जाता है। लकड़ी का उपयोग ईंधन के लिए और लकड़ी का कोयला बनाने के लिए किया जाता है।

निष्कर्ष :

जंगल में उगने और उपेक्षित होने के बावजूद इन फसलों के अपने पोषण और औषधीय मूल्यविशेष गुण होते हैं। कम मूल्यांकन, तेजी से जनसंख्या वृद्धि और आधुनिक विकास के परिणामस्वरूप वनों की बेतहाशा कटाई हुई है, जिसके परिणामस्वरूप जंगली फलों की प्रजातियों में विविधता का नुकसान हुआ है। इसके अतिरिक्त, जंगलों से बिना किसी बाहरी संरक्षण प्रयास या खेती के बिना अत्यधिक दोहन किया जा रहा है। इन जंगली फलों की प्रजातियों को बढ़ावा देने और खेती लायक बनाने से न केवल पोषण की स्थिति में सुधार होगा बल्कि स्थानीय समुदायों की आजीविका में भी सुधार किया जा सकेगा।

*****

भोजताल, भोपाल की तितली विविधता–तितली सर्वेक्षण एक प्रारंभिक प्रयास

डॉ. मनोज कुमार शर्मा,
वैज्ञानिक–डी एवं प्रभारी
क्षेत्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, भोपाल
नाज़ रिज़्वी, निदेशक
राष्ट्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, नई दिल्ली
डॉ. संगीता राजगीर, मो. खालिक
(भोपाल बड्र्स कंजर्वेशन सोसाइटी, भोपाल)

परिचय

तितलियां रंगीन पंख वाले कीट होते हैं जो सामान्यतः हमारे घरों के आसपास उद्यान, वन एवं जल के स्रोतों के निकट पाए जाते हैं। तितलियों का जीवन चक्र अंडों से प्रारम्भ होता है जो कि अत्यंत छोटे होते हैं, दूसरे चरण में यह अंडे लार्वा के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं फिर उसके पश्चात प्युपा और अंत में इल्लियों से तितलियों का रूप लेते हैं। तितलियाँ ठंडे रक्त वाले प्राणी होती हैं और यह लगभग 25 डिग्री सेल्सियस तापमान होते ही सक्रिय हो जाती हैं। तितलियां केवल तरल पदार्थ के रूप में भोजन ग्रहण करती हैं।

विभिन्न प्रजातियाँ

विश्व में तितलियों की लगभग 17500 प्रजातियां पाई जाती हैं जिनमें से भारत वर्ष में लगभग 1500 प्रजातियां पाई जाती हैं। मध्य भारत में तितलियों की लगभग 200 से अधिक प्रजातियों को देखा जा सकता है। तितलियां मनुष्यों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण जीव हैं। यह परागण के द्वारा फलों एवं सब्जियों के उत्पादन को बढ़ाने में सहयोग करती हैं।

तितलियों का प्रवास

तितलियां मानसून के दौरान प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों, अत्यधिक ठंड के स्थल, प्रजनन के लिए अनुकूल स्थल, शिकारी जीव की वृद्धि एवं विकास में अस्थाई निष्क्रियता, भोजन या परपोषी पौधों की कमी के कारण प्रवास करती हैं। प्रवास की दूरी में भिन्नता हो सकती है। मोनार्क तितली अपने प्रजनन के स्थान अमेरिका और कनाडा से उड़कर हाइबरनेटिंग ग्राउंड सेंट्रल मेक्सिको में प्रवास करती हैं। भारत में मिल्कवीड तितलियों की 4 प्रजातियों जैसे ब्लू टाइगर, डार्क ब्लू टाइगर, कॉमन क्रो एवं डबल ब्रांडेड क्रो को मुख्य रूप से प्रजनन के लिए पूर्वी घाट से पश्चिमी घाट की ओर प्रवास करते देखा गया है।

पारिस्थितिक तंत्र में भूमिका

तितलियां पारिस्थितिक तंत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं एवं तितलियों को उड़ने वाला पुष्प भी कहा जाता है। तितलियां पारिस्थितिक तंत्र को उन्नत बनाए रखने के साथ–साथ अपनी सुंदरता को प्रदर्शित करती हैं। तितलियाँ पर्यावरण परिवर्तन के जैव संकेतक के रूप में कार्य करती हैं। तितलियां अपने पंखों के रंगों द्वारा पर्यावरण की सुंदरता को बढ़ाती हैं। पौधों एवं फसल के लिए परागण की क्रिया को प्रभावी बनाती हैं। जैविक कीट नियंत्रक के रूप में योगदान के साथ पौधों की प्रजातियों में अनुवांशिकता में सहायक सिद्ध होती हैं एवं अन्य वन्यजीव तितलियों का भोजन के रूप में भक्षण करती हैं।

तितलियां प्राकृतिक परिस्थितियों में सबसे अच्छे संकेतक के रूप में कार्य करती हैं। तितलियां पर्यावरण में परिवर्तन को भी अति शीघ्र भाँप लेती हैं एवं स्वस्थ वन्यजीवन के लिए अन्य खतरे का संकेत भी प्रदान करती हैं जिसके कारण जैव विविधता का अच्छा संकेतक बनता है। कुछ प्रजातियां प्राकृतिक पर्यावास में हल्की अशांति के प्रति भी बहुत संवेदनशील होती हैं। तितलियां हमें लगभग वह सब कुछ बताती हैं जो हमें एक स्वस्थ पारिस्थितिक तंत्र के विषय में जानने की आवश्यकता होती है।

तितलियों पर संकट

प्राकृतिक पर्यावास, फूल और फल वाले पौधों की कमी, फसलों एवं पौधों पर कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग करना, औद्योगिक एवं ऑटोमोबाइल प्रदूषण के स्तर में अत्यधिक वृद्धि होना, परजीवी प्राणियों द्वारा तितलियों के अंडे/कैटरपिलर लारवा को खाना, तितलियों के विषय में जागरूकता की कमी, अवैध व्यापार, कीचड़ वाले स्थलों में कमी के कारण प्रजनन चक्र का प्रभावित होना, पारिस्थितिक तंत्र के महत्व के बारे में जानकारी का अभाव एवं जलवायु परिवर्तन के कारण तितलियों की स्थिति संकट में है।

प्रदूषण का प्रभाव

निरंतर बढ़ते प्रदूषण का प्रभाव तितली की प्रजातियों पर भी देखा जा सकता है। वातावरण को प्रदूषित करने वाले कार्बन डाइऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, मोनोऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रोजन ऑक्साइड, धुआँ इत्यादि तितलियों के जीवन चक्र में बाधा का बड़ा कारण है जो इनके अंडे, लार्वा, प्युपा, इल्लियों पर प्रभाव डालता है। प्रदूषण के कारण इनके भोजन के स्रोत फूलों एवं पेड़–पौधों को नुकसान पहुंच रहा है। जीवनशैली में वाहन, कीटनाशक, औद्योगिक प्रदूषण आदि भी तितलियों के जीवन पर प्रभाव डालते हैं।

तितलियों के संरक्षण में मानवीय योगदान

तितलियों की विभिन्न प्रजातियों को बचाने के लिए हम अपने स्तर पर विभिन्न प्रकार के योगदान कर सकते हैं जिनमें से प्रमुख रूप से रसदार फलों वाले वृक्षों को लगाना, भूमि के उपयोग के तरीकों में परिवर्तन लाना, तितलियों को आकर्षित करने वाले सड़े रसदार फलों को रखना, तितलियों के लिए प्राकृतिक रहवास जैसे जल स्रोतों को बढ़ावा देना, फसलों एवं फलदार पौधों पर कीटनाशकों का उपयोग न करना, तितलियों पर शोध को बढ़ावा देना, जनमानस को विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से जागरूक करना एवं जलवायु परिवर्तन के लिए उत्तरदायी गैसों का उत्सर्जन कम करना।

वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 के अधीन आने वाली तितलियों की प्रजातियों को संरक्षित करना एवं तितलियों को पकड़ने, अवैध व्यापार करने वाले लोगों के प्रति दंड का प्रावधान लागू करना। अधिक से अधिक वन क्षेत्र स्थापित करना, दस्तावेजीकरण इत्यादि की सहायता से तितलियों की प्रजातियों को संरक्षित किया जा सकता है।

संस्थागत प्रयास

क्षेत्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, भोपाल, मध्य प्रदेश राज्य जैव विविधता बोर्ड, भोपाल बर्डस संस्था एवं बीएनएस नेचर सेवियर द्वारा आयोजित भोपाल स्थित भोजताल के प्रथम तितली सर्वेक्षण में प्रतिभागियों एवं तितली विशेषज्ञों ने कुछ दुर्लभ प्रजातियों को चिन्हित किया है। प्रथम तितली सर्वेक्षण का मुख्य उद्देश्य भोजताल में पाई जाने वाली तितलियों की प्रजातियों को चिन्हित करना एवं उनकी संख्या का अनुमान लगाना है। इस सर्वेक्षण में भोज ताल के अंतर्गत आने वाले सभी क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया गया है। सर्वेक्षण के दौरान तितलियों की प्रजातियों को चिह्नित करने के साथ–साथ उनके अंडों के लिए होस्ट प्लांट को भी चिह्नित करने का कार्य किया गया। यह सर्वेक्षण जुलाई, 2022 से जनवरी, 2023 तक आयोजित किया गया।

सर्वेक्षण के दौरान मिली प्रमुख प्रजातियां

इंडियन पाम बॉब, कॉमन बेंडेड अवल, कॉमन सेरुलीन, ग्राम ब्लू, जेब्रा ब्लू, रेड पिरोट, ग्रास ज्वेल, लाइव ब्लू, ब्लू टाइगर, कॉमन कैस्टर, कॉमन थ्री रिंग, कॉमन फाइव रिंग, बेरोनेट कमांडर, व्हाइट ऑरेंज, येलो ऑरेंज टिप, पॉयोनियर, कॉमन जै, टेल्ड जै आदि के साथ–साथ दुर्लभ प्रजातियों में कॉमन शॉट सिल्वर लाइन, लार्ज ओक ब्लू, कॉमन पाम फ़्लाइ, रेड फ्लैश, अनोमलस नवाब तितलियों के लिए भोजताल के आसपास के बोरवन, भारतीय वन प्रबंधन संस्थान व दो निजी नर्सरी क्षेत्रों को चिह्नित किया गया है।

*****

पर्यावरण संरक्षण में क्षेत्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, भोपाल की भूमिका

डॉ. मनोज कुमार शर्मा, वैज्ञानिक–डी एवं प्रभारी
क्षेत्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, भोपाल
नाज़ रिज़्वी, निदेशक
राष्ट्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, नई दिल्ली

परिचय

क्षेत्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, भोपाल पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन राष्ट्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, नई दिल्ली की शाखा है जिसका मुख्य उद्देश्य दीर्घाओं, प्रदर्शनियों, विभिन्न आंतरिक एवं बाह्य गतिविधियों के माध्यम से लोगों को पर्यावरण के प्रति जागरूक करना है। भारत के मध्य प्रदेश राज्य में झीलों की नगरी के रूप में प्रसिद्ध भोपाल के पर्यावरण परिसर में स्थित यह संग्रहालय 29 सितंबर, 1997 को जनमानस के लिए खोला गया था। संग्रहालय हमारे आसपास उपस्थित जटिल पारिस्थितिक ताने–बाने को समझने का अवसर प्रदान करता है। डायरोमा एवं प्रदर्श चयनित विषय वस्तुओं के क्रम में प्रस्तुत किए गए हैं। यह संग्रहालय अध्ययनरत बच्चों, शिक्षकों, युवाओं, पारिवारिक समूहों को पर्यावरण के प्रति संवेदनशील करने के लिए क्रियाकलापों, पर्यावरण शिक्षा के लिए उपयोगी लोकप्रिय शिक्षा सामग्री का प्रकाशन, दिव्यांगजनों के लिए विशिष्ट शैक्षिक गतिविधियों, पर्यावरण शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए मध्य भारत में कार्यरत विभिन्न संस्थानों के सहयोग से राज्यव्यापी शिक्षण क्रियाकलापों का आयोजन करता है।

संग्रहालय में प्रवेश करते ही संग्रहालय के स्वागत कक्ष के निकट मध्य भारत के राजकीय पशुओं एवं पक्षियों के साथ–साथ भारत के राष्ट्रीय पशु, पक्षी, फल, वृक्ष इत्यादि की जानकारी भी दी गई है। संग्रहालय के मध्य आँगन में ट्राइसेराटॉप्स नामक डायनासोर के परिवार का मॉडल दर्शकों को आकर्षित करता है साथ ही यहां पर जीवाश्म उत्खनन क्षेत्र पर आधारित प्रदर्श को भी दर्शाया गया है। यहाँ छोटे आँगनों में पारंपरिक संरक्षण के तरीकों, रीति–रिवाजों एवं नमभूमि के झरने, मॉडल, पेनल इत्यादि की सहायता से वनस्पतियों, पशुओं, पक्षियों को विस्तार से समझाया गया है।

प्रकृति का ताना बाना दीर्घा

प्रकृति का ताना बाना दीर्घा में प्राकृतिक आवासों की जैवविविधता को दर्शाने वाले सात जैविक क्षेत्रों जैसे महासागर, घास के मैदान, पर्णपाती वन, रेगिस्तान, उष्णकटिबंधीय वर्षा वन, शंकुधारी वन एवं ध्रुवीय प्रदेश को दिखाया गया है। मध्य भारत की वनस्पतियों, प्राणियों, भूगर्भ इतिहास एवं नदियों की जानकारी के साथ–साथ प्रकृति के विभिन्न घटकों का आपसी संबंध, विकास के लिए संरक्षण तथा मानव एवं पर्यावरण के संबंधों पर आधारित प्रकृति पुत्र बैगा का डाओरमा आकर्षण का मुख्य केंद्र है। इस दीर्घा

में पौधों एवं जीव जंतुओं की विविधता को दर्शाया गया है।

इसी दीर्घा में मध्य प्रदेश के वनों के प्रकार, औषधीय एवं आर्थिक महत्व के पौधों के साथ साथ मानव की आवश्यकताएं जैसे भोजन, वस्त्र, मकान, ईंधन, अनाज, रेशे, फल एवं अन्य उपयोगी उत्पादों पर आधारित प्रदर्शों को दर्शाया गया है। साथ ही, मध्य भारत में पाए जाने वाली चट्टानों, खनिजों एवं जीवाश्मों को भी मूल रूप में प्रदर्शित किया गया है।

पारिस्थितिकी तंत्र

प्रकृति में खाद्य निर्भरता हेतु जीव एक दूसरे पर आश्रित रहता है। वनस्पतियों द्वारा संश्लेषित सूर्य की ऊर्जा न केवल पौधों एवं वृक्षों के विकास में उपयोगी होती है अपितु सभी जीव इनसे अपनी ऊर्जा की आवश्यकता पूरी करते हैं। शाकाहारी जीव अपने भोजन के लिए पेड़ पौधों पर निर्भर रहते हैं तथा मांसाहारी जीव शाकाहारी जीवों का भक्षण करते हैं। इस प्रकार एक खाद्य श्रृंखला का निर्माण होता है। पारिस्थितिकी तंत्र पर आधारित आहार जाल, खाद्य पिरामिड, मृतभक्षी, भू–रासायनिक चक्र इत्यादि में प्रदर्शों के माध्यम से पारिस्थितिकी तंत्र की जानकारी प्रदान की गई है। साथ ही चर्म प्रसाधन विधि द्वारा संरक्षित भारतीय चीता के साथ तेंदुआ, शेर, भालू, चीटीखोर इत्यादि की ट्रॉफी भी प्रदर्शित की गयी है।

उसी श्रृंखला में मानव द्वारा प्रकृति के अतिदोहन के कारण अनेकों प्राणियों एवं वनस्पतियों के विलुप्त होने के कारणों को संकटापन्न प्राणियों पर आधारित डाओरमा के माध्यम से विस्तार से समझाया गया है।

कंकाल दीर्घा

कंकाल दीर्घा में बाघ, घड़ियाल, मगरमच्छ, सांभर, ह्वेल कशेरुका, खोपड़ी, घड़ियाल की त्वचा अस्थि कवच इत्यादि मूल रूप में दर्शकों के लिए प्रदर्शित हैं जिसके माध्यम से दर्शकों के लिए कंकाल, अस्थि संरचना, अस्थियों का वर्गीकरण, अस्थियों के प्रकार, अस्थियों के कार्य, अस्थियों का रहस्य इत्यादि की विस्तार से जानकारी प्रदान की गई है।

खोज केंद्र

खोज केंद्र में दर्शक, विद्यार्थी विभिन्न संवेदी अंगों का प्रयोग करके यहां उपलब्ध क्रियाकलापों को चयनित कर उनको छूकर अनुभव करते हैं। यहां पर दर्शकों के लिए सफेद बाघिन की खाल के साथ–साथ विभिन्न पक्षियों की ध्वनि, जीवों के आकार में अंतर, विश्व के विभिन्न पक्षी, पक्षियों की चौंच एवं पंजों की बनावट, विभिन्न प्राणियों के मॉडल, विलुप्त प्राणियों इत्यादि के विषय पर प्रदर्श उपलब्ध हैं। यहां पर बच्चों के लिए पर्यावरण पर आधारित महत्वपूर्ण पुस्तकों को रखा गया है जिनके माध्यम से बच्चे विभिन्न विषयों को आसानी से समझ सकते हैं।

अस्थाई प्रदर्शनी

संग्रहालय समय–समय पर जनमानस को पर्यावरण के प्रति जागरूक करने के लिए अस्थायी प्रदर्शनियों का आयोजन करता रहता है। संग्रहालय विभिन्न विषयों पर आधारित जैसे सांप हमारे दुश्मन नहीं,

भारतीय डायनासोर, बाघ बचाओ, वन्यजीव संरक्षण एवं इको पर्यटन, अमूर्त धरोहर, मध्य भारत की जनजातियां, भारत के धरोहर स्थल, मध्य प्रदेश की नदियां, अंधेरे में जंगल, तितलियों का अद्भुत संसार इत्यादि विषयों पर आधारित प्रदर्शनी प्रदर्शित कर चुका है। संग्रहालय, विभिन्न स्थानों जैसे वन विहार नेशनल पार्क, भोपाल, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, रायपुर एवं नागपुर इत्यादि स्थानों पर अस्थाई प्रदर्शनियों का सफल आयोजन कर चुका है।

पुस्तकालय

संग्रहालय के संदर्भ पुस्तकालय में वनस्पति विज्ञान, जंतु विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान, भू–विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, संग्रहालय विज्ञान, वानिकी, वन प्रबंधन, सूक्ष्म जीव विज्ञान, इत्यादि विषयों पर आधारित लगभग 5000 पुस्तकें उपलब्ध हैं जिनके माध्यम से लोग संदर्भ के रूप में सही जानकारी प्राप्त करते हैं।

प्रेक्षागृह

संग्रहालय के प्रेक्षागृह में जनमानस, विद्यार्थियों, शिक्षकों को पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक करने के लिए विभिन्न विषयों पर आधारित फिल्मों का प्रदर्शन किया जाता है।

शैक्षिक क्रियाकलाप

संग्रहालय अपने प्रदर्श, प्रदर्शनी एवं शैक्षिक क्रियाकलापों के माध्यम से विद्यार्थियों, शिक्षकों, दर्शकों, जनमानस के लिए विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों जैसे दीर्घा में दर्शकों का मार्गदर्शन, स्कूली बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम, शिक्षकों के लिए कार्यशाला, दिव्यांगजनों के लिए विभिन्न कार्यक्रम, प्रकृति के प्रति जागरूक करने के लिए चित्रकारी तथा जानवरों के मॉडल बनाने जैसी सृजनात्मक कार्यशाला, विद्यार्थियों को प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए संरक्षित क्षेत्रों का भ्रमण, ग्रीष्मकालीन प्रकृति अध्ययन कार्यक्रम, परिसर पक्षी गणना, भोजताल पक्षी गणना, भोजताल तितली गणना, नियमित फिल्म प्रदर्शन, पारिवारिक समूह के लिए विशेष कार्यक्रम, वैज्ञानिक एवं लोकप्रिय प्रकाशन, पर्यावरण के विभिन्न विषयों पर आधारित व्याख्यान, संगोष्ठी, कार्यशाला एवं परिसंवाद इत्यादि का आयोजन करता है। संग्रहालय विभिन्न सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थाओं के साथ मिलकर पर्यावरण पर आधारित विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों का भी आयोजन करता है।

क्यूआर कोड

दर्शक क्यूआर कोड के माध्यम से संग्रहालय की संपूर्ण जानकारी के साथ–साथ विभिन्न प्रदर्शों के विषय में विश्व स्तरीय जानकारी विकिपीडिया के साथ प्राप्त कर सकते हैं।

कियोस्क

संग्रहालय, कियोस्क के माध्यम से विभिन्न विषयों पर आधारित जानकारी जैसे संग्रहालय के क्रियाकलापों, फिल्म से उपलब्ध कराता है।

औषधि उद्यान

संग्रहालय के औषधि उद्यान में लगभग 110 महत्वपूर्ण औषधीय पौधों की जानकारी उपलब्ध कराई गयी है जहां पर औषधीय पौधों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के संकटापन्न पौधों को भी लगाया गया है जहां पर दर्शक, विद्यार्थी एवं शोधार्थी जानकारी प्राप्त करते हैं।

वर्मी कंपोस्ट इकाई

संग्रहालय परिसर से निकलने वाले घास, पेड़ पौधों की पत्तियों एवं जैव अपघटित कचरे के प्रबंधन के अंतर्गत कंपोस्ट बनाने के लिए वर्मी कंपोस्ट इकाई का निर्माण किया गया है एवं उस कंपोस्ट का उपयोग संग्रहालय के पेड़ पौधों को पोषण उपलब्ध कराने के लिए होता है। दर्शकों को जैव अपघटित कचरे के प्रबंधन के विषय में जानकारी दी जाती है।

पब्लिक कोर्नर

संग्रहालय में बने पब्लिक कोर्नर में दर्शकों, जनमानस द्वारा पर्यावरण के संरक्षण के लिए किए गए कार्यों जैसे चित्रकारी, प्राणियों के मॉडल, वानस्पतिक उत्पादों का संग्रह इत्यादि को प्रदर्शित करने के लिए बनाया गया है जिसका लाभ संग्रहालय के दर्शकों को प्राप्त होता है।

विशेष अभियान

संग्रहालय समय–समय पर सरकार द्वारा चलाए जा रहे पर्यावरण जागरूकता पर आधारित विभिन्न अभियानों जैसे स्वच्छता, चीता जागरूकता, रैली इत्यादि का आयोजन करता रहता है।

महत्वपूर्ण जानकारी

संग्रहालय दर्शकों के लिए निःशुल्क है। संग्रहालय राष्ट्रीय अवकाश, साप्ताहिक अवकाश सोमवार एवं महत्वपूर्ण त्योहारों को छोड़कर प्रतिदिन प्रातः 10:00 से सायं 6:00 बजे तक दर्शकों के लिए खुला रहता है।

*****

प्राचीन फलदार वृक्ष अनार

दिव्या मेहता
हिमालयी वन अनुसंधान संस्थान,
कोनिफ़र कैम्पस, पंथाघाटी,
शिमला–171 013, हिमाचल प्रदेश
email: divya-mehta1726@gmail-com

जंगली अनार एक प्राचीन फलदार वृक्ष है। पहले अनार को मलुम ग्रेनाटम कहा जाता था, जिसका अर्थ है 'दानेदार सेब'। ये प्रजातियां मध्य एशिया के मूल वृक्ष हैं, लेकिन विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में भी उगाई जाती हैं क्योंकि इनकी विभिन्न जलवायु स्थितियों के लिए उच्च अनुकूलता है। भारत में, जंगली अनार विशेष रूप से जम्मू एवं कश्मीर, उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश के मध्य–पहाड़ी क्षेत्रों में उगते हैं।

परंपरागत रूप से, जंगली अनार का उपयोग औषधीय पौधे के रूप में किया जाता है, क्योंकि इसमें बायोएक्टिव फाइटोकेमिकल्स जैसे, रोगाणुरोधी, एंटी–ऑक्सिडेंट, एंटी–इंफ्लेमेटरी, एंटी–कैंसर, एंटी–वायरल, एंटी–हेपेटोटॉक्सिक और एंटी–डायबिटिक की उपस्थिति होती है। जंगली अनार के फल और इसके व्युत्पन्न का उपयोग पुरानी बीमारी की रोकथाम में किया जाता है। अनार के फेनोलिक योगिकों और इसके डेरिवेटिव जैसे कि एलागिटैनिन्स, गैलिक एसिड, एलाजिक एसिड, क्वेरसेटिन, पुनीकलगिन और पुनिकलिन को औषधीय गुण वाला दिखाया गया है। जंगली अनार के विभिन्न भागों का उपयोग मूल्य वर्धित उत्पादों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है, जिसमें अनारदाना स्क्वैश, जेली, वाइन, ऐपेटाइज़र, सिरप, कीटनाशक, टैनिन, डाई, स्याही और कृषि उपकरण शामिल हैं। जंगली अनार के दानों का मुख्य आर्थिक उत्पाद अनारदाना है, जिसका बाजार मूल्य 300 से 400 रूपए प्रति किलोग्राम के बीच है। इस प्रकार, वर्तमान अध्ययन ग्रामीण किसानों की आजीविका को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, जहां फलों की खराब गुणवत्ता के कारण फसलों की खेती कठिन होती है। जंगली अनार में कई अन्य मुख्य विशेषताएं हैं जो इसके श्रेय के लिए अद्वितीय हैं, जिसमें जंगली अनार में अप्रभावी एलील द्वारा नियंत्रित बैक्टीरियल ब्लाइट के प्रतिरोध के लिए प्रजनन में इसका उपयोग शामिल है और एक में बढ़ावा देने के लिए उच्च गुंजाइश है। जंगली अनार का आनुवंशिक सुधार उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय अनार प्रजनन कार्यक्रमों को बढ़ावा दे सकता है।

किसी पेड़ की प्रजाति का आनुवंशिक सुधार उद्गम अध्ययन और वृक्ष प्रजनन कार्यक्रमों के माध्यम से आनुवंशिक गुणवत्ता में सुधार की प्रक्रिया है। वन के पेड़ प्राकृतिक सीमा में आनुवंशिक रूप से अपनी जंगली अवस्था के करीब होते हैं। एक प्रजाति के भीतर विभिन्न आबादी के बीच और आबादी के भीतर अलग–अलग पेड़ों के बीच भी काफी भिन्नता मौजूद है, इसलिए सर्वोत्तम जंगली बीज स्रोतों की पहचान करके और इन बीज स्रोतों के भीतर किसी विशेष स्रोत का चयन करके प्रजनन कार्यक्रमों के माध्यम से किस्मों को विकसित करने के लिए प्रजातियों के आर्थिक मूल्य में सुधार करने के अवसर हैं। भारत में, अनार के आनुवंशिक सुधार के प्रयास 1905 में शुरू हुए। अन्य फलों की फसलों की तुलना में अनार का प्रजनन अपेक्षाकृत आसान है। बड़े फूलों के आकार की उपस्थिति के परिणामस्वरूप सुविधाजनक संकरण होता है और उत्पादित फल प्रचुर मात्रा में बीजों के साथ होते हैं, जो अपेक्षाकृत कम किशोर चरण के

साथ अच्छी तरह से अंकुरित होते हैं। भारत में अनार का प्रजनन रोग प्रतिरोध, कम अम्लता और गर्म शुष्क वातावरण में उच्च फल की गुणवत्ता, रस उत्पादन और बीज कोमलता, एरिल रंग, फल का वजन, मांस का रंग, बीज का आकार और रस सामग्री और टी. एस.एस. के लिए किया जाता है।

पेड़ की प्रजातियों में संकरता की पुष्टि करने के लिए आण्विक मार्करों का बड़े पैमाने पर उपयोग किया गया है। आण्विक जीव विज्ञान तकनीकों में प्रगति के साथ, आनुवंशिक बहुरूपता की पहचान के लिए बड़ी संख्या में अत्यधिक सूचनात्मक डी. एन.ए. मार्कर विकसित किए गए हैं। पिछले एक दशक में, पोलीमरेज़ चेन रिएक्शन पर आधारित रैंडम एम्प्लीफाइड पॉलीमॉर्फिक डी.एन.ए. तकनीक पेड़ की प्रजातियों में संकरता की पुष्टि करने के लिए सबसे अधिक इस्तेमाल की जाने वाली आणविक तकनीकों में से एक रही है।

बहुविध उपयोगों वाली ऐसी प्रजातियों ने विशेष रूप से वृक्ष सुधार के संदर्भ में केवल सीमित शोध का ध्यान आकर्षित किया है। यह विभिन्न औद्योगिक उपयोगिताओं के लिए अच्छी क्षमता रखता है और कृषि वानिकी के लिए भी उत्तरदायी है। साहित्य में, प्रजनन प्रणाली से संबंधित रिपोर्टों की अनुपलब्धता है, जो कि इस वृक्ष के आनुवंशिक सुधार के लिए आवश्यक है।

*****

बाँसः काष्ठ का विकल्प

आलोक यादव एवं राहुल निषाद
पारि–पुनर्स्थापन वन अनुसंधान केंद्र
3/1 लाजपत राय रोड, नया कटरा, प्रयागराज

बाँस एक बहुमुखी गैर–काष्ठ वन उत्पाद है, जिसे गरीबों का हरा सोना भी कहा जाता है। बाँस मुख्यतः उष्ण कटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप में पाए जाते हैं। यह पादप जगत के घास परिवार पोएशी से आता है। यह एक तेजी से बढ़ने वाला संसाधन है, जो सस्ता और व्यापक रूप से उपलब्ध है। बाँस के बारे में एक कहावत प्रचलित है कि इसका उपयोग बचपन में पालने से लेकर मृत्यु के बाद अर्थी तक होता है। बाँस ग्रामीण और अर्ध शहरी कुटीर उद्योगों की श्रृंखला का एक आधार है, जो गरीबों के लिए आजीविका प्रदान करते हैं। बाँस आधारित उत्पादों का उत्पादन, एक पारंपरिक तकनीक है जिसका हजारों वर्षों से अभ्यास किया जा रहा है।

बाँस 21वीं सदी में काष्ठ का एक विकल्प है। वन एवं निजी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर बाँस के वृक्षारोपण, अधिक उपज वाली उन्नत किस्मों के उपयोग एवं पर्यावरण संतुलन के लिए बाँस लोगों की आजीविका और विकास की धुरी साबित होगा। भारत वर्ष में बाँस की 29 जातियाँ एवं 148 प्रजातियां वर्तमान में पाई जाती हैं। जो बाँस आधारित उद्यमिता द्वारा आजीविका विकास में सहायक हो सकती हैं।

बाँस का व्यापक रूप से उपयोग मुख्यतः जहाज निर्माण, फर्नीचर, सजावट के क्षेत्र, लुगदी और कागज, स्ट्रिपबोर्ड, मैटबोर्ड, लिबास, प्लाईवुड, पार्टिकलबोर्ड और फाइबरबोर्ड के लिए किया जाता है।

बाँस हल्का, सख्त एवं काष्ठ की तुलना में ज्यादा लचीला होने के कारण संरचनात्मक कंपोजिट के लिए कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल किया जाता है जिसके द्वारा काष्ठ आधारित कंपोजिट जैसे पार्टिकलबोर्ड (PB), मीडियम डेंसिटी फाइबरबोर्ड (MDF), फाइबरबोर्ड (HB), प्लाईवुड, ज़ेफायर बोर्ड, लेमिनेटेड बैम्बू लम्बर (LBL), और इनऑर्गेनिक–बॉन्डेड बोर्ड (यानी, सीमेंट), लकड़ी के प्लास्टिक कंपोजिट (WPC), ग्लू लेमिनेटेड टिम्बर (GLT), पैरेलल स्ट्रिप लंबर (PSL) और ओरिएंटेड स्ट्रैंड लम्बर (OSL) आदि बनाने के लिए प्रयोग में लिया जाता है। जिसका उपयोग कम लागत एवं ज्यादा मजबूती वाले भवन निर्माण कार्यों में किया जाता है।

वैश्विक अर्थव्यवस्था के तेजी से विकास और जनसंख्या में निरंतर वृद्धि के साथ, काष्ठ की मांग और काष्ठ आधारित कंपोजिट बढ़ रहे हैं। जिसके लिए "बाँस" को बेहतर वैकल्पिक रूप में उपयोग में लिया जा सकता है। बाँस एक ऐसा वैकल्पिक कच्चा माल है जो सस्ता, तेजी से बढ़ने वाला एवं आसानी से उपलब्ध होने वाला उत्पाद है तथा इसमें लकड़ी के तुलनीय भौतिक एवं यांत्रिक गुण भी उपलब्ध हैं।

बाँस उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में मानव जाति द्वारा उपयोग की जाने वाली सबसे पुरानी भवन निर्माण सामग्री में से एक है। बाँस का व्यापक रूप से फर्श, छत, दीवारों, खिड़कियों, दरवाजों, बाड़, जैसे अनुप्रयोगों के निर्माण में उपयोग किया जाता है। इसके अलावा, बाँस को घरेलू उत्पादों जैसे खाद्य कंटेनर, कटार, तराजू, हस्तशिल्प, खिलौने, फर्नीचर, फर्श, लकड़ी का कोयला, संगीत वाद्ययंत्र और हथियार उत्पादों की विस्तारित विविधता में भी संसाधित किया गया है। बाँस की वृहद् उपयोगिता के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में "गरीब आदमी की इमारती लकड़ी" भी कहा जाता है।

काष्ठ के वैकल्पिक रूप में बाँस का उपयोग :– काष्ठ के वैकल्पिक सामग्री के रूप में बाँस के उपयोग को निम्नलिखित व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता हैः

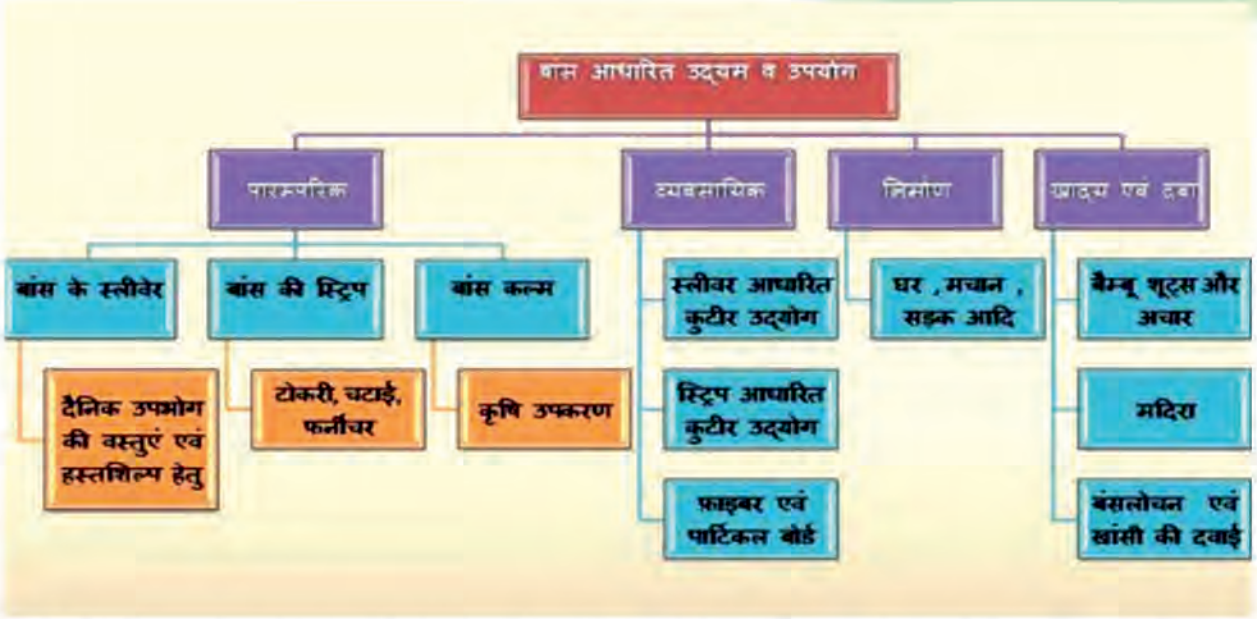

भवन निर्माण – बाँस कई देशों में एक प्रमुख निर्माण सामग्री है, विशेष रूप से एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका में, क्योंकि इसकी मजबूत विशेषताओं, हल्के वजन और लचीले गुणों के कारण इसका उपयोग घरों के लगभग सभी हिस्सों (पर्दों, छतों, दीवारों, फर्श, बीम और ट्रस) के लिए किया जा सकता है।

हस्तशिल्प – सोफे, डाइनिंग टेबल, बास्केट, ज़ार, बाक्स, केस, फोल्डिंग स्क्रीन, जानवरों के माडल और आकृति, भवन, फर्नीचर, लैंप और लालटेन, बैग, खिलौने, पंखे और चटाई सहित विभिन्न बांस आधारित उत्पाद हैं। इनमें कृषि उपकरण, मछली पकड़ने के उपकरण, संगीत वाद्ययंत्र, और बुने हुए मैट शामिल हैं।

लकड़ी का कोयला – बाँस चारकोल पारंपरिक रूप से लकड़ी के चारकोल या खनिज कोयले के विकल्प के रूप में उपयोग किया जाता है। यह ईंधन के रूप में काम कर सकता है तथा पीने के पानी की सफाई, खाना बनाना, सौंदर्य सामग्री, मिट्टी में सुधार करना, कमरे की नमी को नियंत्रित करना, बिजली के संचालन आदि उपयोगों में बेहतर एवं महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है।

लुगदी और कागज – बाँस के रेशे अपेक्षाकृत लंबे होते हैं, इस प्रकार इसका उपयोग कागज उत्पादन के लिए किया जा सकता है। बाँस का कागज व्यावहारिक रूप से काष्ठ से बने कागज के समान गुणवत्ता वाला होता है एवं इसकी चमक और ऑप्टिकल गुण स्थिर रहते हैं।

बांस आधारित फाइबरः बांस के तंतुओं को यार्न और कपडों में फाइबर के निर्माण के लिए अनुकूलित किया गया है, जो स्वाभाविक रूप से एंटी–माइक्रोबियल हैं, और कपड़े में सूक्ष्म छिद्रों की उपस्थिति के कारण कपास की तुलना में नमी को तीन गुना अवशोषित करते हैं।

सम्मिलित बोर्ड – कम्पोजिट बोर्डों में बाँस कल्म्स का उपयोग किया जाता है। बाँस द्वारा निर्मित कम्पोजिट बोर्डों का उपयोग आधुनिक निर्माण में संरचनात्मक तत्वों के रूप में पैनलों का व्यापक रूप से कंक्रीट मोल्डिंग के लिए, फर्श, छत, विभाजन, दरवाजे और खिड़की के फ्रेम के लिए भी किया जाता है। जो काष्ठ के बोर्डों के सामान मजबूती एवं कठोरता के समतुल्य हैं।

बाँस द्वारा निर्मित घरेलू सामान

बाँस द्वारा निर्मित घर

बाँस द्वारा निर्मित सामान

बाँस द्वारा निर्मित रेशा

बाँस का काष्ठ के वैकल्पिक रूप में विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग

भारत में बाँस के लिए घरेलू बाजार 400 मिलियन अमेरिकी डालर का है जबकि बाँस उत्पादों के लिए अंतरराष्ट्रीय बाजार 1.7 बिलियन अमेरिकी डालर है। यह प्रदर्शित करता है कि बाँस उद्यम विकास तथा किसानों के लिए अपनी आय बढ़ाने का वृहद अवसर प्रदान करता है। इसकी विशेषताएं और रोजगार पैदा करने की क्षमता, तीव्रता से दुनिया भर में अपना स्थान बना रही है।

भारत सरकार द्वारा किसानों की आय दुगनी करने के लिए बाँस को विशिष्ट स्थान दिया जा रहा है। सरकारी आंकडे के अनुसार बाँस को उगाने में, इसके रखरखाव, फसल, परिवहन, भंडारण और अंतिम उपयोग में हर साल 516.33 मिलियन कार्य घंटे उत्पन्न किए जा सकते हैं। ग्रामीण समुदाय अपने कौशल व पारंपरिक ज्ञान से बाँस के लघु व मध्यम क्षेत्र के उद्योगों द्वारा आय और रोजगार पैदा करने में अत्यंत उपयोगी हो सकता है, विशेष रूप से दूर–दराज के उन क्षेत्रों और समुदायों के बीच, जो आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े हुए हैं। कागज उद्योग तथा हस्तशिल्प उद्योगों में कच्चे माल के रूप में बांस की मांग है तथा बाँस प्ररोह विभिन्न खाद्य रूप में प्रयोग होता है। भोजन तथा औद्योगिक उपयोग के अलावा आदिवासी ग्रामीण गरीबों की पोषण सुरक्षा में अहम भूमिका है। अब सम्पूर्ण विश्व बाँस के गैर परंपरागत उपयोग की दिशा में भी ध्यान दे रहा है। इसके अलावा, इसे संसाधित करना आसान है और काष्ठ की तुलना में इसकी कीमत बहुत कम है। जिसके फल स्वरूप बाँस–आधारित सम्मिश्रण एक अत्यधिक प्रतिस्पर्धी विकल्प बन जाएगा तथा काष्ठ आधारित कंपोजिट भविष्य में एक महत्वपूर्ण वन आधारित उत्पाद बन जाएगा।

*****

'पर्यावरण और प्रदूषण'

डॉ. वासंती रामचंद्रन
सी– 2– 16 – सहयाद्रि, प्लॉट – 5 सेक्टर – 12
द्वारका, नई दिल्ली – 110078,
मोबाईलः 9818752270, Ramvas2000@yahoo.com

हम प्रतिवर्ष 5 जून को 'पर्यावरण दिवस' मनाते हैं। हममें से कई लोग यह नहीं जानते कि हम ये दिन क्यों मनाते हैं? केवल एक दिन इस दिन को मना लेना फिर भूल जाना, ठीक नहीं। पर्यावरण क्या है यह जानना अनिवार्य है, उसके प्रति हमारा कर्तव्य क्या है, यह भी जानना नितांत आवश्यक है।

पर्यावरण शब्द संस्कृत भाषा के 'परि' उपसर्ग (चारों ओर) और आवरण से मिलकर बना है जिसका अर्थ है ऐसी चीजों का समुच्चय जो किसी व्यक्ति या जीवधारी को चारों ओर से आवृत्त किए हुए है। यह आवरण प्राकृतिक, भौतिक व सामाजिक आवरण है वही सही अर्थों में पर्यावरण कहलाता है। पर्यावरण के चार घटक होते हैं :–

- जल मंडल
- स्थल मंडल
- वायु मंडल
- उसमें रहने वाला 'जीव–मंडल'

उपरोक्त तीन घटक तो प्राकृतिक हैं, लेकिन इनका संरक्षण पूर्ण रूप से 'जीव–मंडल' का कर्तव्य है। इसका कारण है जल– थल– वायु इन सभी का उपयोग 'जीव–मंडल' ही तो करता है, फिर उसकी देखभाल व संरक्षण करने से क्यों पीछे हटे। उसके जीवन में ये तीनों घटक अनिवार्य हैं जिनके बिना जीवित रहना संभव ही नहीं। जीवित रहने के लिए उसे ये तीनों घटक तो चाहिए लेकिन बिल्कुल स्वच्छ। अतः उपयोग में लाने के साथ साथ उन्हें प्रदूषण से भी बचाए रखना उसका कर्तव्य है।

मनुष्य, पक्षी, पशु, सभी सांस लेते हैं। हर बार वायु उनके भीतर जाती है, फिर बाहर आती है। दोनों बार निस्संदेह उनके संघटन में फर्क होता है लेकिन शर्त यह है कि वह प्रदूषण रहित होना चाहिए। वायु–प्रदूषण पर्यावरण की अत्यंत महत्वपूर्ण समस्या है, साथ ही जटिल भी। यह मनुष्यों और पर्यावरणीय स्थितियों के बीच उत्पन्न स्थिति है। वायु–प्रदूषण विभिन्न क्रियाओं से हो सकता है :–

1) प्राकृतिक कारणों सेः–

- ज्वालामुखी के फटने से उठते धुएँ से।
- वायु के तेज बहाव से – दूषक को हवा धरती से उठाकर व्यापक रूप से हस्तांतरित करती है
- जंगल में लगी प्रचंड आग (दावानल) से, जिसमें कार्बन मोनोआक्साईड ही मुख्य है।
- कचरा जब सड़ता है तब सूक्ष्म जीवियों द्वारा 'मीथेन' गैस का निकास होता है।
- रेडियोधर्मी वस्तुओं के सड़ने से 'रेडान' गैस उत्पन्न होता है। अकसर ऐसा प्रदूषण मकानों के बेसमेंट के बंद स्थानों पर होता है।

2) मनुष्यों की गतिविधियों के कारणः–

- खनन के स्थानों पर उनके सूक्ष्म टुकड़े वायु में फैल जाते हैं।
- खनिज अयस्कों को जब भट्टियों में झोंका जाता है उसमें से उड़ती चिनगारी में सूक्ष्म टुकड़े दूषक बन जाते हैं।
- ढलई – घर के आसपास वायु प्रदूषित होती है।

- अनेक औद्योगिक फैक्टरियों में कार्बनिक और अकार्बनिक दूषक फैल जाते हैं। ऐसा अकसर रासायनिक द्रवों के गिरकर फैलने से या रिसने से होता है।
- जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर रासायनिक पदार्थों को भेजा जाता है तब भी विभिन्न गैसीय पदार्थों का जैसे कार्बन – मोनोआक्साइड, सल्फर आक्साइड, नाईट्रोजन आक्साइड का प्रदूषण हो सकता है।
- जब मकानों की तोड़फोड़ या मरम्मत होती है तब सीमेंट, चूना, गारा, आदि के महीन टुकड़े हवा में फैल जाते हैं।
- फैक्टरियों में जब कोयले को जलाया जाता है तो विभिन्न प्रकार की हानिकारक गैसों का उत्सर्जन होता है।
- कचरा – भराव – क्षेत्र (लैंडफिल) से 'मीथेन' गैस का उत्सर्जन होता है।
- कृषि में कीटनाशक औषधियों के छिड़काव के कारण अमोनिया गैस का उत्सर्जन होता है।
- जंगल में लगी आग से भी हानिकारक गैस निकलती है।
- बीड़ी – सिगरेट का धुँआ भी स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है।
- पेइंट, पॉलिश, वार्निश आदि में भी कार्बनिक घोलक होते हैं जो वाष्प बनकर वायु में फैल जाते हैं, कैंसर जैसे रोग उत्पन्न करते हैं।
- ड्राईक्लीन किए गए कपड़ों को जब हवा में फैलाया जाता है तब भी पेट्रोलियम से निकले दूषक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं।

वायु एक स्थान पर स्थिर नहीं है, अतः दूषक आगे, आसपास फैलते जाते हैं। बहुत दूर तो नहीं जा सकते, यदि जाते भी हैं तो उनकी सांद्रता कम हो जाती है। अतः सरकार इस बात को ध्यान में रखते हुए फैक्टरियों को शहर से दूर लगाने की सलाह देती है।

यातायात के साधन कार, ट्रक, दोपहिये इत्यादि डीजल एवं पेट्रोल से चलते हैं, जो गैसीय पदार्थों का निष्कासन करते हैं। ऐसे प्रदूषण को न्यूनतम करने के लिये उनका सही समय पर 'सर्विसिंग' व प्रदूषण परीक्षण करवाना चाहिए।

कुछ गैस, उदाहरण के लिए ओजोन गैस। यह एक रोचक तथ्य है कि ओजोन गैस अच्छी भी है और बुरी भी। बस यही है कि पृथ्वी के वायुमंडल में कौन से स्थान पर स्थित है? यदि उसकी परत आकाश की ऊँचाईयों पर है तो लाभकारी है क्योंकि यह सूरज की हानिकारक शक्ति अर्थात् विकिरण को रोक देती है और हम पर अल्ट्रावायलेट किरणों का कुप्रभाव नहीं पड़ता। धरती के करीब होने पर स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। ओजोन के स्रोत हैं फैक्टरी का धुआँ, लकड़ियों (ईंधन) के जलने से, सूखे पत्तों के जलने से, कार या ट्रक के धुएँ में भी उसका निकास है।

कुछ 'ऐरोसाल' सूर्य की किरणों को सोख लेते हैं, कुछ परावर्तित करते हैं। यह ऐरोसाल के रंग पर निर्भर करता है। साधारणतया वायु की गुणवत्ता का, विश्व में स्थित बड़े – बड़े शहरों के संदर्भ में ही जिक्र किया जाता है।

प्रदूषण मिट्टी का भी हो सकता है क्योंकि दैनिक जीवन में हम मिट्टी से भी जुड़े हुए हैं। मिट्टी में ही खेती की जाती है, फसल उगाई जाती है, जिससे हमें भोजन मिलता है। वायु, जल व मिट्टी इन तीनों का आपस में गहन संबंध है। कोई भी कचरा, कोई भी अपशिष्ट मिट्टी पर ही फेंका जाता है, वही एक स्थान है जो हर किसी को सरलता से उपलब्ध है।

चूँकि मिट्टी विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीवियों, पक्षियों और कीड़े–मकोड़ों का निवास स्थान होती है, मिट्टी में हुए रासायनिक परिवर्तन का उन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उनकी भोजन श्रृँखला भी टूट जाती है,

धीरे–धीरे मिट्टी पर निर्भर जीवों की मृत्यु हो जाती है। मिट्टी में जब विषैले रासायनिक पदार्थ उपस्थित होते हैं तो ऐसी मिट्टी मनुष्य के स्वास्थ्य और पारिस्थितिकी–तंत्र पर कुप्रभाव डालती है। यह मनुष्य की गतिविधियों का ही परिणाम है, जो मिट्टी को प्रदूषित करता है। इन रासायनिक पदार्थों की यदि मिट्टी में सांद्रता निम्नस्तरीय हो तो हानि नहीं होती। प्रदूषण के कुछ मुख्य कारण इस प्रकार है:–

- कृषि उद्योग में कीटनाशक औषधियों का अत्यधिक उपयोग किया जाना।
- औद्योगिक रासायनिक पदार्थों का रिसाव।
- ठोस अपशिष्ट का सही तरीके से निपटान न किया जाना।
- शहरी गतिविधियों के कारण हुआ मिट्टी का प्रदूषण।
- अम्लीय वर्षा–दूषित पदार्थों का वायुमंडल में उपस्थित होना और वाष्प के साथ मिलकर वर्षा के जल में उतरना, फिर धरती पर गिरना। अम्लीय वर्षा के कारण भूमि में स्थित मिट्टी का निम्नीकरण हो जाना। ऐसी मिट्टी कृषि के योग्य नहीं रह जाती।
- सीसा और पारा जैसे भारी धातुओं का मिट्टी में सांद्रता का बढ़ जाना।
- प्रदूषण से भरी मिट्टी किसी के भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है।
- रेडियोधर्मी कचरे की उपस्थिति से भी मिट्टी का निम्नीकरण हो जाता है।
- जब तेल व रासायनिक पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाया जाता है, बीच में किसी कारणवश उनका रिसाव मिट्टी में हो जाने से वह अनुपयोगी हो जाती है। यही रासायनिक मिट्टी से छनकर भूजल में मिलकर जल को भी प्रदूषित कर देते हैं। इस तरह जल पीने योग्य नहीं रह जाता।

प्रदूषित मिट्टी मनुष्यों के स्वास्थ्य, वनस्पति और जीवों पर कुप्रभाव डालती है। इसका कारण यह है कि पेड़–पौधे अपनी जड़ों द्वारा इन विषैले पदार्थों को सोख लेते हैं। इनका भोजन बनाकर खाने से नुक्सान पहुँचता है। बच्चे अक्सर बाहर खेलते हैं, मिट्टी को छूते हैं, प्रदूषित मिट्टी उनके शरीर में विषैले रासायनिक पदार्थों को पहुँचाकर उन्हें दीर्घकालिक रोगों का शिकार बनाती है।

मिट्टी के प्रदूषण को रोकने की कुछ संभावनाएँ दिखाई देती हैं जिन्हें अपनाकर कुछ हद तक इस समस्या को सुलझाया जा सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि मनुष्यों को मिट्टी की महत्ता को भली – भांति समझना चाहिए। साथ ही मिट्टी की रचना, उसके प्रदूषण और दूषण के स्रोतों का अध्ययन करना अनिवार्य है। किसी एक व्यक्ति से यह समस्या नहीं सुलझ सकती, इसमें सभी की भागीदारी होनी चाहिए। जहाँ तक हो सके इन बातों को अपनाना होगा:–

- रासायनिक खाद का उपयोग न्यूनतम किया जाए।
- मिट्टी से जुड़ी समस्याएं जैसे भूक्षरण को रोकने के लिए जनसंख्या का नियंत्रण किया जाना चाहिए ताकि पेड़ों को बचाया जाए। अंधाधुंध रूप से घर बनाने को रोका जाए। जंगलों की कटाई कम करके उनका पुनर्स्थापन किया जाए।

- वस्तुओं को पुनः चक्रित किया जाए ताकि अपशिष्ट की मात्रा कम हो जाए।
- प्लास्टिक के स्थान पर काँच की वस्तुओं का प्रयोग किया जाए क्योंकि काँच को बार–बार इस्तेमाल किया जा सकता है।
- प्राकृतिक खादों के इस्तेमाल को बढ़ावा देना होगा।

जल प्रदूषणः–

जल प्रदूषण जल की एक स्थिति है जिसमें जलाशयों का जल दूषित हो जाता है। मुख्य रूप से मनुष्यों के द्वारा की गई गतिविधियाँ ही जल को जहाँ तहाँ दूषित करती रहती हैं। झील, जलाशय, नदी, समुद्र, भूजल इत्यादि जल निकायों में शामिल हैं। प्रदूषण का स्तर इस बात पर निर्भर करता है कि कितना दूषित पदार्थ जल में आकर मिला है। बस इसी बात का ध्यान रखना जरूरी है कि जल का प्रदूषण पारिस्थितिकी–तंत्र के प्राकृतिक संतुलन को न बिगाड़ दे। जल को कूड़ा करकट, रासायनिक पदार्थ, सूक्ष्म जीव भी दूषित कर सकते हैं।

किसी किसी स्थान पर जल का प्रदूषण धातुओं या फिर औद्योगिक उत्पादन के अपशिष्ट के कारण होता है। इन अपशिष्टों का स्रोत कहाँ है इसकी जानकारी रखना भी आवश्यक है।

जल प्रदूषण मुख्य रूप से इन कुछ कारणों से होता है :–

- **ग्लोबल वार्मिंग अर्थात् विश्वव्यापी तापमान वृद्धि**– जब वायुमंडल में कार्बनडाइआक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है तो वायुमंडल के तापमान में बढ़ोतरी हो जाती है।
- **निर्वनीकरण/वनों की कटाई** :– वनों की कटाई का मुख्य कारण जंगलों के संरक्षण की आवश्यकता के बारे में पर्याप्त ज्ञान की कमी है। वनों की कटाई के प्राकृतिक कारणों में ग्लोबल वार्मिंग, भूस्खलन, भूकंप, ओले, तेज हवायें, तूफान आदि शामिल हैं। इसके अलावा जंगलों में लगी हुई आग से वनों को नुकसान पहुँचता है।
- **वनोन्मूलन से विश्व** – तापन हो रहा है जिससे बर्फीले पहाड़ पिघल रहे हैं। प्राकृतिक आपदाएं जैसे बाढ़, सूखा आदि की संभावनाएँ बढ़ रही हैं, प्रकृति पर प्राकृतिक संतुलन भी बिगड़ रहा है।
- **कृषि – उद्योग,** पशुपालन, जिनके अपशिष्टों का निपटान भली भाँति नहीं किया जाता।
- **मल – मूत्र,** कचरा इत्यादि को भी किसी नदी, तालाब इत्यादि के पास उतारने से भी जल दूषित हो जाता है।
- समुद्री यातायात और व्यापार के कारण भी जल प्रदूषण हो जाता है। जहाजों द्वारा बड़े–बड़े कनस्तरों में भेजे जा रहे तेल के रिसाव के कारण ऐसा होता है।
- विभिन्न रोगियों द्वारा जल में थूक, मल–मूत्र इत्यादि फेंके जाने के कारण उसमें जीवाणु संक्रमण हो जाता है, मोतीझिरा (टायफायड), हैजा जैसे कई रोग इस प्रदूषित जल को उपयोग में लाने के कारण हो जाते हैं।
- पारिस्थितिकी तंत्र का संतुलन उस समय भी बिगड़ जाता है जब अम्लीय वर्षा होती है।

वायुमंडल में विद्यमान अनेक प्रकार के गैस, रासायनिक तत्व व प्रदूषण आदि जल–वाष्प से अभिक्रिया कर अम्लों का निर्माण करती हैं। इन अम्लों से संदूषित वर्षा जल निकायों पर व मिट्टी में होने के कारण व्यापक रुप से प्रदूषण हो जाता है।

पारिस्थितिकी–तंत्र अत्यंत सक्रिय और सुग्राही होता है अतः पर्यावरण का एक छोटा सा परिवर्तन भी वृहद् रूप ले लेता है। जल–प्रदूषण को यदि समय रहते नियंत्रित न किया जाय तो संपूर्ण पारिस्थितिकी – तंत्र क्षतिग्रस्त हो जाता है। जल की गुणवत्ता न्यूनतम हो जाने पर जलीय जीव, जलीय व अन्य थलीय वनस्पति भी प्रभावित होते हैं। कीड़े–मकोड़े व मछलियाँ जो पक्षियों व अन्य जीवों के भोजन होते हैं वे भी विषाक्त हो जाते हैं क्योंकि उनके जीने की क्षमता और सहनशीलता कम हो जाती है।

पर्यावरण के तीन मुख्य तत्व वायु, जल और मिट्टी एक दूसरे से गहरे जुड़े हुए हैं और इन्हें जोड़ने का श्रेय मानव – जाति को जाता है। जोड़ने वाली प्रक्रिया को तो कायम रखना ही है और ये देखना है कि इन्हें क्षति न पहुँचे और न प्रदूषण जैसी विपत्ति में ढ़केलना पड़े, न स्वयं को विभिन्न रोगों से ग्रस्त होना पड़े।

*****

पर्यावरण संरक्षण के लिए इलेक्ट्रॉनिक कचरा (ई–वेस्ट) का उचित प्रबंधन एवं निपटान

राकेश कुमार सिंह
वैज्ञानिक–एफ
गोविंद बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान,
हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र, मौहल,
कुल्लू – 175126, हिमाचल प्रदेश, भारत
ई–मेल ksingh@gbpihed.nic.in

इलेक्ट्रॉनिक कचरा (ई–वेस्ट) एवं इसके सृजन के मुख्य कारण

जब हम इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को लम्बे समय तक प्रयोग करने के पश्चात् उसको बदलने या खराब होने पर दूसरा नया उपकरण प्रयोग में लाते हैं, तो इस निष्प्रयोज्य खराब उपकरण को ई–वेस्ट कहा जाता है जैसेः– कम्प्यूटर, मोबाईल फोन, प्रिंटर्स, फोटोकॉपी मशीन, इन्वर्टर, यूपीएस, एलसीडी टेलीविजन, रेडियो ट्रांजिस्टर, डिजिटल कैमरा आदि। विश्व में लगभग 200 से 500 लाख मी. टन ई–वेस्ट जनित होता है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, नई दिल्ली द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार वर्ष 2005 में भारत में जनित ई–वेस्ट की कुल मात्रा 1.47 लाख मी. टन थी, जो कि वर्ष 2012 में बढ़कर लगभग 8 लाख मी. टन हो गई है। जिससे विदित होता है कि भारत में जनित ई–वेस्ट की मात्रा विगत 6 वर्षों में लगभग 5 गुनी हो गई है तथा इसमें निरंतर वृद्धि हो रही है।

ई–वेस्ट के सृजन का मुख्य कारण बढ़ती आबादी और उनकी बढ़ती जरूरतें हैं। इसके अलावा अनेक ऐसे कारण जो मिलकर इसे एक बहुत बड़ा खतरा बना रहे हैंः–

- **विकास** : आज विश्व के लगभग सभी देशों में विकास की होड लगी हुई है। प्रत्येक देश विकास के लिए नए–नए आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का उत्पादन कर रहा है। नई तकनीकों के विकास के साथ ही पुराने इलेक्ट्रॉनिक उपकरण ई–वेस्ट के सृजन का मुख्य कारण बनते हैं। विकसित देश सबसे अधिक मात्रा में ई–वेस्ट का सृजन करते हैं।
- **प्रौद्योगिकी** : आधुनिक प्रौद्योगिकी के चलते ही बाजार में नए उत्पाद और उपकरण आ रहे हैं, जिससे लोग पुरानी चीजों के खराब न होते हुए भी उनका इस्तेमाल नहीं करना चाहते हैं एवं नई तकनीक के लिए नए इलेक्ट्रॉनिक उपकरण खरीदते हैं। ये पुराने उत्पाद और उपकरण ई–वेस्ट सृजन का कारण बनते हैं।
- **मानवीय मानसिकता** : अगर किसी चीज को सही तरीके से लम्बे समय तक इस्तेमाल नहीं किया गया तो यह ई–वेस्ट बन जाती है। वर्तमान समय में धनशक्ति के चलते लोग अपनी पुरानी चीजों के बदले नई चीजें ज्यादा इस्तेमाल करना चाहते हैं और ये पुरानी सामग्री ही बाद में ई–वेस्ट बन जाते है।
- **आबादी** : बढती आबादी चीजों को पुनः उपयोग करने के बदले हमेशा नई चीजें खरीदना चाहती है। अगर ऐसे में इसके ई–वेस्ट के बारे में नहीं सोचा गया तो ये आगे चल कर एक बड़ा खतरा बन सकता है।

ई–वेस्ट के स्रोत

वैसे तो ई–वेस्ट के बहुत सारे स्रोत हैं लेकिन मुख्य रूप से उन्हें तीन श्रेणी में बांटा गया है :

- **सफेद गुड्स** : ये घर के बड़े बिजली के सामान हैं जो परंपरागत रूप से केवल सफेद रंग में उपलब्ध होते हैं। भले ही उन्हें आज विभिन्न रंगों की एक विस्तृत श्रृंखला में खरीद सकते हैं, फिर भी उन्हें सफेद गुड्स कहा जाता है। बड़े घरेलू उपकरण जैसे स्टोव (ब्रिटिश : कुकर), रेफ्रिजरेटर, फ्रीजर, वाशिंग मशीन, टम्बल ड्रिकर्स, डिशवॉशर और एयर कंडीशनर हैं।
- **ब्राउन गुड्स** : ब्राउन गुड्स अपेक्षाकृत हल्के इलेक्ट्रॉनिक उपकरण जैसे कंप्यूटर, रेडियो, ऑडियो उपकरण और टीवी हैं। डिजिटल मीडिया प्लेयर और गेम कंसोल भी ब्राउन गुड्स श्रेणी में हैं। हम कभी–कभी इन उत्पादों को उपभोक्ता इलेक्ट्रॉनिक्स या हल्के उपभोक्ता इलेक्ट्रॉनिक ड्यूरेबल्स के रूप में संदर्भित करते हैं।
- **ग्रे गुड्स** : इनका निर्माण, ब्रांड के मालिक द्वारा या लाइसेंस के तहत किया गया है। इनमें छूट इसलिए आती है क्योंकि उन्हें आधिकारिक चैनलों के माध्यम से नहीं बेचा जाता है, और आमतौर पर दूसरे देश से लाया जाता है। ग्रे गुड्स के अंतर्गत कंप्यूटर, स्कैनर, प्रिंटर, मोबाइल फोन आदि आते हैं।

मानव स्वास्थ्य पर ई–वेस्ट का प्रभाव

इलेक्ट्रॉनिक कचरे को अवैज्ञानिक तरीके से निस्तारित किए जाने (खुले में जलाने) से उत्पन्न वायु प्रदूषण से मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इलेक्ट्रॉनिक कचरे को जलाने से कार्सेनोजेन्स–डाईबेंजो पैरा डायोक्सिन (टीसीडीडी) एवं न्यूरोटॉक्सिन्स जैसी विषैली गैसें उत्पन्न होती हैं। इन गैसों से मानव शरीर में शारीरिक विकास, प्रजनन क्षमता एवं प्रतिरोधक क्षमता प्रभावित होती है। साथ ही हार्मोनल असंतुलन व कैंसर होने की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। इसके अतिरिक्त कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, तथा क्लोरो–फ्लोरो कार्बन भी जनित होती है। जो वायुमण्डल व ओज़ोन परत के लिए हानिकारक है।

कुछ लोगों द्वारा आर्थिक लाभ कमाने के उद्देश्य से बड़े शहरों में जनित होने वाले ई–वेस्ट को अवैध रूप से लाकर, टुकड़ों में अलग किए जाने का कार्य एवं अवैज्ञानिक तरीके से खुले में अवैध रूप से जलाकर धातु एकत्र करने का कार्य किया जाता है। जिससे शहर के पर्यावरण एवं आम जनता के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार जलाए गए ई–वेस्ट के अवशेष की, ड्रम बाल मिल में पिसाई की जाती है उसके पश्चात उसको छलनी से छाना जाता है तथा बची हुई राख की धुलाई की जाती है। ई–वेस्ट की राख में विभिन्न प्रकार की विषैली धातुएं होती हैं जोकि पानी के साथ मिलकर नदी के जल को भी विषाक्त करने के साथ–साथ नदी के किनारों पर एकत्र हो जाती हैं, जिससे नदी लगातार उथली होती जाती है। इन क्षेत्रों में परिवेशीय वायु गुणवत्ता में जिंक, कॉपर, आयरन, एल्युमिनियम, क्रोमियम, निकिल, लेड की मात्रा मानकों से अधिक पाई गई है। वायु में इन विषैली धातुओं की उपस्थिति का मुख्य स्रोत ई–वेस्ट का जलाया जाना है। क्योंकि ई–वेस्ट में उपरोक्त धातुएं पायी जाती हैं जिसको जलाने से उक्त धातुएं उत्सर्जित होती हैं जो परिवेशीय वायु में रहकर सांस के माध्यम से शरीर में पहुँचकर शरीर के विभिन्न अंगों को अपनी विषाक्तता से प्रभावित करती हैं।

तालिका–1 : मानव स्वास्थ्य पर ई–वेस्ट का प्रभाव

क्र.सं.	ई–वेस्ट का प्रकार	विषाक्त पदार्थ	मानव पर पड़ने वाला कुप्रभाव
1.	पिंटेड सर्किट बोर्ड	लेड, कैडमियम	वृक्क, यकृत, तंत्रिका तंत्र, सिर दर्द।
2.	मदर बोर्ड	बेरिलियम	फुफ्फुस, त्वचा व दीर्घकालिक रोग।
3.	कैथोड ट्यूब	लेड ऑक्साइड, बैरियम, कैडमियम	हृदय, यकृत, मांसपेशियां, उदरशोथ।
4.	स्विच, फ्लैट स्क्रीन मॉनिटर	मरकरी	मस्तिष्क, वृक्क, भ्रूण का अवकसित होना।
5.	कंप्यूटर बैटरी	कैडमियम	वृक्क, यकृत को प्रभावित करता है।
6.	केबिल इन्सुलेशन कोटिंग	पॉली विनायल क्लोराइड	शारीरिक प्रतिरोधक क्षमता को प्रभावित करता है।
7.	प्लास्टिक हाउसिंग	ब्रोमीन	हार्मोनल तंत्र को प्रभावित करता है।

पर्यावरण पर ई–वेस्ट का प्रभाव

पर्यावरण को लेकर अभी हमारे देश में पूरी तरह जागरूकता नहीं आई है। प्रदूषण जैसे अहम मुद्दे विकास के नाम पर पीछे छूट गए हैं। ऐसे में ई–वेस्ट के बारे में देश में बिल्कुल भी जानकारी नहीं है न ही इस दिशा में कोई कदम उठते नजर आ रहे हैं। इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों से बाजार भरे पड़े हैं। तकनीक में हो रहे लगातार बदलावों के कारण उपभोक्ता भी नए–नए इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों से घर भर रहे हैं। ऐसे में पुराने उत्पादों को वह कबाड़ में बेच देता है और यहीं से आरंभ होती है ई–कचरे की समस्या।

- **हवा पर प्रभाव** : ई–वेस्ट का हवा में आमतौर पर सामान्य प्रभाव वायु प्रदूषण के द्वारा होता है। यह तो हम लोग जानते ही हैं कि इलेक्ट्रॉनिक कचरे में ऐसी बहुत सी चीजें आती हैं जिन्हें पाने के लिए लोग इसे जला डालते हैं और चीजों के जलने से वायु प्रदूषण होना एक आम बात है।
- **पानी पर प्रभाव** : भारी धातुएँ जैसे कि लेड, बेरियम, पारा, लिथियम (जो कि मोबाइल फ़ोन और कंप्यूटर की बैटरियों में होती है) अगर इनका सही रूप से निपटान नहीं किया गया तो ये भारी धातुएँ मिट्टी में मिलकर भू–जल चैनल तक पहुँच जाती हैं जो आगे चलकर सतह में स्थित धाराओं और छोटे तालाबों में मिल जाती हैं, और ये आगे चल कर जल प्रदूषण का रूप ले सकती हैं।
- **मिट्टी पर प्रभाव** : अगर इलेक्ट्रॉनिक कचरे का सही ढंग से निपटान नहीं किया गया, तो यह मिट्टी के माध्यम से भी हमारे लिए बहुत बड़ा खतरा बन सकता है, क्योंकि इसमें जो भारी धातुएँ और रसायन होते हैं वो हमारे "मिटटी, फसल और खाने के चक्र" में घुस जाते हैं, जिससे कि ये भारी धातुएँ मनुष्य के सम्पर्क में आ जाती हैं और ये लम्बे समय तक मनुष्य के शरीर में रहती हैं।

तालिका–2: इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के डिस्कार्ड होने की औसत अवधि

इलेक्ट्रॉनिक उपकरण	अवधि
मोबाइल टेलीफोन्स	1 से 3 वर्ष
पर्सनल कंप्यूटर्स	2 से 3 वर्ष
कैमरा	3 से 5 वर्ष
टेलीविजन एलसीडी	5 से 8 वर्ष
रेफ्रीजेरेटर	5 से 10 वर्ष
वाशिंग मशीन	5 से 10 वर्ष
आईटी ऐसेसिरीज	बहुत जल्दी–जल्दी

ई–वेस्ट का सुरक्षित उपचार एवं निस्तारण की विधियाँ

ई–वेस्ट का सुरक्षित उपचार एवं निस्तारण मुख्यतया 5 प्रकार से किया जाता है :

- **सुरक्षित विधि से भूमि में दबाना (सिक्योर्ड लैण्डफिलिंग)** : समतल जमीन में गड्ढ़ों का निर्माण कर उसमें ई–वेस्ट को डालकर मिट्टी से दबा दिया जाता है। परंतु ई–वेस्ट के सुरक्षित निस्तारण हेतु गड्ढों को प्लास्टिक (एचडीपीई) की मोटी शीट से लाईनिंग करके सतह को सुरक्षित रखते हुए दबाया जाना चाहिए।

- **भस्मीकरण (इन्सिनेरेशन)**: इस प्रक्रिया में ई–वेस्ट को 900 से 1000 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान पर इन्सिनेरेटर के अंदर पूर्णतः बंद चैम्बर में जलाया जाता है। जिससे ई–वेस्ट की मात्रा काफी कम हो जाती है तथा उसमें उपस्थित आर्गेनिक पदार्थ की विषाक्तता काफी कम हो जाती है। इन्सिनेरेटर में लगी हुई चिमनी से निकलने वाले धुएँ एवं गैस को वायु प्रदूषण नियंत्रण व्यवस्था (एपीसीएस) के माध्यम से गुजारा जाता है एवं धुएँ में उपस्थित विभिन्न प्रकार की धातुओं को रासायनिक

क्रिया से पृथक कर लिया जाता है तथा गैसों को उपचारित किया जाता है।

- **पुनर्चक्रण (रिसाइकिलिंग)** : इलेक्ट्रॉनिक कचरे जैसे मॉनिटर, पिक्चर ट्यूब, लैपटॉप, कीबोर्ड, टेलीफोन, हार्ड ड्राइव, सीडी ड्राइव, फैक्स मशीन, प्रिंटर, सीपीयू, मोडेम, केबल आदि उपकरणों का पुनर्चक्रण किया जा

सकता है। इस प्रक्रिया में विभिन्न धातुओं एवं प्लास्टिक को अलग–अलग करके उसको पुनः उपयोग हेतु संरक्षित कर लिया जाता है।

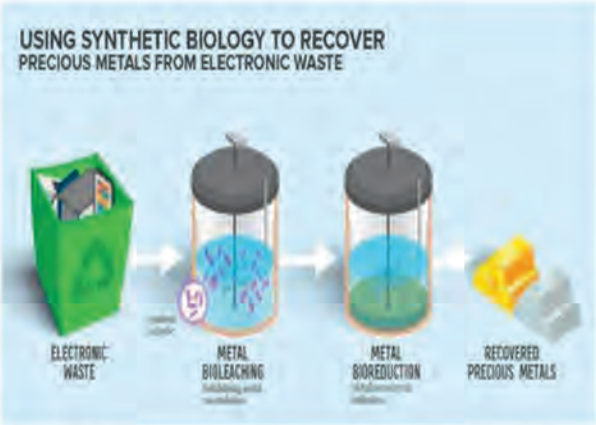

- **एसिड के द्वारा धातुओं की रिकवरी :** इलेक्ट्रॉनिक कचरे से विभिन्न प्रकार के भागों जैसे फेरस व नॉन फेरस मेटल एवं प्रिंटेड सर्किट बोर्ड को पृथक–पृथक कर लेते हैं। इसमें से विभिन्न प्रकार के मेटल जैसे लेड, कॉपर, एल्युमिनियम, सिल्वर, गोल्ड, प्लेटिनम आदि धातुओं की रिकवरी के लिए सान्द्र एसिड का प्रयोग करके पृथक कर लेते हैं। अवशेष प्लास्टिक कचरे को पुनःप्रयोग करने हेतु रिसाइकिल कर लिया जाता है।

ई–वेस्ट का उचित प्रबंधन

सरकार और नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) ने ई–वेस्ट प्रबंधन के लिए दिशानिर्देश जारी किए हैं। एनजीटी के दिशानिर्देशों के अनुसार आसपास कूड़ा या ई–कचरे को जलाते हुए पकड़े जाने पर 2000 रुपये का जुर्माना हो सकता है। इस पर नजर रखने की जिम्मेदारी प्रदेश के प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और नगर निकाय की तय की गई है। कूडे से सुरक्षित तरीके से निपटने के लिए नगर निकाय को हर तरह के कूड़े के निपटारे के सही तरीके को चुनना होता है। मिसाल के तौर पर पत्तियों को पार्क में कंपोस्ट की तरह इस्तेमाल करके तथा प्लास्टिक या ई–वेस्ट को रिसाइकल प्लांट में भेजकर आदि।

ई–वेस्ट के अवैज्ञानिक रूप से जलाने से होने वाले नुकसान के बारे में जन जागरूकता अभियान चलाते रहना होगा। हमारे देश में कई एनजीओ हैं जो पुराने कंप्यूटरों या गैजट्स को उन लोगों तक पहुंचाते हैं जो इन्हें खरीद नहीं सकते। आपको उनकी वेबसाइट पर जाकर अपने पास उपलब्ध चीजों के बारे में बता कर कलेक्ट करने के लिए कहना होगा। वह खुद आकर पुराने गेजेटस ले लेंगे। दुनिया भर की तरह हमारे देश में भी कई कंपनियां हैं जो अपनी कंपनी के ई–कचरे को वापस करने का मौका देती हैं जिससे उन्हें ऐसे खत्म किया जाए कि पर्यावरण को नुकसान न हो। इनकी वेबसाइट पर जाकर हेल्पलाइन नंबरों से ई–कचरा वापस करने की नीति जानी जा सकती है। कुछ कंपनियां इसके लिए ऑनलाइन पंजीकरण करवाती हैं तो कुछ वितरण केंद्र पर जमा करने के लिए कहती हैं। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने भी देश भर के हर राज्य में ऐसी एजेंसियों को अधिकृत किया है जो सुरक्षित तरीके से ई–कचरे का निपटारा करती हैं।

भारत में पुनर्चक्रण केंद्र

- भारत में अब तक 178 पंजीकृत ई–अपशिष्ट पुनर्चक्रण केंद्र हैं जिन्हें ई–कचरे को संसाधित करने के लिए राज्य सरकारों द्वारा मान्यता प्राप्त है।

- भारत एक साल में लगभग दो लाख टन ई–कचरे का उत्पादन करता है और इसकी अधिकांश मात्रा को अनौपचारिक क्षेत्र में संसाधित किया जाता है।

भले ही ई–कचरा प्रबंधन के संदर्भ में नियम लागू किए गए हैं लेकिन ये नियम केवल तभी सफल हो सकते हैं जब इन्हें सही ढंग से लागू किया जाए एवं प्रत्येक भारतीय नागरिक द्वारा इन नियमों का सही ढंग से पालन किया जाए।

*****

प्राकृतिक जल स्रोतः महत्व एवं संरक्षण

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा
संगणक एवं सूचना प्रौद्योगिकी अनुभाग
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान
डाक घर आर. एफ. आर. सी., मंडला रोड
जबलपुर – 482 021 (म. प्र.)

जल एक ऐसा प्राकृतिक संसाधन है, जिसके बिना जीवन सम्भव नहीं है, तथा जिसकी कमी के कारण जीवन की प्रत्येक कार्य प्रणाली पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त कृषि कार्यों में आरम्भ से अन्त तक जल का विशेष महत्व है, तथा जल की कमी के कारण कृषि उत्पादन में भारी कमी आ जाती है। पर्वतीय क्षेत्रों में लगभग 90 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर है, परन्तु यहां लगभग 11 प्रतिशत पर्वतीय भागों में ही जल उपलब्ध है, अर्थात 89% क्षेत्रफल वर्षा पर आधारित है जो मुख्यतः ऊपरी पर्वतीय भागों में उपलब्ध है। लगभग दो–तीन दशकों पूर्व पर्वतीय क्षेत्रों में बड़ी मात्रा में प्राकृतिक जल स्रोत उपलब्ध थे जिनका उपयोग पीने के पानी एवं गृह कार्यों के अतिरिक्त सिंचाई के काम भी आता था। परन्तु वर्तमान समय में अनियंत्रित शहरीकरण, सड़क निर्माण आदि के कारण पर्यावरण असंतुलन से अधिकतम प्राकृतिक स्रोत या तो पूर्णतः नष्ट हो गए हैं या केवल मौसमी बनकर रह गए हैं। दूर दराज के क्षेत्रों में आज भी ग्रामीण महिलाओं का अधिकांश समय दूर के प्राकृतिक स्रोतों से पीने योग्य जल लाने में ही लग जाता है। उक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह अत्यावश्यक है कि उपलब्ध प्राकृतिक जल–स्रोतों का प्रवाह बढ़ाने की दृष्टि से इनका पुनर्जीवीकरण किया जाए ताकि पीने के पानी की उपलब्धता के अतिरिक्त सिंचाई के साधन भी बढ़ाए जा सके।

जल एक प्राकृतिक संसाधन है, जिसको एक बार उपयोग के बाद पुनः शोधन कर उपयोग योग्य बनाया जा सकता है। जल ही ऐसा संसाधन है जिसकी हमें नियमित आपूर्ति आवश्यक है जो हम नदियों, झीलों, तालाबों, भू–जल, महासागर तथा अन्य पारस्परिक जल संग्रह क्षेत्रों से प्राप्त करते हैं। विश्व का 70.87 प्रतिशत भाग जलीय है जबकि 29.13 प्रतिशत भाग ही भू–भाग है। कुल जल का मात्र 2.1 प्रतिशत भाग ही उपयोग योग्य है जबकि 37.39 प्रतिशत भाग लवणीय है।

हालांकि इस शोर–शराबे में पहाड़ और पानी का सदियों पुराना रिश्ता कहीं खो गया है। इस रिश्ते के मूल में पानी को महज एक संसाधन भर समझने की उपभोक्तावादी मानसिकता कहीं भी नहीं थी। जल के साथ जीवन की, समृद्धि की, सम्पूर्णता और श्रद्धा की भावना जुड़ी थी। इंजीनियरिंग कौशल से उपजे दंभ, प्रकृति को चुनौती देने वाली कार्यशैली और आर्थिक संसाधनों की सहज उपलब्धता ने सदियों पुरानी इस सोच को बहुत तेजी से भुला दिया है। 90 के दशक में आए आर्थिक उदारवाद ने पहाड़ों में जमीन के कारोबार को जबरदस्त उछाल दिया था। पहाड़ों में मकान बनाने का सपना तब से हर नौकरशाह, कॉरपोरेट और नवधनाड्य देख रहा है।

पहाड़ों पर कॉटेज, विला और होटल बनाने का जो सिलसिला शुरू हुआ था वह आज भी बदस्तूर चल रहा है। किसी तालाब, नदी, हिमालय के शिखर या फिर फैली हुई विस्तृत घाटी के विहंगम दृश्य को खिड़की या बालकनी के रास्ते घर के अंदर तक पहुंचाने की जरूरी शर्त के साथ बने इन कॉटेज/विला में गाड़ी का पहुंचना भी अपरिहार्य रहा है। इन पूर्वाग्रहों के चलते पहाड़ों में निर्माण के परंपरागत नियमों को दरकिनार कर 60 डिग्री या इससे भी आधिक ढलान वाले पहाड़ों की बेरोकटोक खुदाई आज भी जारी है और इसकी कीमत प्राकृतिक

जलस्रोत और भूगर्भीय जल धाराएं अदा कर रही हैं।

जलवायु परिवर्तन के दौर का सर्वाधिक प्रभाव जल संसाधन पर पड़ा। प्रकृति में उपलब्ध कुल जल संसाधन का लगभग 2 प्रतिशत भाग हिम के रूप में जमा है तथा केवल एक प्रतिशत से भी कम जल मानवीय उपयोग के लिए उपलब्ध हो पाता है। यह जल भी पर्यावरण आपदाओं एवं मानवीय क्रियाकलापों द्वारा गुणात्मक एवं मात्रात्मक ह्रास की ओर है जबकि अम्ल वर्षा द्वारा शुद्ध जल प्रदूषित हो रहा है। इस प्रकार वर्तमान में प्रकृति में उपलब्ध जल संसाधन को मात्रात्मक एवं गुणात्मक दृष्टि से जलवायु परिवर्तन, विश्व तापन, अम्ल वर्षा, हिम का पिघलना आदि क्रियाएँ प्रभावित करती हैं, जिनके फलस्वरूप जल की उपलब्धता निरन्तर घट कर जल संकट को जन्म दे रही है। प्रकृति के साथ मनमानी छेड़छाड़ से सदियों से संतुलित जलवायु के कदम लड़खड़ा गए हैं। तीव्र औद्योगीकरण एवं वाहनों के कारण धरती दिन–प्रतिदिन गरमाती जा रही है। जलवायु परिवर्तन के कारण ध्रुवों की बर्फ पिघल रही है। सन् 1988 में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम तथा विश्व मौसम विज्ञान संगठन ने वैज्ञानिकों का एक अन्तरराष्ट्रीय दल–इंटर गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेंट चेन्ज का गठन किया था, जिसके शोध में पाया गया है कि पिछली सदी के दौरान औसत तापमान 0.3 से 0.6 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होने मात्र से ही जलवायु डगमगा गई है और खतरनाक नतीजे सामने आने लगे हैं। इस दौरान महासागरों का जल स्तर 10.25 सेंटीमीटर ऊँचा हो गया है, जिसमें 2.7 सेंटीमीटर की बढ़ोतरी बढ़े हुए तापमान के कारण पानी के फैलाव से हुई है।

जलवायु एक जटिल प्रणाली है। इसमें परिवर्तन आने से वायुमण्डल के साथ ही महासागर, बर्फ, भूमि, नदियाँ, झीलें तथा पर्वत और भूजल भी प्रभावित होते हैं। इन कारकों के परिवर्तन से पृथ्वी पर पायी जाने वाली वनस्पति और जीव–जन्तुओं पर भी प्रभाव परिलक्षित होता है। सागर के वर्षा वन कहलाए जाने वाले मूंगा की चट्टानों पर पायी जाने वाली रंग–बिरंगी वनस्पतियाँ प्रभावित हो रही हैं।

जलवायु परिवर्तन से सूखा पड़ेगा जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव खाद्यान्न उत्पादन पर पड़ेगा। जल की उपलब्धता भी घटेगी क्योंकि वर्तमान समय में कुल स्वच्छ पानी का 50 प्रतिशत मानवीय उपयोग में लाया जा रहा है। अतः कुवैत, जॉर्डन, इजराइल, रवांडा तथा सोमालिया जैसे जलाभाव वाले देशों में भंयकर जल संकट उत्पन्न होगा। अमेरिकी सुरक्षा एजेंसी ने अनुमान लगाया है कि कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा दुगुनी होने से उत्पन्न गर्मी के कारण कैलिफोर्निया में पानी की वार्षिक आपूर्ति में सात से सोलह प्रतिशत की कमी आ सकती है। जलवायु परिवर्तन से कृषि के साथ ही वनों की प्राकृतिक संरचना भी बदल सकती है। सूक्ष्म वनस्पतियों से लेकर विशाल वृक्षों तक का तापमान और नमी का एक विशेष सीमा में अनुकूलन रहता है। इसमें परिवर्तन होने से ये वनस्पतियाँ या तो अपना स्थान परिवर्तित कर लेंगी या सदा के लिए विलुप्त हो जाएगी। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि बढ़ती जनसंख्या एवं शहरीकरण के कारण इन्हें दूसरा रास्ता ही अपनाना होगा। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन से विश्व के एक–तिहाई वनों को खतरा है। उच्च तापमान से वनाग्नि की घटनायें भी बढ़ रही है। वनाग्नि से वायुमण्डल में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा बढ़ सकती है।

प्रकृति में पाए जाने वाले जल के विषम वितरण के कारण ही प्रारंभिक जल संकट उत्पन्न हुआ है, जो बढ़ती मांग के कारण अधिक गहरा गया है। उदाहरणार्थ एशिया में विश्व की 60 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है, जबकि कुल नदियों का प्रवाह विश्व का 36 प्रतिशत है। दूसरी ओर दक्षिणी अमेरिका में विश्व की 6 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है तथा वहाँ कुल सतही प्रवाह विश्व का 20 प्रतिशत है।

मानवीय उपयोग हेतु उपलब्ध जल संसाधन का अधिकांश भाग भू–सतह पर नदियों व झीलों में स्थित है जो वर्षा के वाष्पीकरण की मात्रा से नियन्त्रित होता है। ये दोनों क्रियाएं जलवायु के तत्वों के रूप में जलीय चक्र की प्रमुख प्रक्रियाएं हैं तथा जल के पुनर्वितरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका रखती है। 20वीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में बढ़ते मानवीय हस्तक्षेप ने काफी हद तक

जलीय चक्र की प्रकृति को परिवर्तित किया है। भारत में शुष्क भागों में निरन्तर वनोन्मूलन एवं सम्बन्धित आर्थिक क्रियाओं के कारण मरूस्थलीकरण की प्रक्रिया में तीव्रता आयी जिसके फलस्वरूप वर्षा की मात्रा में कमी आयी है। भारतीय उप महाद्वीप में जल की वार्षिक उपलब्धता मानसून की संतुलित सक्रियता पर निर्भर करती है जिसका आकर्षण न्यून दाब का केन्द्र थार के मरूस्थल में स्थित है।

जल प्रकृति की अक्षय देन है। किन्तु बढ़ती हुई मांग तथा जल संसाधन के वर्तमान उपयोग से आने वाले वर्षों में मानव कल्याण, विकास, जीविका तथा स्वयं जीवन को भी खतरा उत्पन्न हो गया है। भविष्य में विकास के लिए आवश्यक उपयुक्त पानी की कमी हो सकती है। कमी के साथ पानी की गुणवत्ता भी तेजी से गिर रही है। जल की मांग और पूर्ति में संतुलन होने के बावजूद देश में जल संसाधन की क्षेत्रीय विभिन्नता और ऋतुगत आवश्यकता गंभीर स्थिति पैदा कर रही है जिसके लिए अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

जीवन के लिए पेय जल और स्वच्छता न केवल आधारभूत आवश्यकताएँ हैं, बल्कि सबके लिए स्वास्थ्य के उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी आवश्यक हैं। इसीलिए पेयजल सुविधाओं को बढ़ाने के लिए अथक प्रयास किए जा रहे हैं। फिर भी उसकी पूर्ति नहीं हो पा रही है।

जल का प्रदूषण एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या है। जल के प्रदूषण का मुख्य स्रोत घरेलू व्यर्थ (अपशिष्ट) जल, औद्योगिक अपशिष्ट जल और गंदे द्रव की निकासी और खेत का बहता पानी है। कई विशेषज्ञ यह दावा करते हैं कि हमारा तीन–चौथाई धरातलीय जल प्रदूषित है और जिसके 80 प्रतिशत भाग को केवल मलजल (गन्दा पानी) ने प्रदूषित किया है। यह अनुमान लगाया गया है कि लगभग 1200 करोड़ लीटर प्रतिदिन व्यर्थ पानी प्रथम श्रेणी नगरों से तथा 130 करोड़ लीटर प्रतिदिन द्वितीय श्रेणी के नगरों से निकलता है। नगर पालिकाओं के अपशिष्ट जल को बिना पर्याप्त शोधित किए हुए, या तो खुली जगह पर या फिर नदियों में छोड़ दिया जाता है।

पवित्र गंगा नदी को अपवित्र करने वाले अनेकों नाले हैं जिनमें शहरी बदबूदार गंदा पानी रहता है और जो प्रतिदिन लाखों गैलन पानी गंगा में फेंकते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि जब तक मानव के मैले को सुरक्षित होने तथा नष्ट करने के साधनों का पर्याप्त विकास नहीं होता, तब तक इसी तरह नदियों के जल को हम प्रदूषित करते रहेंगे। अधिकांश नगरीय ठोस अपशिष्ट पदार्थ का खुले मैदान में ढेर लगा दिया जाता है जो अन्ततः समीप की नदियों और जलाशयों में पहुँचता है और पानी को प्रदूषित करता है।

शहरी क्षेत्रों में स्थित कारखाने बड़े पैमाने पर अवांछित पदार्थ उत्पन्न करते हैं, जैसे औद्योगिक व्यर्थ पदार्थ, प्रदूषित अपशिष्ट जल, जहरीली गैसें, रासायनिक अपशिष्ट, धूल, धुआँ आदि। इनमें से अधिकांश औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ बहते हुए जल में मिल जाते हैं और ये जहरीले तत्व जलाशयों, नदियों और अन्य जलीय भागों में पहुँचकर वहाँ के जैवीय तंत्र को नष्ट कर देते हैं।

निश्चित रूप से आज जरूरत पानी के संरक्षण और उपयोग से जुड़े पारंपरिक ज्ञान का भरपूर फायदा उठाते हुए उसके प्रति समाज के दायित्वबोध को जगाने की है। जलग्रहण क्षेत्रों के संरक्षण/संवर्धन की जरूरत को अब और अनदेखा करना आत्मघाती हो सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पानी के निरंतर बढ़ रहे उपयोग की उसी अनुपात में भरपाई करने में प्रकृति फिलहाल असमर्थ है। जल के अभाव में न तो पर्यावरण की समग्रता को सुरक्षित रखा जा सकता है और न ही गरीबी और भूख से एक निर्णायक लड़ाई लड़ी जा सकती है। हमारी लापरवाही के चलते सूख चुके किसी प्राकृतिक जलस्रोत को दुनिया का कोई भी इंजीनियरिंग कौशल दोबारा जीवित नहीं कर सकता। ये दीवार पर लिखी एक महत्वपूर्ण इबारत है, जिसे कम से कम अब तो निश्चित रूप से पढ़ा, समझा और अनुभव किया जाना चाहिए।

भारत में वन्यजीव अपराध की नवीनतम प्रवृत्तियां

डा. मनोज कुमार, आई.पी.एस.
संयुक्त निदेशक (आसूचना एवं समन्वय)
वन्यजीव अपराध नियंत्रण ब्यूरो,
मुख्यालय नई दिल्ली

बात वर्ष 1972 की है। सम्पूर्ण विश्व अचानक जैसे एक चिरनिद्रा से जागा। संयुक्त राष्ट्र ने 'मानव पर्यावरण' पर स्टॉकहोम में अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें विश्व पटल पर पर्यावरण संरक्षण पर पहली बार गंभीरता से विचार हुआ और पहली बार 'पर्यावरण प्रशासन' राज्य नीति का अभिन्न हिस्सा बना। सम्मेलन के अनुवर्ती क्रम में भारत में वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 का विधेयक संसद में पारित हुआ। वन्यजीवों के निरंतर विलुप्तीकरण के प्रमुख कारणों में प्राकृतिक वास के अपघटन के साथ–साथ उनका अवैध शिकार, तस्करी एवं व्यापार भी है। विगत वर्षों में अवैध वन्यजीव व्यापार संगठित अंतरराष्ट्रीय अपराध के रूप में उभरा है जिसने भारत समेत दुनिया भर की कई वन्यजीव प्रजातियों के अस्तित्व को खतरे में डाल दिया है। विश्व के केवल 2.4% भूमि क्षेत्र के साथ भारत ज्ञात वैश्विक जैव विविधता का लगभग 8% योगदान देता है। भारत दुनिया के 17 मेगा जैव–विविधता वाले देशों में से एक है। भारत में चार जैव–विविधता वाले हॉट स्पॉट हैं। 1000 से अधिक संरक्षित क्षेत्रों के साथ–साथ भारत में 18 बायोस्फीयर रिज़र्व भी हैं।

42वें संविधान संशोधन, 1976 के तहत भारत में वन्यजीव संरक्षण संघीय (केंद्रीय) और राज्य सरकारों दोनों की साझा जिम्मेदारी है। वन एवं वन्यजीव संरक्षण संविधान की 'समवर्ती सूची' में शामिल किया गया है। केंद्र और राज्य दोनों सरकारें वन और वन्यजीव संरक्षण से संबंधित कानून पारित कर सकती हैं परन्तु संघीय कानून का राज्य के कानून पर प्रभुत्व है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 48(क) में संघ एवं राज्य सरकारों को पर्यावरण एवं वन्यजीवों के संरक्षण के लिए प्रयास करने हेतु निर्देशित किया गया है। साथ ही, अनुच्छेद 51 क (एन) के द्वारा भारत के प्रत्येक नागरिक को मौलिक जिम्मेदारी दी गई है कि वे वन्यजीवों की रक्षा एवं संवर्धन करे। भारत की अंतरराष्ट्रीय सीमा पर वन्यजीवों की अवैध तस्करी रोकने हेतु भारतीय सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 व भारतीय विदेश व्यापार नीति प्राविधानित है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वन्यजीव अपराध रोकने हेतु CITES वर्ष 1975 से प्रभावित है। भारत वर्ष 1976 से CITES का हस्ताक्षरी राष्ट्र है।

वन्यजीव अपराध नियंत्रण ब्यूरो (WCCB) का गठन वर्ष 2007 में संगठित वन्यजीव अपराध को नियंत्रित करने के उद्देश्य से एक वैधानिक निकाय के रूप में किया गया है। वैधानिक रूप से राज्य पुलिस और वन विभाग प्राथमिक प्रवर्तन एजेंसियां हैं तथा उनके इन प्रयासों में विभिन्न केंद्रीय एजेंसियों जैसे वन्यजीव अपराध नियंत्रण ब्यूरो, केंद्रीय जांच ब्यूरो, कस्टम/ डी.आर.आई. तथा अर्ध सैनिक बलों द्वारा सहायता की जाती है।

आइये वन्यजीव अपराध की भारत में वर्तमान स्थिति पर नजर डालें। भारत में तस्करी की जाने वाली प्रमुख वन्यजीव प्रजातियां हैं : बाघ और तेंदुए की खाल, उनकी हड्डियां और शरीर के अन्य अंग, गैंडे के सींग, हाथी–दांत, कछुए, समुद्री घोड़े, सांप की खाल व जहर, नेवले के बाल, टोके गेको, समुद्री कुकुम्बर, शहतूश शॉल, कस्तूरी मृग मुश्क ग्रंथि, भालू पित्त, औषधीय पौधे, कीमती लकड़ी और पिंजरे में बंद पक्षी जैसे तोता, मैना, मुनिया आदि।

बाघ व अन्य बड़ी बिल्लियाँ

बाघ एवं तेंदुए के अंगों की अंतरराष्ट्रीय मांग चीन व दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में निरंतर बनी हुई है। चीन एवं थाईलैंड में मुख्यतः संचालित टाइगर फार्म/कृत्रिम प्रजनन केंद्र भी इस मांग को निरंतर बनाए हुए है। चीन ने वर्ष 2022 में अपने 1996 से लागू बाघ अंगों का पारंपरिक चिकित्सा में उपयोग पर प्रतिबंध को भी हटा दिया है। वर्तमान परिदृश्य पर एक नजर डालें तो बाघ भारत में प्रवर्तन एजेंसियों

का मुख्य केंद्र बिंदु है। वर्ष 1973 से ही प्रोजेक्ट टाइगर संचालित होने के कारण बाघ संबंधी तस्करी में काफी गिरावट देखने को मिल रही है। विगत समय में बड़ी बिल्लियों में तेंदुए की खाल व अन्य अंगों की अत्यधिक बरामदगी की गई है जिसका मुख्य कारण तेंदुए का टाइगर रेंज के बाहर भी बहुतायत में पाया जाना तथा मानव बस्ती के पास अकसर आ जाना है। एशियाई बब्बर शेर, स्नो लेपर्ड, एवं क्लाउडीड लेपर्ड भी वन्यजीव तस्करों के निशाने पर रहते हैं।

एशियाई हाथी

हाथी दांत तथा दांत से बनी वस्तुओं की निरंतर बरामदगी भारत के विभिन्न प्रांतों से होती रहती है। केवल नर एशियाई हाथी में ही हाथी दांत पाया जाता है। बरामद हाथी दांत में बड़ी संख्या पालतू हाथी से प्राप्त दांत की होती है तथा पुरानी घोषित तथा अघोषित ट्रोफियों से संकलित हाथी दांत की बरामदगी भारी मात्रा में होती रहती है। विगत कुछ समय से जीवित हाथियों की तस्करी भारत के पूर्वोत्तर राज्यों से अन्य राज्यों की तरफ कूट रचित दस्तावेज के आधार पर भी देखी गयी है। हाथी दांत का बड़ा हिस्सा इन्टरनेट एवं सोशल मीडिया प्लेट फॉर्म तथा ई–कॉमर्स पोर्टल पर भी देखा गया है।

भारतीय गैंडा

विश्व में कुल पाए जाने वाले 85% से अधिक एक सींगी गैंडे भारत में पाये जाते हैं। यह प्रजाति मुख्यतः असम, पश्चिमी बंगाल के उत्तरी क्षेत्र में तथा उत्तर

प्रदेश के दुधवा नेशनल पार्क में पायी जाती है। म्यांमार के रास्ते मुख्य रूप से चीन और वियतनाम में गैंडे के सींगों की तस्करी की जा रही है। मोरेह,

मणिपुर और तमू (म्यांमार) में "हुंडी" नामक प्रणाली के माध्यम से गैंडे के सींगों का व्यापार किया जाता है और व्यापारी को गुमनाम रखा जाता है। गैंडे के सींगों के कुछ व्यापारी म्यांमार मूल के हैं।

पेंगोलिन

भारत में पेंगोलिन की कुल आठ प्रजातियों में से दो प्रजातियां इंडियन पेंगोलिन (भारत के मुख्य भू–भाग) एवं चीनी पेंगोलिन (पूर्वोतर एवं तराई क्षेत्र) पाई जाती

हैं। पेंगोलिन का अवैध शिकार एवं तस्करी मुख्य रूप से मांस एवं सल्ख के लिए किए जा रहे हैं। भारत में पेंगोलिन सल्ख की बरामदगी विगत वर्षों में कई गुना बढ़ी है जोकि एक चिंता का विषय है। पेंगोलिन के सल्ख की तस्करी नेपाल, भूटान और म्यांमार की ओर की जाती है। विगत कुछ वर्षों से सल्ख के लिए पेंगोलिन का शिकार बिचौलियों के माध्यम से देश के सभी हिस्सों में फैल गया है। पेंगोलिन सल्ख का पारंपरिक चीनी दवाएं बनाने के लिए चीन, वियतनाम और थाईलैंड में उपयोग किया जाता है। अगर इनके अवैध शिकार व तस्करी पर अंकुश नहीं लगाया जाता है तो पेंगोलिन प्रजातियों को कुछ वर्षों की अवधि में विलुप्त होने का सामना करना पड़ सकता है।

तिब्बतन मृग (चिरु)

शहतूश शॉल चिरु मृग के बारीक़ बाल से बनता है। चिरु मृग तिब्बत पठार पर पाये जाने वाली मृग की प्रजाति है। भारत में यह लेह लद्दाख के ऊंचाई वाले पठार पर पाया जाता है। इसकी बुनाई श्रीनगर, कश्मीर में की जाती है। कश्मीर से शाहतूश शॉल तैयार होकर अवैध रूप से हवाई मार्ग द्वारा कार्गो एवं चेकिंग बैगेज में इसकी तस्करी यूरोपियन एवं खाड़ी देशों को की जाती है। विगत वर्षों में शाहतूश शॉलों की बरामदगी मुख्यतः इंदिरा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय

एयरपोर्ट, नई दिल्ली के कार्गो टर्मिनल से हुई है।

भारतीय नेवला

मोन्गूस अथवा नेवले के बालों का अवैध रूप से इस्तेमाल प्रसाधन–सामग्री एवं कला ब्रश के रूप में किया जाता है। देश भर से संगृहीत करके नेवले के बालों से ब्रशों का अवैध निर्माण बिजनौर जिला, उत्तर

प्रदेश के शेरकोट कस्बे में किया जाता था जिसका सफलतापूर्वक खुलासा डब्ल्यूसीसीबी द्वारा वर्ष 2018 में किया गया।

कछुए एवं अन्य सरीसृप

कछुओं का अवैध व्यापार उनके मांस, कैलिपी एवं पालतू जीव के रूप में रखने हेतु किया जाता है। मांस एवं कैलिपी के लिए कछुए चंबल, यमुना, गंगा एवं तराई क्षेत्रों की नदियों से अवैध रूप से एकत्रित किए जाते हैं, जिसमें मुख्यतः सॉफ्ट शैल टर्टल शामिल है। इन कछुओं को एकत्र करके अवैध रूप से

पश्चिम बंगाल–बांग्लादेश सीमा की तरफ बस अथवा ट्रेनों के द्वारा संचरित किया जाता है। अपने सुन्दर

कवच के कारण पालतू जीव के रूप में इंडियन स्टार टोरटोइस की अवैध तस्करी भारत के विभिन्न भागों में की जाती है तथा दक्षिण–पूर्व एशियाई एवं विदेशों में भी इंडियन स्टार टोरटोइस की बहुत मांग है।

नाग, अजगर, वाइपर सांपों का शिकार उनकी खाल मांस एवं विष के लिए किया जाता है। विगत कुछ समय में पश्चिम बंगाल में कोबरा विष की कई बरामदगियां हुई हैं जो कि संभवतः थाईलैंड के कृत्रिम प्रजनन केंद्रों से संकलन कर म्यांमार होते हुए बांग्लादेश सीमा से भारत में प्रवेश करती है। भारत के पश्चिम बंगाल में बरामद कोबरा विष का नेपाल की तरफ जाना और अंततः चीन पहुंचना ज्ञात हुआ है।

काला जादू/अंधविश्वास बनाम वन्यजीव अपराध

भारतीय समाज में प्रचलित ऐसी कई अंधविश्वासी प्रवृतियां हैं जो वन्यजीव अपराध को बढ़ावा देती हैं। उदाहरणार्थ, भारतीय मोनिटर लिज़ार्ड (गोह) के जननांग (हत्था जोड़ी), दो मुहे सांप (दुमही), उल्लू, नीलकंठ, सियार सिंघी, ब्लैक कोरल (इंद्रजाल) तथा

साही का शिकार एवं अवैध व्यापार। प्रत्येक भारतीय नागरिक का यह मौलिक कर्तव्य है कि वह वैज्ञानिक सोच को विकसित करे और अंधविश्वासी प्रवृतियों से दूर रहे। [भारतीय संविधानः अनुच्छेद 51 क (ज)]।

विदेशी वन्यजीव प्रजातियाँ

भारत में विदेशी प्रजातियों की अवैध तस्करी गंभीर चिंता का विषय है। वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 अपने वर्तमान स्वरूप में विदेशी प्रजातियों को शामिल नहीं करता, जिससे संरक्षित विदेशी वन्यजीव प्रजातियों के प्रवर्तन में कठिनाई होती है।

भारत में विदेशी वन्यजीवों की तस्करी जमीनी मार्ग, जैसे कि भारत–म्यांमार बॉर्डर (मोरेह, मणिपुर एवं चमफाई, मिजोरम) एवं भारत बांग्लादेश बॉर्डर द्वारा प्रकाश में आयी है। हवाई मार्ग में मुख्यतः चेन्नई,

मुंबई, कोलकाता, बेंगलुरू के एयरपोर्टों पर विदेशी वन्यजीवों की कई बरामदगियां विगत समय में हुई हैं। इन विदेशी प्रजातियों में अनेक प्रजातियों के विदेशी कछुए, सांप, कीट, रंगीन चिड़िया व स्तनधारी जीव जैसे कंगारू, विदेशी बंदर व अन्य प्रजातियाँ शामिल हैं।

भारत में विदेशी वन्यजीव प्रजातियों की अवैध तस्करी मुख्यतः बैंकाक, थाईलैंड से प्रकाश में आयी है। पूर्वोत्तर राज्य जैसे मणिपुर व मिजोरम की म्यांमार सीमा से विदेशी प्रजातियाँ जमीनी मार्ग से भारत में प्रवेश कर रही हैं। मणिपुर (मोरेह) में प्रवर्तन एजेंसियों

की सतर्कता एवं बाहुल्यता के कारण वन्यजीव तस्करी अब मिजोरम (चमफाई) म्यांमार सीमा से होने लगी है। म्यांमार में सेना द्वारा तख्ता पलट के बाद लगभग 30,000 विस्थापित म्यांमारी नागरिक भारतीय सीमा के अन्दर (जोखावतार, जिला चमफाई, मिजोरम) में रह रहें है जोकि अवैध तस्करी में भी लिप्त रहते हैं। बैंकाक से आने वाली फ्लाइट में अक्सर विदेशी वन्यजीवों की बरामदगी हुई है, जिनमें चेन्नई व मुंबई एयरपोर्ट मुख्यतः शामिल हैं। वर्तमान में विदेशी प्रजातियों के लिए कोई घरेलू विधान नहीं है। परंतु वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम (संशोधन) विधेयक 2022 हाल में संसद द्वारा पारित किया गया है जिसमें चौथी अनुसूची में CITES द्वारा संरक्षित विदेशी प्रजातियों को भी भारत में प्रवर्तन के अधीन किया जाएगा।

समुद्री जीव

संरक्षित समुद्री जीवों का अवैध शिकार एवं व्यापार मुख्य रूप से शार्क फिन्स, समुद्री घोडा, सीप/शंख व समुद्री खीरा का पाया गया है। समुद्री खीरे को अनुसूची–। में वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 का संरक्षण प्राप्त है परन्तु पड़ोसी देश श्रीलंका में समुद्री खीरे का शिकार एवं प्रसंस्करण पूर्ण रूप से प्रतिबंधित नहीं है। चीन व दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में मांग के कारण 'भारतीय अनन्य आर्थिक जोन' क्षेत्र (ईईजैड), जो कि 200 नौटिकल माइल (लगभग 360 किलोमीटर) तक फैला है, से समुद्री वन्यजीवों का अवैध शिकार, संकलन व तस्करी, श्रीलंका तथा वहां

से चीन व दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों की तरफ समुद्री मार्ग से, होना प्रकाश में आया है।

ऑनलाइन साइबर व्यापार

तकनीकी एवं इंटरनेट के बढते हुये प्रभाव तथा कोरोना महामारी के परिपेक्ष में आवाजाही में रोकथाम के कारण वन्यजीव अपराध भी ऑनलाइन प्लेटफोर्म पर निश्चित व प्रत्यक्ष रूप से स्थानांतरित हुआ है। इंटरपोल अध्ययन के अनुसार वन्यजीव साइबर अपराध में प्रति वर्ष 3 गुणा वृद्धि देखी गई है। इस दिशा में तथा विशेषकर डार्क–वैब व डीप–वैब पर भारत की प्रवर्तन एजेंसियों को सचेत, सतर्क एवं दक्ष रहना होगा। साइबर अपराध आने वाले समय में एक बड़ी चुनौती के रूप में रहेगा।

कोरोना महामारी का स्रोत 'जूनोटिक संक्रमण' होने के कारण वर्तमान परिवेश में वन्यजीव एवं जैव विविधता संरक्षण और भी प्रासंगिक हो जाता है। पूरे विश्व समूह को भविष्य में इसके प्रति सजग दृष्टि रखनी होगी। चूँकि भारत वन्यजीव एवं जैव विविधता का एक महत्वपूर्ण स्रोत (उद्गम) क्षेत्र है इसलिए आने वाले समय में भारत की प्रमुख भूमिका होगी। वन्यजीव अपराध, आमोद एवं उपभोग हेतु आखेट की अपनी परंपरागत छवि से आज वर्तमान परिदृश्य में एक वास्तविक अंतरराष्ट्रीय संगठित अपराध बन गया है। संचार तकनीकी एवं परिवहन के आधुनिक विस्तार ने इस दिशा में बढ़ावा दिया है। इसलिए वन्यजीव अपराध की रोकथाम हेतु हमें वैश्विक, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर समन्वय कर बहु–एजेंसी व बहु–आयामी प्रयास करने होंगे।

*****

पूनिका ग्रेनेटम (जंगली अनार) : हिमाचल प्रदेश के मध्यवर्ती पहाडी क्षेत्रों के स्थानीय समुदायों की आजीविका का महत्वपूर्ण साधन

डॉ. स्वर्ण लता एवं शिव पॉल
वन संवर्धन एवं प्रबंधन प्रभाग
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला, हिमाचल प्रदेश

अनार में बहुत सी बीमारियों को ठीक करने की क्षमता होती है। इसका उपयोग बड़े पैमाने पर पारंपरिक औषधि के स्रोत के रूप में किया जाता है जिस कारण इसे 'महा–औषधि' के नाम से भी जाना जाता है। यह उष्णकटिबंधीय, उप उष्णकटिबंधीय एवं शुष्क क्षेत्रों का पसंदीदा फल है। भारत में कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, राजस्थान और महाराष्ट्र अनार के प्रमुख उत्पादक प्रदेश हैं। यह पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों मुख्यतः हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड एवं जम्मू कश्मीर संघ राज्य क्षेत्र में 900–1800 मीटर की ऊंचाई वाले मध्यवर्ती पहाड़ी क्षेत्रों के सूखे और उप सीमांत भूमि क्षेत्रों में जंगलों में पाया जाता है। जंगली अनार एक पर्णपाती वन्य झाड़ीनुमा प्रजाति है। इसका वानस्पतिक नाम पूनिका ग्रेनेटम है जो पुनिकेसी परिवार से संबंध रखता है। यह ईरान की मूल प्रजाति है तथा मानव द्वारा सबसे पहले घरेलू उपयोग में लाए गए फलों में से एक है। इसे आमतौर पर 'दाडू' के नाम से जाना जाता है। इसकी छाल गहरे भूरे रंग की होती है। इसकी पत्तियां चमकदार 2.5–6.5 x 1–3.5 सेव मीव, गुच्छेदार, अण्डाकार एवं आयताकार होती हैं। फूल लाल–नारंगी, अकेले और एक–तीन के समूह में होते हैं। इसके फल 4.5–7.5 सेव मीव, हल्के गुलाबी–लाल व पीले हरे रंग के होते हैं। जिसमें सैकड़ों छोटे बीज होते हैं जो बीजचोल से चिपके होते हैं और इन्हें कच्चे एवं सुखा कर खाया जाता है। एंथोसायनिन रंजक की मौजूदगी के परिणामस्वरूप इसके बीजचोल अत्यंत आकर्षक गुलाबी–लाल रंग के होते हैं। इसके फल अनार के जैसे ही होते हैं परंतु जंगली अनार के बीजचोल छोटे, छिलका मोटा एवं अम्ल की मात्रा अधिक होती है। इसका जूस खट्टा मीठा होता है तथा इसमें विटामिन सी की मात्रा अधिक होती है। इसमें फूल अप्रैल–जुलाई के महीने में तथा फल अगस्त–सितंबर में लगते हैं। हिमाचल प्रदेश में यह प्रजाति शिमला, सिरमौर, कुल्लू, मंडी,

जंगली अनार के फूल

जंगली अनार के फल

चंबा, कांगड़ा, सोलन, बिलासपुर एवं हमीरपुर जिले में पायी जाती है। यह एक बहुउद्देशीय पौधा है जो न केवल लोगों की सामाजिक, आर्थिक एवं औषधीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता है अपितु, यह इन क्षेत्रों में पाए जाने वाले वन्य जीवों का पसंदीदा भोजन होने के साथ उनको आवास भी प्रदान करता है। इसकी अत्यधिक उपयोगिता के कारण प्राचीन काल से यह कृषि वानिकी प्रणालियों का महत्वपूर्ण हिस्सा भी है क्योंकि लोगों द्वारा इसे परंपरागत रूप से खेतों में उगाया जाता है। इसे आमतौर पर कलमों के माध्यम से खेतों की मेढों एवं घासनियों में बाड़ के रूप में उगाया जाता है ताकि आवारा मवेशियों को कृषि भूमि से बाहर रखा जा सके तथा मृदा के कटाव को भी रोका जा सके। इसे खेतों में उगाने के लिए रेतीली चिकनी मिट्टी उपयुक्त होती है। हिमाचल प्रदेश के मध्यवर्ती पहाड़ी क्षेत्रों में स्थानीय समुदाय अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं आमदनी के लिए दाडू पर अत्यधिक निर्भर हैं। इसकी आसानी से उपलब्धता, उच्च सूखा प्रतिरोधक क्षमता, बहुमुखी जलवायु अनुकूलन क्षमता, कम रख रखाव की लागत, स्थिर एवं उच्च पैदावार एवं विशिष्ट औषधीय गुणों के कारण लोगों द्वारा दाडू को अनार के जंगली विकल्प के तौर पर अत्यधिक उपयोग किया जाता है। इसके वितरण क्षेत्रों में दाडू का एकत्रीकरण सामूहिक तौर पर किया जाता है तथा स्थानीय स्तर पर गाँव की कमेटी वन विभाग से बातचीत कर दाडू के एकत्रीकरण का समय निर्धारित करती है। जंगली अनार के फलों का एकत्रीकरण काफी मुश्किल भी होता है क्योंकि इसकी झाड़ियों में बहुत सारे काँटे होते हैं इसलिए इसके फलों को एकत्रित करने के लिए विशेष प्रकार की छड़ी उपयोग होती है जिसमें सिरे पर एक धारदार दराट (डांग) होती है जिससे दाडू के फलों को आसानी से एकत्रित कर पाएँ। इसके फलों को एकत्रित करने के बाद स्थानीय लोग

स्थानीय लोग दाडू से अनारदाना अलग करते हुए

अनारदाना

स्थानीय व्यापारी अनारदाना बेचते हुए

इसके फलों को दराट एवं बसोले से काटकर, फलों के बाहरी आवरण को हटाने के उपरांत बीजों को अलग कर सुखाते है जिन्हें लोग स्थानीय बाजार में 'अनारदाना' के नाम से बेचते हैं। इसके अत्यधिक औषधीय गुणों के कारण वर्तमान में अनारदाना का व्यापारिक मूल्य 600–1800/–रुपये प्रति किलोग्राम है। इसके छिलकों से रंगक व लिखने की स्याही भी बनायी जाती है। अनारदाने का उपयोग भोजन तथा चटनी इत्यादि में नींबू व इमली के स्थान पर खट्टापन हेतु किया जाता है। पारंपरिक रूप से स्थानीय लोग अनारदाने को सूखे मसाले के रूप में उपयोग करते हैं। इसकी लकड़ी सख्त होती है जिस कारण इसका उपयोग कृषि उपकरणों के हैन्डल बनाने तथा जलाऊ लकड़ी के तौर पर भी किया जाता है। इस पौधे को पवित्र माना जाता है इसलिए विवाह समारोहों के दौरान इसकी पूजा की जाती है तथा इसकी टहनियों का उपयोग पूजा पाठ में भी किया जाता है। इसमें विटामिन, कार्बोहाइड्रेड, खनिज, जैविक रसायन, फाइबर एवं एंटीऑक्सिडेंट की मात्रा अधिक होने के कारण इसके हर हिस्से का औषधीय उपयोग होता है। इसमें जैव सक्रिय घटक मुख्य रूप से फलों के रसीले दानों में केंद्रित होते हैं। इसकी पत्तियों का उपयोग खांसी, मस्तिष्क के रोग, आंखों की समस्याओं, फुंसियों, पेट दर्द, पेचिस, पिलिया, अनिद्रा इत्यादि को ठीक करने में होता है। इसके अतिरिक्त अनारदाने के सेवन से रक्त से जुड़ी बीमारियां, उच्च रक्तचाप, सूजन, जोड़ों में दर्द, बवासीर, खून की कमी, मधुमेह इत्यादि ठीक होता है। यह वीर्य प्रवाह को बढ़ाता है तथा नकसीर को भी रोकता है। फलों के छिलके का पेस्ट पैरों की एड़ी पर लगाने से एड़ी पर पड़ी दरारें ठीक हो जाती हैं। इसका उपयोग आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सा प्रणाली में मुंह एवं पेट की समस्याओं, पेचिस, अपच, उल्टी, पेट के कीड़ों एवं हृदय रोगों के इलाज के लिए होता है। इसके बीजों से निकाले गए तेल का उपयोग त्वचा और स्तन कैंसर को ठीक करने में होता है। फलों में जीवाणुरोधी एवं फफूंदरोधी गुण भी होते हैं जिस कारण यह मुंह से आने वाली बदबू से बचाता है। पूर्व में इस प्रजाति पर हुए शोध में विभिन्न शोधकर्ताओं ने यह पाया है कि अनार की तुलना में जंगली अनार में जैव सक्रिय यौगिकों की मात्रा अधिक होती है। इसलिए इस प्रजाति की उच्च एंटीऑक्सीडेंट क्षमता एवं उच्च पोषण गुणवत्ता को देखते हुए इसे जैव सक्रिय घटकों के सस्ते स्रोत के रूप इसके फलों का व्यापक उपयोग समाज के स्वास्थ्य लाभ हेतु किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वाणिज्यिक प्रसंस्कृत उत्पादों के औद्योगीकरण के माध्यम से यह प्रजाति लोगों की आजीविका के सुधार में भी अपार योगदान दे सकती है। वर्तमान में इसके वितरण क्षेत्रों में लोग अपनी कृषि एवं बागवानी भूमि को बढ़ाने के लिए दाडू के प्राकृतिक आवासों को प्रभावित कर रहे हैं। इसके अलावा बहुत से अन्य मानवजनित कारकों जैसे पन बिजली परियोजनाओं, सड़कों एवं इमारतों का निर्माण, आग, असंरक्षणीय दोहन इत्यादि के कारण भी इसकी प्राकृतिक संख्या एवं प्राकृतिक आवासों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ रहा है। इसलिए इस प्रजाति के अत्यधिक महत्व को देखते हुए इसकी उच्च गुणवत्ता के जर्मप्लासम की पहचान, सतत एकत्रीकरण तकनीक, प्रसंस्करण एवं मूल्यवर्धन तकनीक, नर्सरी में उच्च गुणवत्ता के पौधे तैयार करने इत्यादि पर शोध कार्यों के साथ इसके संरक्षण हेतु जागरूकता कार्यक्रमों के आयोजन तथा व्यापक स्तर पर इस प्रजाति के पौध रोपण की भी अत्यधिक आवश्यकता है जिसमें वन विभाग एवं स्थानीय समुदायों की भागीदारी हो। इस प्रयास से न केवल लोगों की आजीविका में सुधार होगा अपितु जंगली जानवरों मुख्यतः बंदरों से किसानों की फसलों को होने वाले नुकसान से भी बचाया जा सकेगा।

*****

भारत में रोडोडेंड्रोन का वितरण, उपयोग व प्रवर्धन

डॉ. विनोद कुमार
मुख्य तकनीकी अधिकारी, आनुवंशिकी और वृक्ष सुधार प्रभाग,
हिमालयी वन अनुसंधान संस्थान, शिमला–171013

रोडोडेंड्रोन प्रजाति

कैप्टन हार्डविच की कश्मीर में शिवालिक पर्वत श्रृंखलाओं की यात्रा के दौरान वर्ष 1796 में भारतीय रोडोडेंड्रोन का इतिहास शुरू हुआ, जहां उन्होंने पहली प्रजाति 'रोडोडेंड्रोन अर्बोरियम' की खोज की। हालांकि, 1848 और 1850 के बीच सिक्किम हिमालय में सर जोसेफ डी. हूकर की सिक्किम यात्रा में रोडोडेंड्रोन की प्रजाति का खुलासा किया गया। सर कार्ल लिनिअस ने 1753 में रोडोडेंड्रोन प्रजाति की स्थापना की, जो एरिकेसेई परिवार से संबंध रखती है। रोडोडेंड्रोन शब्द दो ग्रीक शब्दों, रोडो (गुलाब) और डेंड्रोन (वृक्ष) से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'गुलाब का वृक्ष' है। इस जीनस की पूरे विश्व में लगभग 1200 से अधिक प्रजातियां शामिल हैं व दुनिया भर में अनुमानित 30000 किस्में मौजूद हैं।

भारत में रोडोडेंड्रोन का वितरण :

भारत में इस परिवार की प्रजातियां हिमालय, उत्तर–पूर्वी भारत, तमिलनाडु और केरल में दक्षिणी पश्चिमी घाट की पहाड़ियों में पाई जाती हैं। यह प्रजाति प्रमुख रूप से राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों जैसे अरुणाचल प्रदेश,

सिक्किम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, जम्मू और कश्मीर, उत्तराखंड, पश्चिम बंगाल और हिमाचल प्रदेश में केंद्रित हैं। रोडोडेंड्रोन के 132 टैक्सा (82 प्रजातियां, 25 उप–प्रजातियां और 25 किस्में) भारत में पाए जाते हैं। इन टैक्सा में से 119 अरुणाचल प्रदेश में, सिक्किम (42), पश्चिम बंगाल में दार्जिलिंग हिल्स (19), नागालैंड (11), मणिपुर (10), उत्तराखंड (6), मिजोरम (4), मेघालय (3), हिमाचल प्रदेश (4) और तमिलनाडु (1) हैं। दो पूर्वोत्तर राज्य जैसे असम और त्रिपुरा में इसकी कोई भी प्रजाति दर्ज नहीं की गई है। लगभग 14 प्रजातियां, 2 उप–प्रजातियां और 6 किस्में भारत की स्थानिक मानी गई हैं।

अरुणाचल प्रदेश में लगभग 9 टैक्सा, मणिपुर और नागालैंड में 6 प्रत्येक और मिजोरम, मेघालय और सिक्किम में प्रत्येक में 2 टैक्सा इन राज्यों की स्थानिक हैं। जीनस रोडोडेंड्रोन का विस्तार तराई से लेकर अल्पाइन क्षेत्रों, जलवायु क्षेत्रों की एक विस्तृत श्रृंखला के भीतर, उष्णकटिबंधीय वर्षावन से लेकर उपनगरीय टुंड्रा और उष्णकटिबंधीय–क्षेत्र के उच्च शीर्ष तक है। रोडोडेंड्रोन की प्रजातियाँ सभी संभावित आवासों में उगती हैं, जैसे दलदल, घास के मैदान, धारा के किनारे, पहाड़ों और चोटी पर, चट्टानों पर, खुले घास के मैदानों, और घने इलाकों, घाटियों और नदी घाटियों, यहां तक कि पेड़ों पर भी उगती हैं। रोडोडेंड्रोन की अधिकांश प्रजातियां उच्च वर्षा, आर्द्र तापमान, उच्च कार्बनिक, अम्लीय मिट्टी के क्षेत्र में पाई जाती हैं। कई प्रजातियां काई के साथ घनिष्ठ रूप से बढ़ती हैं क्योंकि उनमें नमी की मात्रा बनी रहती है। वृक्षीय प्रजातियाँ उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र में मिश्रित चौड़ी पत्ती वाले जंगल में पाई जाती हैं और कभी–कभी एरिकेसी परिवार की अन्य प्रजातियों के साथ–साथ एरिकसियस पौधों के शुद्ध जंगल में उगती हैं। झाड़ीदार प्रजातियां 2700–2900 मीटर के बीच समशीतोष्ण क्षेत्रों और 2900–3500 मीटर ऊंचाई के उप–अल्पाइन क्षेत्रों में उगती हैं। रोडोडेंड्रोन स्क्रब प्रजातियां 4200–4600 मीटर के बीच प्रमुख रूप से पायी जाती हैं। रोडोडेंड्रोन निवेल जैसी प्रजातियां 5000 मीटर से ऊपर की ऊंचाई पर उगती हैं।

रोडोडेंड्रोन के उपयोग :

रोडोडेंड्रॉन दुनिया भर में अपने सौंदर्य महत्व के लिए बहुत लोकप्रिय हैं। रोडोडेंड्रोन अर्बोरियम नेपाल का राष्ट्रीय फूल है। रोडोडेंड्रोन निवियम भारत में सिक्किम और उत्तराखंड का राज्य वृक्ष है। इसी तरह, एपलाचियन पर्वत में रोडोडेंड्रॉन कैटाबिएन्स, प्रमुख रोडोडेंड्रोन, वेस्ट वर्जीनिया का राज्य फूल है, और वेस्ट वर्जीनिया के झंडे में अंकित है। रोडोडेंड्रोन मैक्रोफिलम, प्रशांत तट पर प्रमुख रोडोडेंड्रोन और कैस्केड पर्वत वाशिंगटन का राज्य पुष्प है। रोडोडेंड्रोन पौधे को फाइटोकेमिकल की खान कहा जाता है, क्योंकि इसके विविध फाइटोकेमिकल गुण पौधे के विभिन्न भागों में सुरक्षात्मक या रोग निवारक गुणों में प्रदर्शित होते हैं। आर. आर्बोरियम के सूखे फूलों को दस्त और रक्त पेचिश की रोकथाम में अत्यधिक प्रभावी माना गया है। नेपाल में आर. कैम्पैनुलटम की सूखी टहनियाँ और लकड़ियों का उपयोग तपेदिक और पुराने बुखार में दवा के रूप में किया जाता है। आर. अर्बोरियम की फूलों की पंखुड़ियाँ जो हिमालय में सबसे आम और व्यापक रूप से वितरित हैं, का उपयोग जूस, जैम, जेली और अचार बनाने के लिए किया जाता है। हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम, पश्चिम बंगाल में दार्जिलिंग, अरुणाचल प्रदेश (केवल रस) और मेघालय (केवल अचार के लिए) में स्थानीय लोगों द्वारा उपयोग में लाया जाता है। आर. सिनाबारिनम कोरोला का उपयोग प्रमुख लामाओं और तिब्बती अभिजात वर्ग द्वारा जैम बनाने के लिए किया जाता है। आर. एंथोपोगोन एक छोटी

झाड़ी है जो आमतौर पर लगभग 3000 मीटर की ऊंचाई से ऊंची पहाड़ियों में पाई जाती है। हिमालय क्षेत्र में बौद्ध मठों में व्यापक रूप से उपयोग की जाने वाली धूप प्रदान करने के लिए पत्तियों को जूनिपर्स के साथ मिलाया जाता है। कई रोडोडेंड्रोन प्रजातियों की करीबी और समान दाने वाली लकड़ी जैसे कि आर. अर्बोरियम, आर. हॉजसोनी, आर. फाल्कनेरी, आदि का उपयोग 'खुखरी' के हैंडल, पैक–सैडल, कप, चम्मच, करछुल, गिफ्ट बॉक्स, गन–स्टॉक के लिए किया जाता है। भूटिया, लेप्चा और नेपालियों द्वारा स्टॉक और पोस्ट। खुरकी के हत्थे और चलने की छड़ें बनाने के लिए कठोर, घनीभूत, चिकनी और बिना फटने वाली लकड़ी उत्कृष्ट होती है। आर. फुलगेन्स की पत्तियों के नीचे के घने टोमेंटम को खुरच कर निकाल दिया जाता है और उत्तरी सिक्किम और तवांग, अरुणाचल प्रदेश के मोनपास के निवासियों द्वारा आग जलाने के लिए बत्ती के रूप में उपयोग किया जाता है। यह बताया गया है कि आर. थॉमसनई के वनस्पति भागों को उबाला जाता है और उत्तर–पूर्वी सिक्किम के लाचेन और लाचुंग गांवों में प्राकृतिक कीटनाशक के रूप में अत्यधिक जहरीले अर्क का उपयोग किया जाता है। रोडोडेंड्रोन पश्चिमी देशों में सबसे लोकप्रिय बागवानी पौधों में से एक है, लेकिन हिमालय में रहने वाले लोगों के लिए वे अपने दैनिक जीवन में ईंधन की लकड़ी, निर्माण के लिए, दवा और कई अन्य उपयोगों का स्रोत है। इस प्रजाति के विभिन्न औषधीय उपयोग हैं, जैसे पेचिश में उपचार, तपेदिक विरोधी संपत्ति, और खांसी, सर्दी, क्रोनिक ब्रोन्काइटिस अस्थमा आदि। रोडोडेंड्रोन सिनाबारिनम की पंखुड़ियों का उपयोग प्रमुख लामाओं और तिब्बती वर्ग द्वारा जेम बनाने और फर्नीचर की वस्तुओं जैसे खुकरी के हैंडल, गिफ्ट बॉक्स, गन–स्टॉक और पोस्ट आदि के लिए किया जाता है। रोडोडेंड्रोन आर्बोरियम, रोडोडेंड्रोन बारबेटम, रोडोडेंड्रोन कैम्पैनुलटम, रोडोडेंड्रोन हॉजसोनी, रोडोडेंड्रोन सिलियाटम, और रोडोडेंड्रोन सिनाबारिनम की लकड़ी का उपयोग चरवाहों द्वारा अपनी ग्रीष्मकालीन झोपड़ियों के आसपास निर्माण सामग्री और ईंधन की लकड़ी के रूप में किया जाता है। रोडोडेंड्रोन एंथोपोगोन की पत्तियों और टहनियों को जुनिपर्स के साथ मिलाकर मंदिरों और मठों में धूप के रूप में जलाया जाता है। रोडोडेंड्रोन पश्चिमी और पूर्वी हिमालय के उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों में मूल तत्व प्रजातियों के रूप में कार्य करते हैं। वे पारिस्थितिक अखंडता और पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता के रखरखाव में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, साथ ही वन स्वास्थ्य के संकेतक के रूप में, और आमतौर पर जलवायु परिवर्तनशीलता के प्रति संवेदनशील होते हैं। रोडोडेंड्रोन उच्च ऊंचाई पर प्रमुख वृक्ष और झाड़ीदार प्रजातियां हैं और हिमालय में समृद्ध जैव विविधता के लिए एक महत्वपूर्ण घटक हैं।

रोडोडेंड्रोन का प्रवर्धन :

पौधशाला में बुरांश प्रजाति पर पाँच साल तक किए गए प्रयोगों में पता चला कि रोडोडेंड्रोन के वन से लायी गई मिट्टी में बीजों को बोए जाने पर 25.28% का अधिकतम अंकुरण देखा गया, इसके उपरांत (वर्मीक्यूलाइट) में 13.84% और स्फैग्नम मॉस में 11.88% का अंकुरण नापा गया। नर्सरी से ली गई मिट्टी में सबसे न्यूनतम 6.32% अंकुरण देखा गया। पोटिंग माध्यम (रोडोडेंड्रोन वन से मिट्टी) में अधिकतम तना लंबाई 21.66% मि.मी. देखा गया, इसके बाद रेत माध्यम में 9.92 मि.मी. और वर्मीक्यूलाइट माध्यम में 8.81 मि.मी. देखा गया। पोटिंग मीडियम

(नियंत्रण) में न्यूनतम तना लंबाई 7.55 मि.मी. देखा गया और स्फाग्नम मॉस में 8.55 मि.मी. पाया गया।

रोडोडेंड्रोन वन की मिट्टी वाले पॉटिंग माध्यम में अधिकतम जड़ की लंबाई 33.30 मि.मी. देखी गई, इसके बाद माध्यम स्पैगनम मॉस में 16.97 मि.मी. और रेत माध्यम में 16.23 मि.मी. पायी गई। पोटिंग माध्यम नियंत्रण में एसएबीएसई कम जड़ लंबाई 10.38 मि.मी. देखी गई, इसके बाद वर्मीक्यूलाइट पोटिंग माध्यम में 12.33 मि.मी. पाई गई। अधिकतम कॉलर व्यास 0.44 मि.मी. रोडोडेंड्रोन वन से लायी मिट्टी में देखा गया, इसके बाद रेत माध्यम 0.15 मि.मी. और पोटिंग माध्यम स्पैगनम मॉस में 0.08 मि.मी. देखा गया। पोटिंग माध्यम नियंत्रण में सबसे कम कॉलर व्यास 0.06 मि.मी. देखा गया, इसके बाद (वर्मीक्यूलाइट माध्यम) में 0.07 मि.मी. देखा गया।

विचार विमर्श और निष्कर्ष:

रोडोडेंड्रोन उच्च ऊंचाई में प्रमुख वृक्ष और झाड़ीदार प्रजातियां हैं और हिमालय में समृद्ध जैव विविधता के लिए एक महत्वपूर्ण घटक हैं। रोडोडेंड्रोन बहुत लोकप्रिय हैं और उनका सौंदर्य उपयोग दुनिया भर में है। दुनिया के कई हिस्सों में भूनिर्माण में सजावटी पौधों के रूप में प्रजातियों और संकर रोडोडेंड्रोन दोनों का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है, और नर्सरी व्यापार के लिए कई प्रजातियों और किस्मों को व्यावसायिक रूप से उगाया जाता है। यह पश्चिमी देशों में सबसे लोकप्रिय बागवानी पौधों में से एक है और यह कई मिलियन डॉलर का उद्योग है। रोडोडेंड्रोन लोकप्रिय बागवानी पौधों में से एक है, लेकिन हिमालय में रहने वाले लोगों के लिए वे ईंधन की लकड़ी, निर्माण के लिए लकड़ी, दवा और उनके दैनिक जीवन में कई अन्य उपयोगों का स्रोत हैं। प्राकृतिक आवासों में रोडोडेंड्रोन की लकड़ी का उपयोग मुख्य रूप से ईंधन और लकड़ी का कोयला के लिए किया जाता है, एक ऐसा अभ्यास जिसे प्रभावी वैकल्पिक साधन प्रदान करके हतोत्साहित किया जाना चाहिए। दुर्भाग्य से, हालांकि इन खूबसूरत प्रजातियों में से कई हिमालय के पहाड़ी राज्यों के घर हैं, भारत ने इसकी क्षमता का बिल्कुल भी उपयोग नहीं किया है। हिमालय क्षेत्र में रोडोडेंड्रोन फूल अपने जंगली रूपों में रंग, आकार और आकार की एक विशाल श्रृंखला दिखाते हैं और उनके बागवानी मूल्य अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध हैं। हालाँकि, अभी तक, भारत ने देश के इस समृद्ध संभावित संसाधन का दोहन नहीं किया है। कुछ चयनित रोडोडेंड्रोन समृद्ध प्राकृतिक आवासों में सावधानीपूर्वक वैज्ञानिक प्रबंधन द्वारा इको–टूरिज्म विकसित करने की जबरदस्त गुंजाइश है। विभिन्न भंडारण प्रक्रियाओं से पता चलता है कि बुरांश के बीजों की व्यवहार्यता 3–5 वर्षों के बीच समाप्त हो जाती है। अतः इस दिशा में आगे के शोध विस्तारित अवधि के लिए बीजों की व्यवहार्यता बढ़ाने के लिए अधिक प्रमुख परिणाम प्रदान कर सकते हैं। शुरुआत में अंकुर की वृद्धि दर बहुत धीमी होती है अतः नर्सरी अवस्था में विशेष देखभाल की अति–आवश्यकता होती है। नर्सरी में अंकुरों की उत्तरजीविता दर 5% तक देखी गयी है जो बहुत कम है अतः अंकुरों की उत्तरजीविता में सुधार के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है। बुरांश का प्रसार बहुत कठिन है, वर्तमान अध्ययन के अनुसार सकारात्मक परिणाम केवल बीज के माध्यम से प्राप्त होते हैं। ताजे एकत्रित बीजों का बीज अंकुरण (80%) से अधिक देखा गया है। वानस्पतिक प्रसार के अन्य साधन भी पूरी तरह से विफल रहे हैं अतः गहन शोध की अति–आवश्यकता है।

*****

कूनो की शान चीता

सुशील कुमार चौरे, आशुलिपिक
क्षेत्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, भोपाल

जिन्हें हमने किताबों में देखा
दादा–दादी से सुनी जिनकी कहानियां
इन्हीं जादूगर की रफ्तार से
अब फिर सजी है कूनो की राहें

बचपन में सुनी थी
जिन्हें खोने की विरह वेदना
उन्हीं कानन के अभिन्न साथी की महक से
सुगंधित हुई कूनो की आबो हवा

इंतजार के लंबे सफर से
सूख गया था उम्मीद का दरिया
उन्हीं चीतों के पुनः आगमन से
भीग गया कूनो का कोना–कोना

अनुराग प्रेम और इच्छाशक्ति से
सात समुंदर चीतों ने लांघा
भारत की धरती ने भी चीतों को
कूनो में शान से पुनः बसाया

एक वो सदी थी चीता खोने वाली
एक ये सदी है जिसने लिखी पाने की दास्तां
अब आने वाली सदियों में भी
भारत होगा चीतों वाला
अब प्रण है हर भारतवासी का
कूनो का ये प्यारा चीता
भारत के हर वन का वासी होगा

*****

आर्द्रभूमि क्षरण और इसके संरक्षण के उपाय

विपुला व्यास, संगीता सिंह,
तन्मय कुमार भोई, वर्षा गिरी एवं **अपूर्वा यादव**
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

आर्द्रभूमि को जलीय और स्थलीय पारिस्थितिक तंत्रों के बीच एक विशिष्ट पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में परिभाषित किया गया है या शुष्क भूमि और खुले जल निकाय के बीच संक्रमणकालीन क्षेत्र पारिस्थितिक तंत्र हैं और पृथ्वी पर सबसे महत्वपूर्ण पारिस्थितिक तंत्रों में से हैं। वे पृथ्वी के 'गुर्दे' के रूप में भी कार्य करते हैं, जो पारिस्थितिक सेवा कार्यों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

हालांकि, मानव आबादी में तेजी से वृद्धि के साथ, दुनिया भर में आर्द्रभूमि गंभीर गिरावट या हानि जैसा कि आर्द्रभूमि प्रदूषण, आर्द्रभूमि सुधार, सभ्यता और भूमि उपयोग परिवर्तन आदि से प्रभावित है। वेटलैंड्स की वैश्विक सीमा अब 64–71% के बीच घटने का अनुमान है, और वेटलैंड्स का नुकसान और गिरावट दुनिया भर में जारी है। आर्द्रभूमि के नुकसान और गिरावट के कारण, लोग आर्द्रभूमि प्रदान करने वाली पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं से वंचित हैं। आर्द्रभूमि क्षरण का मानव स्वास्थ्य, जैव–विविधता, क्षेत्रीय जलवायु और क्षेत्रीय पारिस्थितिक सुरक्षा पर संभावित प्रभाव पड़ता है। इसलिए, इन बिगड़ी हुई आर्द्रभूमियों को ठीक करना एक अत्यावश्यक कार्य है। हाल के वर्षों में, अधिकांश सरकारों और शोधकर्ताओं द्वारा आर्द्रभूमि संरक्षण, बहाली और इसके उचित दोहन पर अधिक ध्यान दिया गया है। इसके अलावा, आर्द्रभूमि बहाली आर्द्रभूमि विज्ञान का अग्रणी क्षेत्र बन गया है, जिसे इन हालिया अंतरराष्ट्रीय आर्द्रभूमि और पारिस्थितिक सम्मेलनों में महत्वपूर्ण विषयों में से एक के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। 02 फरवरी को विश्व आर्द्रभूमि दिवस (World Wetland Day) मनाया जाता है। इसका उद्देश्य ग्लोबल वार्मिंग का सामना करने में आर्द्रभूमि जैसे दलदल तथा मैंग्रोव के महत्व के बारे में जागरूकता फैलाना है। आर्द्रभूमि क्षरण प्रक्रियाओं को समझना बेहतर प्रभावी आर्द्रभूमि बहाली में योगदान कर सकता है।

आर्द्रभूमि का वर्गीकरण

आर्द्रभूमि को मुख्य रूप से तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है :–

- **समुद्री आर्द्रभूमि** – खाड़ी व जलडमरू मध्य, कोरल रीफ, पथरीला समुद्री तट, लैगून इत्यादि
- **अन्तः स्थलीय आर्द्रभूमि** – झील या तालाब, डेल्टा, क्रीक, अनूप वन, इत्यादि
- **मानव निर्मित आर्द्रभूमि** – एक्वाकल्चर, तालाब, छोटे टैंक, सिंचित कृषि भूमि इत्यादि

हमारे वेटलैंड्स पर क्या प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है? वेटलैंड्स को अक्सर एक निष्क्रिय भूमि और मानव विकास के लिए बाधाओं के रूप में माना जाता है। इस दृष्टिकोण ने वेटलैंड्स को बड़े पैमाने पर भूमि उपयोग के अन्य रूपों में परिवर्तित कर दिया, जिसमें कृषि और बुनियादी ढांचे के विकास, चराई, प्रदूषण से जल निकासी और भूमि भरना शामिल है। अपशिष्ट का निपटान, जल पथांतरण/अमूर्तकरण और खनन। भूमि क्षरण, वनों की कटाई और मिट्टी के कटाव जैसी गतिविधियाँ व्यापक जलग्रहण क्षेत्रों में हो रही हैं जो की आर्द्रभूमि को प्रभावित करती हैं। हमारी आर्द्रभूमि के लिए अधिकांश खतरे मानवजनित हैं; भूवैज्ञानिक नहीं। प्रमुख खतरे कृषि के लिए जल निकासी से आते हैं; अतिचारण; जलग्रहण भूमि का क्षरण; उनके संसाधन के बंदोबस्त और शहरी विस्तार की कटाई। कुछ अन्य आक्रामक पौधों की प्रजातियों पर आक्रमण अन्य खतरों के बगल में आर्द्रभूमि विध्वंस के खतरों का एक और रूप है।

वेटलैंड्स के संरक्षण के लिए क्या किया जा सकता है: वेटलैंड्स के संरक्षण और प्रबंधन में स्थानीय संस्थाओं की बड़ी भूमिका होती है। स्थानीय ज्ञान को स्वीकार किया जाना चाहिए। वेटलैंड्स के सरंक्षण में स्थानीय नेताओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जैसा कि अम्सालु और अदिसु (2014) में कहा गया है, उचित संरक्षण के लिए, निम्नलिखित मुद्दों पर विचार करने की आवश्यकता है :

- आर्द्रभूमियों पर बहु–क्षेत्रीय हित की पहचान करना, अर्थात नीति निर्माताओं को प्रभावित करने के लिए आर्द्रभूमियों के मूल्य और अन्य विशेषताओं पर विश्वसनीय डेटा उत्पन्न करने और उनके प्रयासों को समन्वित करने के लिए क्षेत्रों की संख्या निर्धारण पर उचित कार्रवाई करना।
- राष्ट्रीय आर्द्रभूमि नीति में हितधारकों को शामिल करना, जो आर्द्रभूमि संरक्षण कार्रवाई के डिजाइन, चर्चा और कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- आर्द्रभूमियों का संरक्षण, जो अच्छी स्थिति में हैं, जहाँ संभव हो, निम्नीकृत आर्द्रभूमियों का पुनर्वास करें, और आर्द्रभूमि जैव विविधता, कार्यों और सेवाओं की रक्षा करके आर्द्रभूमियों की सराहना का समर्थन करें :
  - आर्द्रभूमि के सामाजिक और आर्थिक हितों की रक्षा करना
  - जहां संभव हो, प्राकृतिक परिस्थितियों की नकल करने वाली प्रवाह व्यवस्था प्रदान करना
  - उपयुक्त मात्रा और गुणवत्ता के पानी के साथ आर्द्रभूमि प्रदान करना
  - आगे विखंडन को सीमित करना और आर्द्रभूमि प्रणालियों को निम्नलिखित के माध्यम से पुनः जोड़ना :–
- आर्द्रभूमि पर प्रभाव डालने वाली जलग्रहण गतिविधियों को रोकना या सीमित करना;
  - आर्द्रभूमि की सांस्कृतिक विरासत और आध्यात्मिक महत्व की रक्षा करना
  - आर्द्रभूमि प्रबंधकों को पुरस्कृत करना जो आर्द्रभूमियों की स्थिति में सुधार करते हैं; और
  - आर्द्रभूमियों को प्रभावित करने वाले किसी भी विकास कार्य को करने से पहले पर्यावरण प्रभाव आकलन को ध्यान में रखना।

आर्द्रभूमि बहाली के लिए कुछ उचित संरक्षण एवं प्रबंधन के उपाय :–

- कृषि और अन्य प्रयोजनों के लिए झील के अवैध अतिक्रमण को रोकना।
- झील की गाद को रोकने के लिए आर्द्रभूमि के आसपास मृदा संरक्षण उपायों और वनीकरण को अपनाना। यह तलछट जमाव को रोकने के अलावा पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में मदद करेगा। यह पारिस्थितिकी तंत्र की समग्र उत्पादकता में भी सुधार करेगा।
- मानसून के बाद के मौसम में फसलों के लिए पानी के उपयोग के लिए किसानों द्वारा उपयुक्त अपवाह जल संचयन प्रणाली जैसे चेक डैम बनाए जाने चाहिए। यह सिंचाई के पानी के मौजूदा स्रोत का पूरक होगा।
- एक सुव्यवस्थित और व्यवस्थित जल प्रबंधन प्रणाली विकसित करने के लिए सुव्यवस्थित जल उपयोगकर्ता संघों, सेवा और उत्पादक सहकारी समितियों की स्थापना बहुत उपयोगी होगी।

मानव के दैनिक कार्यों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष खतरों के कारण आर्द्रभूमियों को हानि (निम्नीकरण) का सामना करना पड़ रहा है। अतिचारण, बंदोबस्त और शहरी विस्तार, प्रदूषण और पानी का मोड़, आर्द्रभूमि संरक्षण और प्रबंधन पर उपयुक्त राष्ट्रीय नीति की कमी, आर्द्रभूमि का वृक्षारोपण स्थल में रूपांतरण और विदेशी आक्रामक प्रजातियाँ आर्द्रभूमि के लिए प्रमुख संचयी खतरे हैं।

*****

कैन्थ (पायरस पेशिया): महत्वपूर्ण बहुपयोगी जंगली वृक्ष प्रजाति

डॉ० जोगिंद्र सिंह, मुख्य तकनीकी अधिकारी,
डॉ० जगदीश सिंह, वैज्ञानिक एवं
अखिल शर्मा, मुख्य तकनीकी अधिकारी,
हिमालयन वन अनुसंधान,
पंथाघाटी, शिमला, हिमाचल प्रदेश

कैन्थ (Pyrus pashia) रोजेसी कुल की महत्वपूर्ण बहुउपयोगी जंगली वृक्ष प्रजाति है। इसे सामान्यतः हिमालयन नाशपाती एवं जंगली नाशपाती के नाम से भी जाना जाता है। कैन्थ को असम में सोह–शूर, सोह–जूर, चलथी; हिमाचल प्रदेश व पंजाब में कैंथ, शेगल; कुमाऊं, उत्तराखंड में मेहोल, मोल और नेपाल में पासी नाम से जाना जाता है। यह मध्यम आकार का पर्णपाती वृक्ष होता है, जिसकी अधिकतम ऊंचाई दस मीटर तक हो सकती है। कैन्थ, हिमालय में, अफगानिस्तान से लेकर दक्षिण पश्चिमी चीन और म्यांमार तक 750–2700 मीटर की ऊंचाई पर पाया जाता है। भारत में कैन्थ उत्तर पश्चिमी हिमालयन क्षेत्र में उप समशीतोष्ण एवं समशीतोष्ण भू–भागों में पाया जाता है। प्राकृतिक वास में कैंथ के पौधे विरेले घनत्व में होते हैं। इसके वृक्ष, खुली, प्रकाशमय तथा रेतली दोमट मिट्टी में उगते हैं। शामलात, सामुदायिक भूमि, खेतों की मेढ़ों में भी अकसर इसके विरेले पौधे पाये जाते हैं। पौधों का पुनर्जनन बीज तथा रूट–सकर द्वारा होता है परंतु अधिकतर इसे बीजों से ही उगाया जाता है।

कैन्थ की पत्तियां अंडाकार, किनारों में बारीक दांतेदार, लंबी–नुकीली, बाल रहित और चमकदार एवं 5–10 सेंटीमीटर लंबी होती हैं। नये पत्ते हल्के सफेद–ऊनी होते हैं तथा सफ़ेद फूल 2–2.5 सेंटीमीटर के होते हैं, जिसमें तिरछी पंखुड़ियां होती हैं। फल गोल, 1.3–2.5 से.मी., गहरे भूरे रंग के, जिसमें उभरे हुए निशान होते हैं। पौधे में फूल मार्च–अप्रैल के महीने में आते हैं तथा खाद्य फल अक्तूबर–नवम्बर में पकते हैं, जो अंदर से गहरे काले रंग के होते हैं।

उपयोग : कैंथ एक बहुउद्देशीय वृक्ष है। इसके उपयोग निम्न हैं :

खाद्य फल : कैंथ के पके फल खाने में मीठे और स्वादिष्ट होते हैं। इन्हें सुखाकर भी रखा जाता है ताकि ऑफ सीजन में उपलब्धता सुनिश्चित हो। शोध

से ज्ञात हुआ है कि इसके फलों में लगभग 6.8% शर्करा, 3.7% प्रोटीन, 1% एश होता है तथा विटामिन 'सी' बहुत कम मात्रा में होता है।

सब्जी : फूल, पत्ते और टहनी की नोक को भी सब्जी के रूप में पकाया जाता है।

औषधीय उपयोग : पके फल के रस का उपयोग दस्त के उपचार में किया जाता है। फलों का उपयोग निर्जलीकरण, बुखार, सिरदर्द, हिस्टीरिया और मिर्गी के इलाज के लिए किया जाता है। भारत के जम्मू–कश्मीर संभाग के लोग पेड़ की टहनियों का उपयोग दांत दर्द की समस्याओं में करते हैं। छाल और पत्ते (1–2) का चूर्ण एक चुटकी काली मिर्च के साथ रक्त शोधक के रूप में तथा जोड़ों के दर्द में उपयोग होता है। इसे दिन में एक चम्मच दो बार बीमारी ठीक होने तक दिया जाता है।

नाशपाती का रूटस्टॉक : इस पौधे का उपयोग नाशपाती की कलम लगाने के लिए रूटस्टॉक के रूप में किया जाता है। हिमाचल प्रदेश के जिला शिमला, कुल्लू, मंडी और सिरमौर में लोग इसकी नर्सरी तैयार कर रूटस्टॉक के रूप में बीस से तीस रुपये प्रति पौधा बेचते हैं, जिससे उत्पादक अच्छी आमदनी प्राप्त करते हैं। बीजों को नर्सरी में फरवरी–मार्च में बोया जाता है तथा रोपण हेतु पौधे तैयार होने में एक से दो वर्ष लग जाते हैं। पौधे, पहले से तैयार 30x30x30 सेंटीमीटर आकार के गड्ढों में दिसम्बर–जनवरी माह में लगाये जाते हैं और उसके अगले वर्ष फरवरी–मार्च तक पौधे पर नाशपाती की कलम/ग्राफ्टिंग की जा सकती है।

चारा एवं ईंधन : लोग इसे चारा एवं ईंधन के लिए जंगली आवास से काटते हैं।

अन्य उपयोग : इसकी लकड़ी का उपयोग घरेलू सामान, औजारों के हैंडल, फर्नीचर और चलने की छड़ी आदि बनाने के लिए किया जाता है। इसके अलावा लकड़ी का उपयोग योक एवं हल तैयार करने के लिए भी किया जाता है। पौधे, फूलने के समय अति सुंदर और शोभनीय होते हैं, अतः इसे सजावटी पेड़ और जीवित बाड़ के रूप में सीमाओं को सीमांकित करने, इत्यादि के लिए भी उगाया जा सकता है। यह पारिस्थितिक रूप से भी महत्वपूर्ण वृक्ष प्रजाति है। पौधरोपण प्रथम वर्ष स्थापित होने के बाद यह समान्यतः नहीं सूखता है। एक बार स्थापित होने पर पौधा सहजता से उगता है।

उपरोक्त संक्षेप वर्णन दर्शाता है कि यह वृक्ष प्रजाति बहुत महत्वपूर्ण है, परंतु इसकी प्राकृतिक वास में संख्या बहुत कम है। लोग इसे मात्र नाशपाती के रूट स्टॉक के रूप में उगा रहे हैं, परंतु वन विभाग द्वारा इसका अधिक पौधरोपण नहीं किया जा रहा है। अतः इस महत्वपूर्ण प्रजाति का अधिक पौधरोपण किया जाना चाहिए। इसे वन विभाग द्वारा पौधरोपण योजना में अवश्य शामिल किया जाना चाहिए।

*****

कार्बन न्यूट्रल बनने की दिशा में भारतीय पहल और उसकी सार्थकता

प्रशांत कुमार शर्मा
सहायक, केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

भूमिका :

आज के औद्योगिक युग में मानव औद्योगिकीकरण की दौड़ में इस तरह प्रतिस्पर्द्धा कर रहा है, जिसमें उसने प्रकृति का संतुलन ही बिगाड़ दिया है, यही कारण है कि आज प्रदूषण एवं उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए जलवायु परिवर्तन, गंभीर वैश्विक पर्यावरणीय संकटों में से एक है। आज इस बात पर वैश्विक सहमति बनती जा रही है कि जलवायु परिवर्तन दुनिया भर के देशों के विकास में दबाव उत्पन्न कर रहा है, जिसके फलस्वरूप आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय प्रभाव नजर आ रहे हैं। अतः इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि वर्तमान में जलवायु परिवर्तन वैश्विक समाज के समक्ष मौजूद सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है एवं इससे निपटना ही वर्तमान समय की आवश्यकता बन गई है। आंकड़े दर्शाते हैं कि 19वीं सदी के अंत से अब तक पृथ्वी की सतह का औसत तापमान लगभग 1.62 डिग्री फॉरनेहाइट (अर्थात् लगभग 0.9 डिग्री सेल्सियस) बढ़ गया है। इसके अतिरिक्त पिछली सदी से अब तक समुद्र के जल स्तर में भी लगभग 8 इंच की बढ़ोतरी दर्ज की गई है। आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि यह समय जलवायु परिवर्तन की दिशा में गंभीरता से विचार करने का है। इसी दिशा में सार्थक पहल करते हुए वर्ष 2021 में ग्लासगो में कॉप–26 शिखर सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों पर विचार–विमर्श करने और इसका प्रभावी समाधान तलाशने की संभावनाओं पर चर्चा की गई, जिसमें विश्व भर के देशों का ध्यान कार्बन न्यूट्रिलिटी की ओर आकर्षित कराया गया। इस सम्मेलन में 70 से अधिक देशों ने मध्य शताब्दी तक या उसके आस–पास कार्बन न्यूट्रिलिटी प्राप्त करने का लक्ष्य रखा है।

कार्बन न्यूट्रिलिटी का आशय :

कार्बन न्यूट्रिलिटी का तात्पर्य ऐसी स्थिति से है, जिसमें किसी देश का कुल कार्बन उत्सर्जन, वातावरण से अवशोषित कार्बन डाइआक्साइड के समान होता है, अर्थात् जितना कार्बन मानवीय क्रिया–कलापों के होने से वातावरण में उत्सर्जित होता है, उतना ही कार्बन पेड़–पौधों, जंगलों या अन्य विधियों से सोख लिया जाता है, जिससे कि कार्बन उत्सर्जन एवं इसका अवशोषण दोनों बराबर बना रहे, ऐसी स्थिति को ही कार्बन न्यूट्रिलिटी कहा गया है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों को इको फ्रेंडली बनाना होता है, अर्थात् ग्रीन हाउस गैसों के लिए जिम्मेदार ऊर्जा के स्रोतों के स्थान पर हरित एवं अक्षय ऊर्जा का उपयोग इसमें शामिल है। यद्यपि, दुनियाभर में जलवायु परिवर्तन के लिए ग्रीनहाउस गैसों को जिम्मेदार माना जा रहा है। ये वो गैसें हैं, जिनका ज्यादा उत्सर्जन पूरी दुनिया में ग्लोबल वार्मिंग का कारण बन रहा है। इन गैसों में सबसे प्रमुख है कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), मीथेन (CH_4), और नाइट्रस आक्साइड (N_2O)। तथापि, वैज्ञानिकों

का कहना है कि इंसान का पूरा जीवन ही कार्बन पर निर्भर है यानी कार्बन उत्सर्जन को कभी खत्म नहीं किया जा सकता। लेकिन जिस स्तर पर मौजूदा समय में इसका उत्सर्जन हो रहा है, उसे नियंत्रण में लाया जा सकता है। इसका मतलब यह है कि कोई देश वातावरण में जितनी कार्बन आधारित ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन कर रहा है, उतना ही उसे सोख अथवा हटा ले, यानि उसकी ओर से वातावरण में कार्बन गैसों का योगदान न के बराबर हो, जिसे कार्बन न्यूट्रिलिटी कहा गया है।

कार्बन न्यूट्रिलिटी की दिशा में भारत की पहल :

- **पंचामृत लक्ष्य :**

वर्तमान में, भारत विश्व के कुल ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में 5 प्रतिशत का भागीदार है, और यह कार्बन डाइआक्साइड उत्सर्जन के मामले में विश्व में तीसरा देश है, जबकि चीन और अमरीका क्रमशः विश्व के सबसे बड़े कार्बन उत्सर्जक देश हैं। फिर भी, भारत ने जलवायु परिवर्तन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता, ग्लासगो सम्मेलन (कॉप–26) में 'पंचामृत' लक्ष्य के तौर पर परिभाषित की थी। जिसके तहत भारत की ओर से, माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने कार्बन उत्सर्जन में तटस्थता लाने के लिए पांच प्रमुख कदमों को उठाए जाने का संकल्प लिया है, जो निम्नलिखित है :

1. देश में वर्ष 2030 तक कार्बन उत्सर्जन में एक अरब टन की कमी करना,
2. वर्ष 2030 तक ही अपनी अर्थव्यवस्था की कार्बन तीव्रता को 45 प्रतिशत तक कम कर लेना,
3. वर्ष 2030 तक जीवाश्म ऊर्जा का 50 प्रतिशत तक गैर–जीवाश्म ऊर्जा में बदलना।
4. वर्ष 2030 तक अपनी ऊर्जा की आवश्यकताओं को 50 प्रतिशत करना और
5. वर्ष 2070 तक भारत को पूरी तरह से कार्बन न्यूट्रल बनाने के संकल्प का आह्वान।

अतः ग्लासगो सम्मेलन पेरिस समझौते के लक्ष्य पूर्व औद्योगिक स्तरों की तुलना में वैश्विक तापमान को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

- **राष्ट्रीय निर्धारित योगदान (एन.डी.सी.) को मंजूरी :**

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी की अध्यक्षता में केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (यू.एन.एफ.सी.सी.सी.) को सूचित करने के लिए भारत के अद्यतन राष्ट्रीय तौर पर निर्धारित योगदान (एन.डी.सी.) को मंजूरी दी गई। अद्यतन एन.डी.सी., पेरिस समझौते के तहत सहमत जलवायु परिवर्तन के खतरे के लिए वैश्विक प्रतिक्रिया को मजबूत करने की उपलब्धि की दिशा में भारत के योगदान को बढ़ाने का प्रयास करता है। यह एन.डी.सी. 2021–2030 की अवधि के लिए स्वच्छ ऊर्जा हेतु भारत के संक्रमण के लिए रूपरेखा का भी प्रतिनिधित्व करता है। अद्यतन ढांचा, सरकार की कई अन्य पहलों के साथ, जिसमें कर रियायतें और प्रोत्साहन शामिल हैं, जैसे–उत्पादन को बढ़ावा देने और नवीकरणीय ऊर्जा को अपनाने के लिए उत्पादन से जुड़ी प्रोत्साहन योजना आदि, भारत की विनिर्माण क्षमताओं को बढ़ाने और निर्यात को बढ़ाने का अवसर प्रदान करेगी। इससे नवीकरणीय ऊर्जा, स्वच्छ

ऊर्जा उद्योग, मोटर वाहन में, कम उत्सर्जन वाले उत्पादों जैसे इलेक्ट्रिक वाहनों और सुपर–कुशल उपकरणों का निर्माण और हरित हाइड्रोजन जैसी नवीन तकनीकों के निर्माण में हरित नौकरियों में समग्र वृद्धि होगी। भारत के अद्यतन एन.डी.सी. को संबंधित मंत्रालयों/विभागों के कार्यक्रमों व योजनाओं के माध्यम से तथा राज्यों व संघ राज्य क्षेत्रों के उचित समर्थन के साथ 2021–2030 की अवधि में लागू किया जाएगा। सरकार ने कार्बन न्यूट्रल के संदर्भ में अनुकूलन व शमन दोनों पर भारत के योगदान को बढ़ाने के लिए कई योजनाएं और कार्यक्रम शुरू किए हैं। जल, कृषि, वन, ऊर्जा और उद्यम, सतत गतिशीलता और आवास, अपशिष्ट प्रबंधन इत्यादि सहित कई क्षेत्रों में इन योजनाओं और कार्यक्रमों के तहत उचित उपाय किए जा रहे हैं। इन उपायों के परिणामस्वरूप, भारत द्वारा ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में क्रमिक रूप से विघटन जारी है। अकेले भारतीय रेलवे द्वारा वर्ष 2030 तक शुद्ध शून्य लक्ष्य से उत्सर्जन क्षमता में वार्षिक 60 मिलियन टन की कमी आएगी।

जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए हरित बजट :

भारत सरकार ने कार्बन न्यूट्रिलिटी को ध्यान में रखते हुए बजट के दौरान इको फ्रेंडली तकनीकों का समावेश कर ऐसा वातावरण बनाने की कोशिश की है, जिससे सामूहिक एवं व्यापक स्तर पर बदलाव लाकर पूरे विश्व में जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटा जा सके। सरकार ने हरित बजट बनाकर यह संदेश दिया है कि भारत धीरे–धीरे आगे बढ़कर अपने सीमित संसाधनों के साथ अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत करते हुए कार्बन न्यूट्रल बनने की ओर भी अग्रसर हो रहा है। इसके अंतर्गत स्वच्छ ऊर्जा पर नए सिरे से ध्यान देना, आपदा के समय त्वरित प्रतिक्रिया देने वाला आधारभूत ढांचा, जल संचयन एवं संरक्षण, इलेक्ट्रिक वाहन आधारित यातायात की सुविधा तथा चरणबद्ध पौधारोपण इत्यादि जैसे उपाय शामिल हैं। वर्तमान जलवायु परिवर्तन के समय से सभी साझीदारों को जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से लड़ने के लिए एक साथ मिलकर सामूहिक, व्यापक एवं समग्र रूप से प्रयास करने होंगे।

ऊर्जा के क्षेत्रों में नवीकरणीय लक्ष्य :

- भारत द्वारा वर्ष 2019 में यह घोषणा की गई है कि वह वर्ष 2030 तक अक्षय ऊर्जा की वर्तमान क्षमता को बढ़ाकर 450 गीगावाट तक कर लेगा।
- विभिन्न ऊर्जा के क्षेत्रों में 50 प्रतिशत गैर–जीवाश्म ईंधन से ऊर्जा की पूर्ति का लक्ष्य प्राप्त कर लिया गया है।
- भारत ने यह घोषणा की है कि वह वर्ष 2022 के बाद कोई नया कोयला बिजली संयंत्र स्थापित करने पर विचार नहीं करेगा।

भारत में नेट जीरो टारगेट प्राप्त करने के लिए सुझाव :

- भारत को प्राथमिक ऊर्जा मिश्रण में जीवाश्म ऊर्जा की हिस्सेदारी को वर्ष 2025 में घटाकर 5 प्रतिशत करना होगा, जो वर्ष 2015 में 73 प्रतिशत थी।
- वर्ष 2050 तक गैर–जल नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों से 83 प्रतिशत बिजली उत्पन्न करनी होगी, जो वर्ष 2010 में 10.1 प्रतिशत थी।
- भारत के दो–तिहाई से अधिक औद्योगिक ऊर्जा उपयोग और नए वाहनों की बिक्री को विद्युतीकृत करना होगा, जबकि औद्योगिक ऊर्जा उपयोग में बिजली का 20.3 प्रतिशत हिस्सा और परिवहन ऊर्जा उपयोग में अब तक का हिस्सा नगण्य है।
- कैट ने कहा कि जल–विद्युत और परमाणु ऊर्जा के उपयोग के माध्यम से देश

एक दशक से पहले ही अपने 40 प्रतिशत गैर–जीवाश्म बिजली क्षमता लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

- प्रकृति आधारित समाधानों का अधिक से अधिक उपयोग, पर्यावरणीय सामाजिक और आर्थिक लाभों की एक श्रृंखला प्रदान कर सकता है और जलवायु परिवर्तन शमन और अनुकूलन में योगदान के अलावा त्वरित जैव विविधता हानि को रोक सकता है।
- बैटरी भंडारण, हाइड्रोजन प्रौद्योगिकी, शीतलन प्रौद्योगिकी दूसरी और तीसरी पीढ़ी के जैव ईंधन में आगे के अनुसंधान और विकास और नवाचार, न केवल भारत में बल्कि अन्य देशों में भी डीकार्बोनाइजेशन रोडमैप के ढलान को आकार देने की संभावना है।
- एक अध्ययन के अनुसार, भारत को वर्ष 2070 तक अपने कार्बन न्यूट्रल के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनी स्थापित कुल सौर ऊर्जा क्षमता को 5600 गीगावाट से भी अधिक बढ़ाना होगा, जिसके लिए यह आवश्यक है कि सौर ऊर्जा के क्षेत्र में और अधिक विकास की संभावनाओं को तलाशा जाए।
- वर्ष 2060 तक भारत को कोयले पर निर्भरता को, विशेषकर बिजली उत्पादन के लिए, 99 प्रतिशत तक कम करना होगा।
- विभिन्न क्षेत्रों में कच्चे तेल की खपत को वर्ष 2050 से वर्ष 2070 के बीच 90 प्रतिशत तक कम करने की आवश्यकता होगी, अतः कच्चे तेल के विकल्प के रूप में ई–वाहनों को अधिक बढ़ावा दिया जाए, साथ ही इनके प्रोत्साहन के लिए प्रभावी कदम उठाए जाएं।
- भविष्य की ऊर्जा पूर्ति के रूप में ग्रीन हाइड्रोजन एक प्रमुख स्रोत हो सकता है, क्योंकि औद्योगिक क्षेत्र की कुल ऊर्जा जरूरतों का 19 प्रतिशत योगदान ग्रीन हाइड्रोजन कर सकता है।

चुनौतियां :

उपर्युक्त महत्वाकांक्षी प्रयासों की दिशा में प्रभावी कदम उठाने के बावजूद महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या भारत वर्ष 2070 तक शुद्ध शून्य उत्सर्जन जैसे दीर्घकालिक लक्ष्य की घोषणा वैश्विक स्तर पर गति के निर्माण के अनुरूप करने की स्थिति में है। यह देश की राष्ट्रीय परिस्थितियों और इस तरह के लक्ष्य को प्राप्त करने की व्यवहार्यता को ध्यान में रखते हुए तय किया जाना है, खासकर जब इसकी आबादी के विशाल बहुमत की विकास प्राथमिकताओं को पूरा किया जाना बाकी है। विशेष रूप से समाज के कमजोर वर्गों पर संबंधित अल्पकालिक और दीर्घकालिक सामाजिक–आर्थिक प्रभावों के विस्तृत विश्लेषण की आवश्यकता है। साथ ही, भारत की प्रतिक्रिया समानता और सामान्य, लेकिन अलग–अलग जिम्मेदारी और संबंधित क्षमताओं के सिद्धांतों के अनुरूप होनी चाहिए, जैसा कि कन्वेंशन में निर्धारित किया गया है।

अंतरराष्ट्रीय सहयोग भारत जैसे विकासशील देशों को एक त्वरित डीकार्बोनाइजेशन मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए सक्षम स्थिति प्रदान करती है। हालांकि, इस मामले में पिछली कार्रवाई बहुत प्रेरक नहीं रही है और वैश्विक स्तर पर मजबूत जलवायु कार्रवाई के लिए चीजों में तेजी से सुधार लाने की जरूरत है।

ऐसे कई अध्ययन हैं, जिन्होंने भारत के लिए कई क्षेत्रों में निम्न कार्बन विकास पथों की गणना की है। ऊर्जा क्षेत्र के नवीकरणीय ऊर्जा भविष्य की ओर परिवर्तन और ऊर्जा मांग और आपूर्ति पक्षों में आक्रामक दक्षता सुधार को महत्वाकांक्षी लक्ष्यों को पूरा करने के लिए और तेज करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष :

जबकि भारत ने पहले ही विभिन्न क्षेत्रों में कम कार्बन की कार्रवाई शुरू कर दी है। डीकार्बोनाइजेशन योजनाओं में लगातार सुधार करने की जरूरत है और आने वाले वर्षों में कार्यान्वयन पहलुओं पर करीबी नजर रखते हुए इसे और अधिक महत्वाकांक्षी बनाया जाना चाहिए। हालांकि विकसित देशों को भारत और अन्य विकासशील देशों को अपेक्षित वित्तीय और तकनीकी सहायता प्रदान करने में अपनी भूमिका निभानी होगी। उन्हें भी उदाहरण के आधार पर नेतृत्व करना होगा और जिनके पास साधन हैं, उन्हें सभी के लिए एक सामान्य मध्य शताब्दी समय रेखा की तलाश के बजाय शुद्ध शून्य उत्सर्जन के त्वरित लक्ष्य के लिए प्रयास करना चाहिए। पेरिस समझौते के तहत परिकल्पित लक्ष्यों को प्राप्त करने का तरीका अक्षर और भावना में अंतरराष्ट्रीय सहयोग है। यह इस बात पर ध्यान दिए बिना है कि भारत अंततः यू.एन.एफ.सी.सी.सी. को अपनी दीर्घकालिक ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन विकास रणनीतियों के बारे में बताता है, चाहे वर्ष 2070 तक शुद्ध शून्य उत्सर्जन लक्ष्य प्राप्त करना हो या किसी अन्य रूप में।

अतः भारत के जलवायु कार्यों को अब तक बड़े पैमाने पर घरेलू संसाधनों से वित्त पोषित किया गया है। हालांकि, नए और अतिरिक्त वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराने के साथ–साथ वैश्विक जलवायु परिवर्तन चुनौती से निपटने के लिए प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण यू.एन.एफ.सी.सी.सी. और पेरिस समझौते के तहत विकसित देशों की प्रतिबद्धताओं और जिम्मेदारियों में से एक है। भारत को ऐसे अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संसाधनों और तकनीकी सहायता से अपने लिए उचित हिस्से की भी आवश्यकता होगी। साथ ही, भारत द्वारा कार्बन न्यूट्रल होने की दिशा में उठाए गए उपर्युक्त कदम इसे किसी भी क्षेत्र विशिष्ट शमन दायित्व या कार्रवाई के लिए बाध्य नहीं करते हैं। बल्कि भारत का लक्ष्य पर्यावरण में कार्बन उत्सर्जन तीव्रता को कम करके पर्यावरण व आने वाली पीढ़ियों को स्वच्छ पर्यावरण प्रदान करने जैसे दायित्वों का निर्वहन करना है, ताकि आने वाले समय में जीवों के अस्तित्व पर उत्पन्न होने वाले संकटों से बचा जा सके।

*****

अकेसिया अलबिडा के द्वारा मरू क्षेत्र में आर्थिक उन्नति एवं हरियाली

डॉ. नवीन कुमार बोहरा
प्लाट नं. 389, गली नं. 10
मिल्कमेन कालोनी, पॉल रोड़,
जोधपुर (राज.)

राजस्थान, गुजरात एवं हरियाणा के शुष्क क्षेत्रों में विभिन्न वनीकरण कार्यक्रमों में अकेसिया की विभिन्न प्रजातियों को लगाने का प्रयास किया गया है। इनमें से अकेसिया टोरटिलिस को वृहद स्तर पर सामुदायिक भूमि, रेतीले टिब्बों आदि पर लगाया गया। यह प्रजाति तेजी से बढ़ती है परन्तु इसके गिराए गए पौधों में काष्ठ छेदक का प्रकोप पाया गया जिससे लकड़ी का बुरादा (पाऊडर) बन जाता है। इसके अलावा अकेसिया टोरटिलिस से मरूक्षेत्र में एक मोनोकल्चर (एक ही प्रजाति) पौधरोपण का आभास होता है। इसके बड़े पौधों से किसानों को भी परेशानी होने से यह प्रजाति लोकप्रिय नहीं रही। इन सभी बाधाओं को दूर करने के लिए प्रोसोपिस सिनरेरिया (खेजडी) द्वारा इसमें बदलाव का प्रयास किया गया परन्तु खेजडी की धीमी वृद्धि एवं प्राकृतिक पुर्नजनन में परेशानी तथा जानवरों द्वारा इसके खाए जाने से यह उपाय उपयोगी साबित नहीं हुआ। ऐसी स्थिति में अकेसिया बेवीनोसा एवं अन्य प्रजातियों को भी परिरक्षित किया गया परन्तु कुछ न कुछ कारणों से ये प्रजातियां अकेसिया टोरटिलिस का स्थान नहीं ले सकीं।

मरू क्षेत्र में वनीकरण कार्यक्रमों में प्रजातियों की सीमितता तथा प्राकृतिक संसाधनों एवं जलवायु आदि कारणों को मद्देनजर रखते हुए वानिकी कार्यक्रमों की सफलता सीमित रह जाती है। ऐसी परिस्थितियों में अकेसिया अलबिडा मरू क्षेत्र को हरा भरा बनाने एवं क्षेत्र की आर्थिक स्थिति बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकता है। वर्ष 1977 में वन जीन संसाधनों पर विश्व कृषि संगठन के 14वें सत्र में शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों की 41 प्रजातियों को ईंधन की लकड़ी एवं अन्य महत्व के लिए चिन्हित किया गया था। इन 41 प्रजातियों में से 14 प्रजातियों को कृषि पर्यावरण एवं ग्रामीण जीवन में सुधार के लिए सर्वाधिक उपयोगी माना गया था। (विश्व खाद्य संगठन, 1977, पेलमबर्ग, 1981) इनमें से अकेसिया अलबिड़ा के द्वारा आर्थिक उन्नति एवं हरियाली प्राप्त करने की प्रचुर संभावनाएं हैं (राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी 1975, अकेसिया अलबिडा की तेज वृद्धि दर, सीधा तना एवं चारे के रूप में उपयोगिता के साथ–साथ शुष्क क्षेत्रों में कृषि वानिकी एवं फार्म फोरेस्ट्री में इसकी उपयोगिता इसे अन्य पादपों से अलग बनाती है।

प्राकृतिक वितरण–अकेसिया अलबिड़ा इथोपिया एवं दक्षिणवर्ती अफ्रीका के शुष्क सावना तथा नदी घाटी क्षेत्रों में ट्रान्सवेल तथा लेसाथो क्षेत्रों तक मिलता है। यह सेनेगल से सूडान तक तथा पूर्वी अफ्रीका में नदी किनारे और दक्षिण एवं उत्तरी ट्रान्सवेल तथा बोत्सवाना तक मिलता है। अकेसिया अलबिड़ा नामीबिया तथा अंगोला के समुद्र तटीय क्षेत्रों में भी होता है। इसकी अधिक संख्या सूडान के जेवेल–मारा जल निकासी क्षेत्रों में रेतीली जलोढ़ मिट्टी में पाई जाती है। इन क्षेत्रों में मीलों दूरी तक इसके पौधे पाए जाते हैं। अफ्रीका के बाहर यह इजराईल, लेबनॉन, जार्डन तथा यमन में पाया जाता है (विकेन्स 1969)। इसे साइप्रस तथा पाकिस्तान में भी लगाया गया है। भारत में भी इसका परीक्षण किया गया है (ब्रेनेन 1983)।

दक्षिण एवं पूर्वी अफ्रीका में यह रिपोरपेन समुदायों में पाया जाता है जबकि पश्चिमी अफ्रीका में यह नदी किनारे उगता है। इसका वितरण पैटर्न भी भिन्न–भिन्न होता है। कभी–कभी यह अकेले बढ़ता है जबकि कभी–कभी समूह में बढ़ता है जहाँ इसकी ऊपरी शाखाएं कैनोपी (चंद्रवा) बनाती है। उगांडा में 1800 मीटर ऊंचाई तक, सूडान में 2300–2500 मीटर ऊंचाई तक पाया जाता है जबकि सामान्यतः यह 1800 मीटर से कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। इसकी ऊंचाई 30 मीटर एवं व्यास 1.5 मीटर तक हो सकता है।

अकेसिया अलबिडा के बीजों को 1975 में मलावी एवं केन्या से मंगाया गया था। इसके सबसे पुराने वन क्षेत्र जबलपुर में हैं। हरियाणा के झुम्पा गांव में भी इसे परीक्षित किया गया था।

जलवायु–अफ्रीका में यह लम्बे समय तक चलने वाले सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पाया जाता है। इसकी उचित वृद्धि के लिए गहरी रेतीली मिट्टी की आदर्श स्थितियां एवं 650 मि.मी. वार्षिक वर्षा की आवश्यकता होती है। यदि जड़ों को गहरी मिट्टी में पर्याप्त नमी मिलती रहे तो यह 300 मि.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में भी उग सकता है।

यह वृक्ष विभिन्न प्रकार की मृदाओं (जलोढ़, रेतीली, लाल भूरे रंग की क्ले, टिब्बा क्षेत्रों) में पाया जाता है यद्यपि यह नमी परिस्थितियों में अच्छा होता है।

शुष्क मौसम के दौरान चराई वाले जानवरों के गोबर, कूड़े के क्षय एवं उत्सर्जन से मिट्टी समृद्ध हो जाती है तथा परिणामस्वरूप इसकी वृद्धि अच्छी होती है तथा पैदावर में भी वृद्धि होती है।

वर्गीकरण–अकेसिया अलबिडा एक अलग एवं व्यवस्थित रूप से पृथक प्रजाति है। इसकी वर्गिकी पर कई वैज्ञानिकों ने शोध कार्य किया है (रोस 1966, विकेन्स 1969, नोनगोनिएरमा, 1978 एवं ब्रेनोन (1959, 1983) ब्रेनोन (1958) के अनुसार अकेसिया अलबिडा की उपजातियां हैं जो पत्तियों के आकार एवं अन्य के आधार पर पृथक की जा सकती हैं। नोन गोनिएरमा (1978) के अनुसार इनकी प्रजातियों के मध्य कई अन्तर्जातीय प्रजातियां हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अकेसिया अलबिडा में महत्वपूर्ण अंतर भिन्नता है तथा इसमें आनुवांशिकी सुधार की काफी संभावनाएं है।

नर्सरी तकनीक–इसके ताजे बीजों में मुलायम बीज कोट होता है तथा इसके लिए किसी प्रकार के बीजोपचार की जरूरत नहीं होती है। इसके बीजों को बुआई से पहले 24 घंटे तक पानी में भिगोकर रखना उपयुक्त रहता है। आमतौर पर इसके वृक्षों में प्रचुर मात्रा में बीजोत्पादन होता है। (लेमेत्रे 1954, विकेन 1969, एवं पेबमर तथा पिटमैन 1961) यद्यपि इसका प्राकृतिक पुनर्जनन, सीमित बीज प्रजनन एवं उच्च बीजीय अंकुरण मृत्युदर के कारण सीमित रहता है। वानस्पतिक पुनर्जनन अक्सर प्रकृति में सफलतापूर्वक होता है तथा रूट सकर्स मातृ पादप से 20–25 मीटर तक पनप सकते हैं। इसके प्राकृतिक रूप से उपलब्ध वृक्षों में व्यवहार्य बीज कम होते हैं अतः वानस्पतिक प्रजनन द्वारा पौधे तैयार किए जाते हैं। सेनेगेल, चाड एवं नाइजीरिया में इसके 100 हेक्टेयर क्षेत्र में कृत्रिम वृक्षारोपण पाए गए हैं। रोपण के बाद पहले कुछ वर्षों तक इसकी वृद्धि धीमी रहती है जबकि पौधों में गहरी जड़ें विकसित होती हैं। ये पौधे अन्य पौधों की अपेक्षा तेजी से बढ़ते हैं। (पाल्ग्रेव 1981)

उपयोगिता–अकेसिया अलबिड़ा से मिट्टी के भौतिक, रासायनिक एवं सूक्ष्मजीवों संबंधी लाभकारी प्रभावों की जानकारी मिली है (डुगन 1960, डांसेट और पोऊलेन 1969, राजवेसकी एवं विकेन्स 1969, चेरोऊ एवं विडाल 1965 तथा जंग 1966)

एक अध्ययन के अनुसार अकेसिया अलबिड़ा के साथ अन्तवर्ती फसल के रूप में उगाने पर अनाज

उत्पादन में 430 किग्रा/हेक्टेयर (सरलिन 1963) से 1000 किग्रा/हेक्टेयर (डांसेटो एवं पोऊलिन 1968) तक बढ़ सकता है। इसी प्रकार बाजरा उत्पादन में 480 किग्रा/हेक्टेयर की वृद्धि (डांसेटो एवं पोऊलिन 1968) तथा मूंगफली के उत्पादन में 300 किग्रा/हेक्टेयर की वृद्धि इनको अकेसिया अलबिडा के साथ अन्तवर्ती फसल के रूप में उगाने पर पाई गई (आई आर एच. ओ., 1966)

इसकी पत्तियां, छोटी शाखाएँ एवं फली उत्कृष्ट चारे के रूप में प्रयुक्त की जाती हैं तथा भेड, बकरी, ऊँट, घोड़ों आदि जानवरों द्वारा खाई जाती हैं। (एन.ए. एस., 1979), उत्तरी सवाना में आदिवासी चरवाहे, शाखाओं की कटाई कर जानवरों हेतु चारे का प्रबंध करते हैं। (विकेन्स 1969)

पादप संरक्षण–कुछ अध्ययन के अनुसार इसमें कीटों का प्रकोप भी होता है। (ब्रंक 1972 एवं 1974) इस हेतु रासायनिक कीट नियंत्रण अथवा कीटों के आनुवांशिक प्रतिरोध स्रोत की पहचान की गई है।

सारांश–अकेसिया अलबिडा फसलों की उपज, जैविक पदार्थ तथा मिट्टी में नाइट्रोजन की वृद्धि करता है। शुष्क क्षेत्रों में सूक्ष्मजीवी गतिविधियों, मिट्टी की जलग्रहण क्षमता आदि के संबंध में इस प्रजाति पर अध्ययन नहीं किया गया है। आज की आवश्यकता है कि इस प्रजाति के सम्पूर्ण उपयोगों का दोहन किया जाए तथा इसके बारे में लोगों को जागरूक किया जाए।

*****

काफल : एक अद्भुत जंगली फल

रण सिंह, शिवांगी ठाकुर एवं संदीप शर्मा
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला (हि०प्र०)

परिचय :

काफल मध्य हिमालय क्षेत्र का बेहद फ़ायदेमंद फलदार वृक्ष है। यह उत्तरी भारत और नेपाल के पर्वतीय क्षेत्र मुख्यतः हिमालय के तलहटी क्षेत्रों में पाया जाने वाला एक वृक्ष है। आज लोगों का जंगली खाद्य फलों की ओर लगातार ध्यान बढ़ रहा है। जंगली खाद्य फलों को पोषण और स्वास्थ्य लाभों के संभावित स्रोत के रूप में माना जाता है। जंगली खाद्य फल दुनिया भर में वाणिज्यिक फलों की तुलना में अधिक किफायती हैं। इसका फल जब कच्चा होता है, तो उसका रंग हरा होता है तथा खाने में खट्टा और कड़वा होता है। इसके फलों का रंग पकने पर लाल, बैंगनी, मीठा और हल्का खट्टा होता है। प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में इसका आवास चीड़, बान, देवदार, कायल, लाल–बुरांश, खिरक आदि के साथ पाया जाता है। इसके फलों की बाज़ार में भारी मांग है। अत्यधिक दोहन और अवैज्ञानिक ढंग से फलों को तोड़ने के कारण इस वृक्ष की आबादी जंगलों से विलुप्त होने की कगार पर है।

वानस्पतिक एवं अन्य नाम :

काफल का वानस्पतिक नाम (Myrica esculenta) मायरिका एस्कूलेंटा है तथा यह मयरिकेसी कुल से संबंध रखता है। अंग्रेजी भाषा में इसे बौक्स मिर्टल के नाम से जाना जाता है। भारत के विभिन प्रान्तों में काफल को भिन्न–भिन्न नामों से जाना जाता है, जैसे संस्कृत में कटफल व रामपत्री, हिन्दी में कायफल व काफल, गुजराती में कारीफल, तमिल में मरुदम, बंगाली में कायफल, पंजाबी में कहेला, नेपाली में कोबुसी और अरबी में औदुल नाम से जाना जाता है।

काफल का प्राकृतिक आवास :

काफल के पेड़ 1200 मीटर से 2000 मीटर की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से शीतोष्ण वनों में पाए जाते हैं। विश्व में काफल मलेशिया, म्यांमार, सिंगापुर, जापान, भारत, नेपाल, चीन और पाकिस्तान में पाए जाते हैं। भारत में यह वृक्ष जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, नगालैंड, मणिपुर और असम आदि राज्यों में पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश में यह वृक्ष शिमला, सोलन, मंडी, चंबा, सिरमौर, कुल्लू और कांगड़ा जिलों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता हें।

फूल, फल एवं बीज एकत्रण समय :

काफल के वृक्षों पर मार्च के महीने में फूल आने शुरू होते हैं। काफल के फूलों का रंग हल्का हरा एवं हल्का लाल होता है। काफल के अप्रैल माह में फल निकल जाते हैं। मई–जून माह में इसके फल पक कर तैयार हो जाते हैं। फल का रंग पकने पर लाल और बैंगनी हो जाता है। मई–जून के महीने में ही काफल के फलों को एकत्र किया जाता है।

आर्थिकी एवं सामाजिक महत्व :

काफल से ग्रामीण लोगों की आर्थिकी में सुधार की अपार संभावनाएं हैं। ग्रामीण लोग जंगलों से काफल के फलों को एकत्र करते हैं। लोग काफल के फलों को स्थानीय बाजारों में 200 से 300 रुपये प्रति किलो के हिसाब से बेचते हैं, जिससे लोंगों की आर्थिकी में बहुत सहायता मिलती है। ग्रामीण लोग काफल की लकड़ी को ईंधन और पत्तों को चारे के लिए भी उपयोग मे लाते हैं। काफल के पेड़ में बहुत घनी पत्तियाँ होती हैं। गर्मी के मौसम में स्थानीय निवासी एवं वन्य प्राणी इसकी छाया का खूब आनंद लेते हैं। जंगली जानवर तथा पक्षी इसके फलों को बड़े चाव से खाते हैं। काफल के फलों को जानवरों एवं पक्षियों द्वारा बहुतायात में खाने से पके फल जमीन

पर बहुत कम गिरते हैं जिससे इसका जंगलों में प्राकृतिक अंकुरण ना के बराबर होता है। गाँव के कुछ वैद्य काफल की पत्तियों और छाल को एकत्र करते हैं और आयुर्वेदिक इलाज के लिए इसकी छाल और पत्तियों का चूर्ण बनाकर विशेष बीमारियों के इस्तेमाल में लाते हैं।

पारंपरिक आयुर्वेदिक उपयोग :

हिमाचल प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली आबादी का एक बड़ा हिस्सा पुरानी खांसी, अस्थमा, अल्सर और सिरदर्द को ठीक करने के लिए काफल के तने की छाल का पाउडर बनाकर उपयोग करते हैं। ग्रामीण क्षेत्र के स्थानीय लोग छाल के काढ़े का उपयोग माउथ फ्रेशनर के रूप में और दांत दर्द को ठीक करने एवं घावों को धोने के लिए करते हैं। वृक्ष की छाल का काड़ा बनाकर गरारे करने पर गलघण्ड या घेंगा तथा गले के संक्रमण में आराम मिलता है। इसके वृक्ष की छाल का लेप घाव, जोड़ों के दर्द पर लगाने से खास आराम मिलता है। इसके काढ़े का उपयोग सर्दी–जुखाम, बुखार और सिरदर्द जैसी बीमारियों के लिये बहुत ही लाभदायक है। काफल के फलों का उपयोग विभिन्न मानसिक बीमारियों के उपचार में भी किया जाता है। फलों का ताज़ा पेय तैयार करके दस्त आदि बीमारियों के उपचार में उपयोग किया जाता है। फलों का ताज़ा रस आँख संबंधी बीमारियों जैसे समान्य आँख दर्द, रतौंधी और आँख लाल होना आदि बीमारियों के उपचार में भी किया जाता है। काफल की पत्तियों का चूर्ण नाक एवं कान आदि समस्याओं में भी बहुत लाभकारी है। काफल की पतियों का पेस्ट बनाकर घी के साथ शरीर में मस्सों के ऊपर लगाने से मस्से नष्ट हो जाते हैं। काफल के फलों में एंटी–ऑक्सीडेंट तत्व पाये जाते हैं तथा यह पेट संबन्धित रोगों को खत्म करने में उपयोगी है। काफल के पत्तों को खाने से किडनी स्टोन से मुक्ति और भूख बढ़ाने में मदद मिलती है। काफल के पत्तों से बना बाम का पेस्ट मस्तिष्क पर लगाने से मानसिक रोग दूर हो जाते हैं। इस फल से निकलने वाला रस शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। काफल के फलों को लगातार खाने से कैंसर जैसी बीमारियों का खतरा कम होता है। काफल के फलों का चूर्ण बनाकर पानी में नमक मिलाकर पीने से पेट की गैस आदि बीमारियों में तुरंत आराम मिलता है। काफल हमारी पाचन शक्ति को मजबूत करने में काफी असरदार है। गर्मी के मौसम में काफल फल हमारे शरीर को ठंडक प्रदान करता है।

बीज की बुआई एवं पौधशाला तैयार करना :

काफल का बीज मई के अंतिम सप्ताह और जून महीने के पहले सप्ताह तक एकत्र किया जाता है। बीजाई के लिए बीज की अच्छी गुणवत्ता का होना बहुत आवश्यक है। बीज को बुआई से पहले कुछ समय पानी में डालकर प्रसंस्करण विधि द्वारा बीज की जांच करनी चाहिए। काफल बीज को अच्छी तरह सुखाने पर या ताजा फलों की बीजाई भी कर सकते हैं। काफल के बीजों की विजाई जुलाई–अगस्त एवं फरवरी मास में की जाती है। इसकी बीजाई रेत, मिट्टी, गोबर एवं जंगली खाद का मिश्रण बनाकर करनी चाहिए। बीजों में अधिक एवं अच्छी अंकुरणता लाने के लिए बीज़ों को गाय के ताजे गोबर में कम से कम तीस से पैंतालीस दिनों तक प्रशोधन के लिए रखा जाना चाहिए। बीजों को पानी में एक सप्ताह तक रखने पर एक सप्ताह छाया में सुखा लेना चाहिए। यही प्रक्रिया 3–4 बार करने के पश्चात रेत की क्यारियों में बुआई करनी चाहिए। बीजों को उचित गहराई पर बोना बहुत आवश्यक है। बीजों का अंकुरण पोली हाउस में अप्रैल एवं सितम्बर माह में हो जाता है। अच्छे बीजों की अंकुरणता 60–80 प्रतिशत रहती है।

संरक्षण एवं उपाय :

काफल प्रजाति के कम होने का वर्तमान कारण इसका अत्यधिक उपयोग, आवास विखंडन, अतिशोषण, मानवजाति द्वारा पौधों का अवैज्ञानिक दोहन, जंगली

जानवरों की संख्या बढ़ने से और आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण प्रजातियाँ विलुप्त होना। ग्लोबल वार्मिंग के बढ़ने से भी बहुत प्रभाव पड़ रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण विशेष रूप से काफल के फूल की अवधि एवं फलों के पकने व झड़ने में बदलाव आ रहा है। काफल की तकनीकी को तेजी से बढ़ाना और प्रजाति की स्थापना के लिए एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की बहुत आवश्यकता है। हमें वैज्ञानिक दृष्टि से पौधशाला तकनीक का विकास और स्थापना, प्राकृतिक पुनर्जनन का संरक्षण और सतत उपयोग करने की जरूरत है। हमें जैविक संसाधन के संरक्षण और प्रबंधन की आवश्यकता है। हमें वन विभाग, गैर–सरकारी संगठनों और अन्य हितधारकों से स्थायी फसल के बारे में स्थानीय लोगों के बीच जागरूकता पैदा करने की तत्काल आवश्यकता है। वैज्ञानिक जानकारी ही भविष्य में स्थानीय समुदायों की समृद्धि के लिए लाभदायक सिद्ध होगी।

काफल पेड़, फल, बीज एवं जंगलों के फोटो

जंगल में काफल पेड़

काफल के फल से लदा वृक्ष

काफल का फल शुरुआती समय में

काफल के वृक्ष पर कच्चे फल

एकत्रित किये हुए काफल के फल

काफल के बीज

***

उत्तर बस्तर की अमूल्य वन विरासत : एक परिदृश्य

दिग्विजय सिंह राठौड, सौरभ दुबे,
डॉ. ननीता बेरी, कौशल त्रिपाठी
एवं **डॉ. दर्शन के. यू.**
उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर (म.प्र.)

छत्तीसगढ़ राज्य के दक्षिणी क्षेत्र में स्थित काँकेर जिला, जिसे उत्तर बस्तर काँकेर के नाम से जाना जाता है। मूलतः यह बस्तर का ही उत्तरी भाग है, जिसे जिले के रुप में सात तहसीलों को जोड़कर बनाया गया है। बस्तर, राज्य के कुछ उन भागों में से एक हैं, जो अपनी विशिष्ट आदिवासी संस्कृति के साथ ही साथ अपनी सीमाओं के भीतर घने वनों को संजोए हुए है। बहुत हद तक इसके अनछुये वन्य क्षेत्र अनेक प्रकार के दुर्लभ पेड़–पौधों तथा विलुप्त होती वनस्पतियों को आज भी बचाकर रखे हुये हैं। विभिन्न आदिवासी समुदाय जैसे गोंड, हल्बा आदि, जिनका इन वनों के साथ गहरा संबंध है, वे अपनी दैनिक जरुरतों को पूरा करने के लिये इन पर ही आश्रित हैं। ये वन यहाँ की कला, संस्कृति एवं जीवन यापन के तौर–तरीकों पर व्यापक असर डालते हैं। यहाँ की उष्णकटिबंधीय जलवायु तथा कई प्रकार की मृदा संरचनायें न केवल विभिन्न प्रकार की फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहित करती हैं, वरन् वनों को बढ़ने का मौका भी प्रदान करती हैं।

यहाँ बहने वाली नदियों में, प्रमुख महानदी तथा अन्य छोटी नदियों में दूध नदी, हटकुल नदी, सोंदूर नदी इत्यादि, अपनी अनेक छोटी–बड़ी जलधाराओं के साथ, शहरी व ग्रामीण इलाकों के अलावा वन्य क्षेत्रों से भी बहती हुई उनका पोषण करती हैं। यहाँ के पठारी व पहाड़ी क्षेत्र वनों से आच्छादित हैं साथ ही साथ खनिज सम्पदाओं से युक्त हैं।

उत्तर बस्तर के भानुप्रताप पुर तथा आमाबेडा वन परिक्षेत्रों में साल के विरल तथा घने वन पाये जाते हैं तथा अन्य भागों में कहीं–कहीं सागौन मिश्रित वन मौजूद हैं। जिले के ज्यादातर भागों में मिश्रित वनों की उपस्थिति देखी जा सकती है, जिनमें मुख्यतः साजा, बीजा, कर्रा, भिलवा, सलई, तेंदु, धवा, हर्रा, बहेड़ा, महुआ तथा कुसुम आदि वृक्ष पाये जाते हैं।

महानदी का दृश्य

स्थानीय लोगों द्वारा काफी मात्रा में अकाष्ट वन उत्पाद इन वनों से लिया जाता है, जिनमें कुसुम बीज, इमली, साल बीज, चिरोंजी गुठली, महुआ फूल व गुल्ली प्रमुख रुप से एकत्र किये जाते हैं। इसके अलावा कुसमी तथा रंगीनी लाख, एवं कहीं–कहीं स्वयं व आजीविका हेतु साजा गोंद आदि भी आदिवासियों द्वारा संग्रहीत किया जाता है। तेंदु पत्ता का संग्रहण वन क्षेत्रों के अलावा राजस्व भूमि में स्थापित छोटे आकार के तेंदु के पौधों की नियत समय में छटाई करके तथा बाद में आने वाली नयी पत्तियों के रुप में किया जाता है। ज्यादातर मिश्रित वनों के खुले हुए भागों तथा सड़कों के किनारे पर मिलने वाले चिरोंटा बीज का भी बड़ी मात्रा में एकत्रीकरण किया जाता है। हर्रा तथा बहेड़ा इन वनों के सबसे प्रमुख वनोत्पाद हैं। इनके फल, अक्टूबर–नवम्बर माह से लेकर जनवरी–फरवरी माह तक एकत्र किए जाते हैं। महिलायें तथा बच्चे सभी मिलकर इस वन्य फसल का फायदा लेने के लिए सुबह से शाम तक वनों के बाहरी किनारों पर इनको इकट्ठा करते हुए मिल जाते हैं। एकत्र किए गए फलों को 10 से 12 रुपये प्रति किलो के भाव से स्थानीय स्तर पर ही बिचौलिये इनसे खरीद लेते हैं। जंगल से मिलने वाले महुआ फूलों को या तो बेच दिया जाता है या उसका मधुरस लोगों द्वारा स्वयं उपयोग के लिए घर पर ही बनाया जाता है। साप्ताहिक ग्रामीण बाजार हो या स्थानीय स्तर पर लगने वाले मेले, ये इन वनोत्पाद को खरीदने–बेचने के लिए एक केन्द्र के रुप में भी काम करते हैं।

चिरोंटा पौधा

महुआ फूल

आदिवासी महिलाओं द्वारा हर्रा का संग्रह

जलाऊ लकड़ी का संग्रह

अंतागढ़, दुर्गूकोंदल व आमाबेडा आदि वन परिक्षेत्रों में अत्यन्त दुर्लभ वृक्ष जिनमें, करमल या सुवारुख (डिलिनिया पेंटाग्याना), गरुड (रैडरमैकेरा जाइलोकार्पा) तथा पाटला (स्टीरियोस्पर्मम सुएवोलेंस) जैसे वृक्ष देखने को मिलते हैं। कांकेर, कोरर तथा नरहरपुर वन परिक्षेत्रों में साजा तथा बीजासाल के विशाल वृक्ष अपनी उपस्थिति दर्शाते प्रतीत होते हैं। इनके बीजो का अंकुरण भी सबसे अधिक मात्रा में यहाँ दिखाई देता है। अन्य वृक्षों में लेंडिया, धवा, धोबन, सलई तथा महुआ अदि भी मौजूद हैं तथा साथ ही साथ दुधी (राइटिया टिंकटोरिया) के मध्यम

करमल

गरुड वृक्ष

तेंदू का पुनर्जनन

आकार के झाड़ीनुमा पौधों से जंगल के खुले हुये भाग आच्छादित हैं।

ये वन अनेक प्रकार के औषधीय लताओं, झाड़ियों व शाकीय वनस्पतियों से युक्त हैं। जहाँ तेजराज (प्यूसेडेनम नागपुरेंस), दुर्गूकोंदल वन क्षेत्र में केओकंद (कोस्टस स्पेशियस), काली मूसली (कर्कुलिगो ऑर्कियोइड्स) सरोंना वन क्षेत्र जैसे सीमित इलाकों में रामदातुन (स्मिलैक्स परफोलिएटा), सतावर (एसपैरागस रेसमोसस) जंगली हल्दी, (कुरकुमा एसपीपी.), हरसिंगार (निक्टेन्थिस आर्बोर्ट्रिस्टिस) आदि महत्वपूर्ण वनोपज मिलते हैं। जलीय स्थानों में वन सिंघाडा (ओटेलिया एलिसमोइड्स) पाये जाते हैं। उत्तर बस्तर के ज्यादातर पहाड़ी वन क्षेत्रों में मकोर (ज़िज़िफस ओएनोप्लिया), गुडसकरी (ग्रेविया हिरसुते) आदि वनस्पतियाँ अधिक मात्रा में मिलती हैं। इन पर लगने वाले बेर, भालू की सबसे पसंदीदा खाद्य पदार्थों में से एक हैं। चारमा एवं काँकेर ऐसे ही वन क्षेत्र हैं, जिनमें भालू की अच्छी आबादी की मौजूदगी दर्ज की जाती है।

यहाँ के वनों की विविधता अन्य क्षेत्रों से प्रवास पर आने वाले हाथियों के झुंडों को भी बहुत भाने लगी हैं तथा समय–समय पर उनके द्वारा वन क्षेत्रों तथा आस–पास के जल स्रोतों के निकट अपना डेरा डालने की जानकारी मिलती रहती है।

भालू के रहने के लिए अनुकूल स्थान

छत्तीसगढ़ वन विभाग द्वारा वन प्राणियों के लिए बनाया गया कृत्रिम जलकुंड

हाथी का पदचिह्न

खुले हुए वन क्षेत्रों में कुसल घास की बहुतायत है। यह घास बीजों के आने से पहले जानवरों की चराई के लिये उपयुक्त होती है परंतु इसमें लगने वाले लम्बे–काले, नुकीले बीजों के बाद यह जानवरों के चारे के रुप में अनुप्रयुक्त हो जाती हैं। आदिवासी महिलायें इसका संग्रहण सफाई के काम आने वाली झाड़ू बनाने के लिए करती हैं।

वन क्षेत्र की स्थानीय महिलाओं द्वारा झाड़ू घास की छड़ी का संग्रहण

हरे–भरे वनों से आच्छादित यह उत्तर बस्तर काँकेर, अपनी इसी सम्पदा के लिए जाना जाता है, परंतु आज के बदलते हुए भौतिकवादी मानव समाज का दवाब भी इन वनों पर साफ दिखाई देने लगा है। चाहे वह वन्य सम्पदा की चोरी हो या विनाशपूर्ण उनका विदोहन, ये सभी कारण कहीं न कहीं इन वनों के अस्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहें हैं। वन्य फसलों के एकत्रीकरण के समय लगायी जाने वाली आग हो या, फलों के पकने से पहले सभी कच्चे–पक्के फलों को डालियों सहित तोड़ लेना, पेड़ों की छाल निकालकर उन्हे सूखने की कगार पर ले आना या कंदीय वनस्पतियों के सभी कंदों को एक साथ ऊखाड़ लेना उक्त सभी कारण इनके जैसे सभी वन्य इलाकों के अस्तित्व पर विपरीत असर डाल रहे हैं। वनोपज के एकत्रीकरण एवं वास्तविक अवमूल्यन हेतु एक निश्चित वैज्ञानिक विधियों के विकास पर जोर देने की आवश्यकता है। जिससे इस वन सम्पदा एवं इसके प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग किया जा सके और साथ ही साथ इसका लाभ आने वाली पीढ़ियों को भी प्राप्त हो सके। अतः हमें इन्हें केवल वन न समझकर अपने भविष्य के रूप में भी देखना चाहिए तथा यथासंभव इनका संवर्धन व संरक्षण करना चाहिए।

***

कैसे करें सामान्य जन–जीवन में "पुनर्चक्रण एवं पुनः उपयोग" की अनुपालना

– मयंक निम्बार्क,
के.प्र.नि.बो.,पश्चिम निदेशालय, वडोदरा

प्रस्तावना : पुनः उपयोग (रीयूज) अपशिष्ट पदार्थों के निष्कासन से पूर्व उनके उपयोग की धारणा पर केंद्रित है, अतः रीयूज, उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा को जहां कम करता है वहीं पुनर्चक्रण (रीसाइक्लिंग) वह प्रक्रिया है जहां पर निष्कासित और पुराने पदार्थों को पुनः नए उत्पाद के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है। अतः रीसाइक्लिंग, अपशिष्ट पदार्थों के उत्पन्न होने के बाद इसे पर्यावरण एवं व्यापारिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण बनाने के विचार पर केंद्रित है। पर्यावरण संरक्षण के दो महत्वपूर्ण आयाम–पुनर्चक्रण एवं पुनः उपयोग को किस प्रकार से हम अपने पारिवारिक स्तर पर, नगरीय स्तर पर, औद्योगिक स्तर पर और कृषि आदि स्तरों पर इन दोनों को प्रयोग करने में कैसे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, उन्हें निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से स्पष्ट करना चाहता हूँ :–

1) पारिवारिक स्तर पर पुनर्चक्रण (रीसाइक्लिंग) और पुनः उपयोग (रीयूज) में योगदान : समस्त गृहस्थ महिलाएं, जन सामान्य और विद्यार्थी, पर्यावरण संरक्षण के दोनों आयामों, रीसाइक्लिंग और रीयूज के प्रयोग में निम्नलिखित प्रकार से महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर अपना प्रभावपूर्ण योगदान दे सकते हैं :–

- घर से प्रतिदिन निकलने वाले जैव विघटनीय खाद्य पदार्थ के अपशिष्टों जैसे फल, सब्जियों, बचे हुए भोजन को अगर संभव हो तो मवेशियों को खिला सकते हैं या फिर घर के बाहर बने हुए बगीचे में जैविक खाद के रूप में प्रयोग कर सकते हैं।
- यह भी संभव न हो तो उन्हें जैव–अविघटनीय विभिन्न प्रकार के प्लास्टिक अपशिष्ट पदार्थों से पृथक रूप में एकत्रित कर कचरा गाड़ियों तक पहुंचाया जाए। अतः इस प्रकार से "नगरपालिका ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के प्रथम चरण पृथक्करण को पूर्ण करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।
- अपने बच्चों के पुराने खिलौनों को कचरे में डालने की बजाय अन्य जरूरतमंद बच्चों को देकर उस अतिरिक्त कचरे की मात्रा को कम कर सकते हैं।
- घर में उत्पन्न होने वाले अधिकांश अपशिष्ट का पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग किया जा सकता है। घरों में खाद्य सामग्री के साथ आने वाले कंटेनर अक्सर सामग्री उपभोग के बाद उपयोग किए जाते हैं। अगर किसी कारण से यह कंटेनर पुराना हो जाता है और खराब हो जाता है तो उन्हें अलग से एकत्रित करके कबाड़ी वाले को दिया जाना चाहिए ताकि उसका पुनर्नवीकरण किया जा सके। पुराने अखबार, पत्रिकाएं और बोतलें कबाड़ी वाले को बेची जा सकती हैं।
- पुराने कैलेंडर के चमकीले ग्लासी पेपर्स/ समाचार पत्र का उपयोग अपनी अलमारी के ऊपर बिछाने वाले आवरण के रूप में कर सकते हैं, जो काफी आकर्षक भी होते हैं।
- हमारे वे कपड़े जो हमने, कटने–फटने और साइज में बदलाव की वजह से पहनने छोड़ दिए हैं उन्हें हमें जरूरतमंद निर्धन परिवारों को

दान कर देना चाहिए। यदि कपड़े पहनने योग्य नहीं हैं तो घर की महिलाएं इनका इस्तेमाल गद्दे, तकिया, थैला आदि जैसे उपयोगी सामान बनाने में कर सकती हैं।

- साथ ही, अगर एक बार उपयोग के बाद निष्कासित की जाने वाली (यूज एंड थ्रो) वस्तुओं की बजाय बार–बार उपयोग की जाने वाली वस्तुएं उपलब्ध हों तो उनकी खरीदारी को प्राथमिकता देनी चाहिए।
- विद्यालय – महाविद्यालय के छात्र अपने पाठ्यक्रम की किताबें अपने अध्ययन के उपरांत अपने कनिष्ठ साथियों या निर्धन विद्यार्थियों को देकर, 'वनों के उन्मूलन' को रोकने आदि में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।
- सरकारी कार्यालयों में दस्तावेजों को दोनों तरफ प्रिंट करने की आदत डाली जाए ताकि अनावश्यक रूप से नए कागजों की बर्बादी को रोका जा सके।
- घरों में रखे हुए लकड़ी के टूटे हुए फर्नीचर, खराब हुए इलेक्ट्रिकल और इलेक्ट्रॉनिक डिवाइसेज जिन्हें हम निष्कासित करना चाहते हैं या नया खरीदना चाहते हैं तो उन पुराने उपकरणों, सामानों तथा फर्नीचर को हमें उनके संबंधित रिपेयरिंग सेंटर पर दे देना चाहिए ताकि वह रीसाइकल अथवा रिपेयर होकर फिर से उपयोगी बन सके।

2) **कृषि अपशिष्ट की रीसाइक्लिंग एवं रीयूजः** खेतों से बचा हुआ भूसा, छोटे पौधों की शाखाएं, पौधों की पत्तियों आदि पर जब पानी गिरता है तो ये सड़ने लगते हैं और इन पर विभिन्न सूक्ष्म जीवों की क्रिया प्रदूषण का कारण बनती है। इनको रोकने के लिए किसानों को मिश्रित कृषि यानी कृषि के साथ–साथ पशुपालन भी करना चाहिए। कृषि अपशिष्ट जैसे– पौधों की पत्तियां, टहनियां आदि पशुओं के द्वारा खाद्य पदार्थ के रूप में प्रयुक्त कर कृषि अपशिष्टों का "रीयूज" किया जा सकता है। इससे अधिकांश हरित कृषि अपशिष्ट, पशुओं के द्वारा खाद्य पदार्थों में प्रयुक्त होने से कम हो जाएंगे। कुछ पदार्थों जैसे चारा, धान एवं गेहूं कटने के पश्चात बचे हुए डंठल की थ्रेशिंग से निकले हुए भूसे को सुखाकर पशुओं के लिए संचित खाद्य–पदार्थ के रूप में भी रखा जा सकता है। खेत के किसी कोने में बायोगैस संयंत्र की स्थापना कर पशुओं द्वारा जनित अपशिष्ट एवं बचे हुए कृषि अपशिष्ट का उपयोग कर जैविक खाद एवं ईंधन का निर्माण किया जा सकता है।

3) **औद्योगिक अपशिष्ट की रीसाइक्लिंग एवं रीयूज** : उद्योगों से निकलने वाले अधिकांश अपशिष्ट बड़े पैमाने पर वातावरण, हवा, भूमि एवं जल को प्रदूषित करते हैं। सभी कारखाने एवं औद्योगिक इकाइयॉं यह कोशिश करें कि उनके द्वारा जिन अपशिष्ट पदार्थों को उत्पन्न किया गया है उनको जितना हो सके उतना वापस अपने उपयोग में ले सकें। किंतु तकनीकी कमियों के कारण यदि ऐसा नहीं कर पाते हैं तो इन्हें एकत्र करके अपने निकट किसी इंडस्ट्री तक पहुंचा सकते हैं जो इनका पुनर्चक्रण और पुनःउपयोग करने में सक्षम हैं। एक सामान्य उदाहरण के तौर पर नए कागज का निर्माण वृक्ष की लकड़ी की लुगदी से होता है। इनके एक बार उपयोग के पश्चात, निष्कासित बेकार कागज को पुनर्चक्रण करके उससे हल्की गुणवत्ता वाला पेपर बनाया जाना संभव है। कई पेपर इंडस्ट्रीज, पेपर साइकिलिंग प्रोसेस द्वारा पर्यावरण संरक्षण एवं वनों की कटाई को रोकने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

थर्मल पावर प्लांट से निकलने वाली "फ्लाई ऐश" में सिलीकेट पार्टिकल, कार्बन पार्टिकल होते हैं जो एक बड़े पैमाने पर वायु प्रदूषण का कारण हो सकते हैं। सभी थर्मल पावर प्लांट के लिए "फ्लाई ऐश" के उत्सर्जन को नियंत्रित करने के लिए, विभिन्न पर्यावरण एजेंसियों द्वारा कई सुझाव एवं दिशा–निर्देश तय किए गए हैं। उनके अनुसार कुछ "एयर पॉल्यूशन कंट्रोल डिवाइसेज" का प्रयोग करके फ्लाई ऐश को हवा में जाने से रोका जा सकता है। थर्मल पावर प्लांट में कोयले के दहन से उत्पन्न इस फ्लाई ऐश को एकत्रित करने के उपरांत पहले लैंडफिल साइट पर पहुंचाया जाता था। कुछ औद्योगिक इकाइयॉ जैसे सिरामिक्स इंडस्ट्री, ब्रिक्स इंडस्ट्री एवं कॉंक्रीट एवं सीमेंट बनाने वाली इंडस्ट्री द्वारा इसे कच्चे माल के तौर पर उपयोग किया जा सकता है। वर्तमान में, भारत में उत्पन्न कुल फ्लाई ऐश का लगभग 43 प्रतिशत पुनर्चक्रित किया जा रहा है।

4) **नगरीय स्तर पर म्युनिसिपल ठोस अपशिष्टों का पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग में योगदान** : प्लास्टिक के पदार्थों को बार–बार मोल्ड करके आगे उपयोग में लाया जा सकता है। हालांकि, एकल प्रयोग प्लास्टिक जिनकी मोटाई कम होती है उनके पुनर्चक्रण (रीसाइक्लिंग) के लिए काफी समस्याएं हैं जो प्रदूषण का बहुत बड़ा कारण है। अतः नगर और शहर के अपशिष्ट एकत्रीकरण वाहनों से प्रतिदिन जो ठोस अपशिष्ट संग्रहीत होता है उससे नॉन–बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक पदार्थों की मोटाई के आधार पर अलग करवा कर रीसाइक्लेबेल प्लास्टिक को संबंधित यूनिट, जहां इनका पुनर्चक्रण किया जा सके, वहां तक पहुंचाया जाना चाहिए। नगरीय ठोस अपशिष्टों को भूमि में दबाकर, सड़ा–गला कर उत्तम उर्वरक (कम्पोस्ट) बनाया जा सकता है।

5) **पर्यावरण संरक्षण एजेंसी के स्तर पर पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग में योगदानः** कारखाने अपने उत्पाद की लागत को कम करने के लिए रीसाइक्लिंग और रीयूज प्रक्रिया को अपनाते हैं, किंतु कई बार जब कोई रीसाइक्लिंग प्रोसेस जिसमें अपशिष्ट को पुनःउपयोग करके और नया बनाना हो तो यह प्रक्रिया बहुत महंगी हो जाती है। पर्यावरण संरक्षण में सहायक पुनर्चक्रण एवं पुनः उपयोग वाली ग्रीन प्रोसेस को अपनाने के लिए प्रशासन एवं पर्यावरण संरक्षण एजेंसियों द्वारा समय–समय पर सर्वे किया जाना चाहिए और संबंधित इकाइयों को वित्तीय सहायता एवं सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए।

उद्योगों से निकलने वाले बहिस्राव जो कि कई रासायनिक पदार्थों, तत्वों को अपने साथ लिए होता है वह भारी मात्रा में जलीय स्रोतों को और जलीय जीवन को नुकसान पहुंचाता है। अतः उद्योगों को अपने यहां बहिस्राव उपचार संयंत्र स्थापित करके उसके निष्कासित बहिस्राव में हानिकारक पदार्थों की मात्रा को कम करना चाहिए। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जितने भी वाहित मल–जल उपचार संयंत्र और बहिस्राव उपचार संयंत्र हैं, उनका उद्देश्य रीसाइक्लिंग करना ही है क्योंकि यह अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा को कम करते हैं और कम हानिकारक एवं उपयोग में लाने योग्य बनाकर वापस छोड़ते हैं। राज्य एवं केंद्र स्तर पर गठित प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा लगातार विभिन्न उद्योगों के ई.टी.पी. पाट्र्स की निगरानी और निरीक्षण किया जाता रहा है। यदि कोई लघु स्तरीय उद्योग स्वयं अपने बहिस्राव का उपचार करने में असमर्थ हो तो इस तरह की इंडस्ट्री आपस में मिलकर "सामान्य बहिस्राव उपचार सुविधा" की स्थापना कर सकती हैं। संबंधित नगर निगम एवं

राज्य सरकार द्वारा ऐसी "सामान्य बहिस्राव उपचार सुविधा" की स्थापना के लिए वित्तीय सहायता एवं सहयोग प्रदान किया जाता है।

उपसंहार :

कई बार रीसाइक्लिंग किये जाने वाले पदार्थ, कच्चे माल की तुलना में कम अशुद्धियों को रखता है, जिससे उत्पाद बनाते वक्त हमें कम अशुद्धियों को दूर करना पड़ता है। फलस्वरुप, रीसाइक्लिंग प्रक्रिया अपेक्षाकृत कम लागत में पूर्ण हो जाती है, जैसे पुराने आयरन को पुनर्चक्रण करके अयस्क का शुद्धि करण कर नया आयरन बनाने में जो खर्च आता है वह उसके खर्च का केवल 15 से 20 प्रतिशत होता है, इसी के साथ रीसाइक्लिंग प्रक्रिया अपेक्षाकृत कम उर्जा के खर्च में पूरी की जा सकती है। अतः ऊर्जा संरक्षण के दृष्टिकोण से भी रीसाइक्लिंग अति महत्वपूर्ण है। कारखानों से निकलने वाले रासायनिक अपशिष्ट भारी मात्रा में पर्यावरण को नुकसान पहुंचाते हैं। अतः विभिन्न सर्वे एवं पर्यावरण एजेंसियों का दायित्व है कि वे विभिन्न औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाले अपशिष्ट के प्रकार और इनकी "इको फ्रेंडली पुनर्चक्रण" प्रोसेस का निर्माण करके उसे अपनाने के लिए दिशा–निर्देश निर्धारित करें और हो सके तो वित्तीय सहायता भी प्रदान करें ताकि वे सभी औद्योगिक अपशिष्टों की पुनर्चक्रण प्रक्रिया में बढ़–चढ़कर भाग लें।

पर्यावरण संरक्षण में पुनर्चक्रण (रीसाइक्लिंग) एवं पुनःउपयोग (रीयूज) की दोनों अवधारणाएं प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जुड़ी हुई हैं। अगर आप किसी चीज को पुनः उपयोग करते हैं तो फिर सीधे तौर पर आप उसे अपशिष्ट पदार्थों में जाने से बचाते हैं और उसको पुनर्चक्रण की जरूरत ही नहीं पड़ेगी और यदि पुनःउपयोग संभव नहीं हो पाए तब भी आप पुनर्चक्रण के द्वारा उसे पुनः उपयोगी बनाने का प्रयास कर सकते हैं।

***

कुसुम : एक बहु उपयोगी वृक्ष

इरशाद अली सौदागर, कु. सुषमा मरावी,
त्रिलोक गुप्ता, मानसी मिश्रा एवं डॉ. फातिमा शिरीन
अनुवांशिकी एवं वृक्ष सुधार प्रभाग
उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर,
मंडला रोड, पोस्ट ऑफिस आर एफ आर सी–482021 मध्य प्रदेश

परिचय

भारत दुनिया में लाख का सबसे बड़ा उत्पादक है और हर साल लाख के निर्यात के माध्यम से लगभग 25 मिलियन अमरीकी डॉलर का विदेशी विनिमय प्राप्त करता है। हालांकि, लाख की खेती के क्षेत्र में अच्छी गुणवत्ता लाख का उत्पादन कई कारणों जैसे लाख की कीमतों में उतार–चढ़ाव, अधिक विदेशी खरीदारों पर निर्भरताएँ और लाख कीड़ों के साथ–साथ उनके मेज़बान पौधों की जैव विविधता को नुकसान आदि से कम हो गया था। इसलिए लाख होस्ट पौधों के सुधार पर बहुत सीमित अनुसंधान गतिविधियों विशेष रूप से कुसुम से दूर किया गया है। इसकी प्राकृतिक और साथ ही कृत्रिम पुनर्जनन, बीज–कीट द्वारा संक्रमण खराब अंकुरण और धीमी प्रारंभिक विकास दर स्पष्ट रूप से खराब स्थिति में है। इसलिए इसके बीज अंकुरण में सुधार के साथ–साथ इसके प्रसार के वैकल्पिक साधनों पर भी ध्यान दिया जा रहा है।

श्लेचेरा ओलोसा का पेड़ भारतीय उपमहाद्वीप में पाया जाता है इसके और फलों को क्षेत्रीय भाषा में कुसुम या कोसम के रूप में जाना जाता है। यह पेड़ ज्यादातर भारत के मध्य क्षेत्र में मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के मुख्य पेड़ों की प्रजातियों में से एक है। IUCN की रेड डाटा लिस्ट 2021 में कुसुम को न्यूनतम चिंता की श्रेणी में रखा गया है।

कुसुम का वृक्ष

कुसुम का सामान्य नाम, श्लेचेरा स्विस वनस्पति शास्त्री जैसी श्लेचर के नाम पर लिया गया है, जिन्होंने पहली बार पेड़ का वर्णन किया था। ओलेओसा नामक प्रजाति लैटिन शब्द ओलियम से निकला है जिसका अर्थ है तेल, क्योंकि बीज गुठली–तेल (59–72%) में समृद्ध हैं। पर्यायवाची रूप से पेड़ को श्लेचेरा ट्राइजुगा विल्ड के रूप में भी जाना जाता है, एक पत्ती में तीन जोड़ी पत्रक की उपस्थिति के आधार पर त्रिजुगा शब्द का अर्थ 'तीन जोड़े' है। कुसुम एक द्विगुणित, फूल और बीज युक्त संवहनी पौधा है जो सपिंडेसी (सोपबेरी) परिवार से संबंधित है।

इसकी पत्तियां, टहनियां और बीज–केक का उपयोग मवेशियों को खिलाने के लिए चारे के रूप में किया जाता है। इसकी लकड़ी जलाऊ लकड़ी के रूप में उपयुक्त है और इससे उत्कृष्ट श्रेणी का कोयला बनाया जाता है। बीज से निकाला गया तेल, जिसे 'कुसुम तेल' कहा जाता है, पाक और प्रकाश व्यवस्था के लिए उपयोग किया जाता है।

अन्य नाम :

अंग्रेजी : सीलोन ओक, लाख ट्री,
गुजराती : કુસુમ, कुसुम, हिन
हिंदी : कुसम, कुसुम, कुसुम्ब
कन्नड़ : चकोटा, सगडे
कोंकणी : कोसिंब, कोसिम्ब
मलयालम : धूतहम, पूवनम, पूवम
मराठी : कोशिंब, कोशिम्ब, कुसुम्ब
संस्कृत : कुसुंभ, कुसुंभा
तमिल : पुवाम, पुवत्थी, पुमारथ, கொஞ்சி
तेलूगू : कोसंगी

विकास

एस. ओलोसा एक पर्णपाती वृक्ष है, लेकिन केवल कुछ दिनों के लिए पूरी तरह से पत्तीरहित है। भारत में, दिसंबर के महीने में इसकी पत्तियां गिर जाती हैं। एस. ओलोसा की जड़तंत्र का विकास धीमा है। यह 16 वर्षों में लगभग 7 मीटर की ऊंचाई और 10 से.मी. के तने के व्यास तक बढ़ते हैं। कॉपिस शूट 1 वर्ष में 2 मीटर की ऊंचाई तक वृद्धि करता है।

पारिस्थितिकी

कुसुम उष्णकटिबंधीय एशियाई देशों का मूल रूप से पाया जाने वाला वृक्ष है। यह झारखंड, बिहार, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश राज्यों से लेकर सतलुज से छोटा नागपुर क्षेत्रों तक हिमालय की तलहटी में वितरित है। यह पेड़ गुजरात और तमिलनाडु के कुछ अलग–अलग हिस्सों में भी पाया जाता है। भारत के अलावा यह पेड़ नेपाल, श्रीलंका, म्यांमार, थाईलैंड, इंडोनेशिया और मलेशिया जैसे देशों में भी पाया जाता है। आम तौर पर सूखे और मिश्रित पर्णपाती वन क्षेत्रों में थोड़ा अम्लीय लेकिन अच्छी तरह से सूखा बजरी या दोमट मिट्टी कुसुम के पेड़ों को उगाने के लिए उपयुक्त होती है। हालांकि कुसुम के पेड़ आग और ठंड प्रतिरोधी होते हैं, वे 35–47 डिग्री सेल्सियस तापमान और 750–2500 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए सबसे उपयुक्त होते हैं।

प्रजनन

एस. ओलोसा पर्णपाती है। यह शुष्क मौसम की शुरुआत में फूलता है और लगभग 6 महीने बाद फल देता है। यह गर्मी के मौसम में प्रजनन करता है तथा निषेचन की अवधि में यह धीमा है।

प्रोपेगेशन

कुसुम के वृक्ष का प्राकृतिक पुनर्जनन, बीज और जड़ संकरण द्वारा होता है। इसका प्रजनन पूरी तरह से तैयार मिट्टी में सीधे बुवाई या स्टेम्प रोपण द्वारा भी किया जा सकता है। कुसुम के पेड़ आम तौर पर शुष्क मौसम अर्थात् जनवरी–फरवरी की शुरुआत के दौरान फूलते हैं और मार्च–अप्रैल के महीने के दौरान फलते हैं। फल जुलाई–अगस्त के महीनों में पकते हैं। बीज इसके प्रसार का प्रमुख स्रोत हैं और ज्यादातर व्यवहार्य होते हैं यदि संग्रह के बाद ताजा बोया जाता है। लंबे समय तक भंडारण पर बीजों की व्यवहार्यता काफी हद तक खो जाती है। इसको नियमित रूप से निराई–गुड़ाई और चराई से सुरक्षा की आवश्यकता होती है।

प्रबंधन

कीटपालन : जब इसकी खेती की जाती है तो, इसमें भारी छटाई की आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि इसका विकास धीमा है। जब एस. ओलोसा को उत्तरी भारत में लाख कीटों के लिए एक होस्ट के रूप में नियोजित किया जाता है, तो पेड़ों को बारिश के मौसम (जून–जुलाई) या जनवरी–फरवरी में टीका लगाया जाता है। 4–10 महीने पुराने शूट लार्वा निपटान के लिए सबसे उपयुक्त माने जाते हैं। लाख की कटाई लगभग 6 महीने के बाद की जाती है। केवल पूरी तरह से विकसित मुकुट के साथ पेड़ लाख की एक अच्छी उपज का उत्पादन करते हैं। भारी पोलार्डिंग द्वारा पेड़ों को बेहतर बनाया जा सकता है। पेड़ों पर लाख को फिर से स्थापित करने से पहले 12–18 महीनों तक आराम दिया जाना चाहिए।

जर्मप्लाज्म प्रबंधन

बीज को बोरियों में 1 वर्ष के लिए तथा सीलबंद कंटेनरों में 2 साल तक संग्रहीत किया जा सकता है। 1000 बीजों का वजन 500–700 ग्राम तक हो सकता है। बीज द्वारा संचरण प्रचुर मात्रा में संभव है और बीज से अंकुरण समय लेने वाला है। इसलिए इसके संरक्षण के लिए प्रसार के वानस्पतिक साधनों पर जोर दिया जा रहा है। क्लोनल प्रसार तकनीक इसके संरक्षण का एक अच्छा सुझाव हो सकता है जो बीज की कमी की समस्या को हल कर सकता है।

कार्यात्मक उपयोग

- **चारा** : पशुओं को खिलाने के लिए इसकी पत्तियां टहनियां और बीज–केक का उपयोग किया जाता है। पत्तियों में प्रति 100 ग्राम शुष्क पदार्थ ए प्रोटीन 10.5 ग्राम, ईथर 2 ग्राम, नाइट्रोजन मुक्त 49 ग्राम, कच्चे फाइबर 32.5 ग्राम पाया जाता है।
- **भोजन** : पके हुए बीजों को फल के रूप में खाया जाता है, जबकि अपरिपक्व फल को अचार में डाला जाता है। पके हुए युवा पत्ते की सह भोजन बनाते हैं।
- **ईंधन** : लकड़ी का ऊर्जा मूल्य लगभग 20800 किलो जूल प्रति किलोग्राम है। इसकी लकड़ी, जलाऊ लकड़ी के रूप में उपयोगी है तथा इससे कोयला भी बनाया जाता है।
- **लिपिड** : बीज से निकाला गया तेल जिसे कुसुम तेल कहा जाता है, हेयरड्रेसिंग में उपयोग किए जाने वाले मैकासर तेल का एक मूल्यवान घटक है। यह पाक और जलाने के लिए भी प्रयोग किया जाता है और पारंपरिक चिकित्सा में यह खुजली, मुँहासे और अन्य त्वचा के कष्टों के इलाज के लिए उपयोग किया जाता है। मदुरा और जावा में तेल का उपयोग बाटिक उद्योग में किया जाता है और दक्षिणी भारत में तेल का उपयोग ठंडा स्नान लेने के रूप में भी किया जाता है। तेल पीले–भूरे रंग का और अर्ध ठोस है और इसमें ओलिक एसिड 52%, अराकिडोनिक एसिड 20%, स्टीयरिक एसिड 10%, गैडोलिक एसिड 9% होता है। इसमें साइनोजेनिक यौगिक भी होते हैं, जो चक्कर का कारण बन सकते हैं और यदि तेल का उपयोग मानव उपभोग के लिए किया जाता है तो इसे हटा दिया जाना चाहिए।
- **दवा** : पाउडर बीज को मैगोट्स को हटाने के लिए मवेशियों के घावों और अल्सर पर लगाया जाता है। इसकी छाल कसैली होती है और त्वचा की सूजन और अल्सर के इलाज में इसका उपयोग किया जाता है जबकि मलेरिया के उपचार में इसके जल का उपयोग किया जाता है। प्रति 100 ग्राम प्रेस केक में लगभग पानी 5.5 ग्राम, प्रोटीन 22 ग्राम, वसा 49 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट 14 ग्राम, फाइबर 5 ग्राम, राख 3.5 ग्राम शामिल होते हैं।
- **टैनिन या डाईस्टफ** : छाल से एक डाई और टैनिन प्राप्त किया जाता है। कभी–कभी टैनिन का उपयोग चमड़े की टैनिंग के लिए किया जाता है। छाल में लगभग 10 टैनिन

एंटीट्यूमर एजेंट्स बेटुलिन और बेटुलिनिक एसिड और एनाल्जेसिक यौगिक ल्यूपियोल होता है।

- **लकड़ी** : इसकी गुलाबी–भूरे रंग की हार्टवुड बहुत कठोर और टिकाऊ है। पेस्टलएकार्टव्हील, एक्सल, हल, उपकरण हैंडल और चीनी मिलों और तेल प्रेस के रोलर्स बनाने के लिए बहुत उपयोगी है। इसकी सूखी लकड़ी बहुत मुश्किल से मिलती है।
- इसे एक बहुत ही चिकनी सतह पर योजनाबद्ध किया जा सकता है जो एक उच्च स्थायी पॉलिश लेता है।
- **अन्य उत्पाद** : भारत में इसका उपयोग लाख कीट के लिए होस्ट के रूप में किया जाता है। उत्पाद को कुसुम लाख कहा जाता है और यह गुणवत्ता और उपज में सबसे अच्छा है।
- **सजावटी** : मध्य भारत में यह एक रास्ते के किनारे के पेड़ के रूप में बहुत अधिक लगाया जाता है।

कीट और रोग

- **रोग** : स्टेम ब्लाइट; रोसेलीनिया बुनोड्सद्ध, पीला कॉर्क सड़ांध; पॉलीपोरस वेबरियनसद्ध, सफेद स्पंजी सड़ांध; डेडालिया फ्लेविडा और हेक्सागोनिया, पिरियाद्ध और सफेद रेशेदार सड़न; इरपेक्स फ्लेवसद्ध भारत में इसकी महत्वपूर्ण बीमारियां हैं।
- **कीट** : कई डेफोलिएटर, बोरर और सैप सकर इसके नुकसान का कारण बनते हैं। बीज पर एक बग सेरिनेथा ऑगर द्वारा संक्रमण पैदा होता है।

संरक्षण की आवश्यकता

भारत में, कुसुम के पौधे कभी–कभी कुछ खेती के तहत बगीचे और जंगल में होते हैं। अतिदोहन इस प्रजाति के लिए वर्तमान खतरा है। कुसुम की लकड़ी का रोलर के लिए इस्तेमाल किया जाता है। लकड़ी का कोयला बनाने के लिए लकड़ी का उपयोग किया जाता है। फल, पका/कच्चा खाया जाता है। पत्तियों और टहनियों को मवेशियों के चारे के लिए उपयोग किया जाता है। लेकिन यह प्रजाति वन विखंडन, वनोन्मूलन, झूम आदि के कारण तेज गति से जंगलों से खत्म हो रही है। पूर्व में भी इस प्रजाति के लिए संरक्षण उपाय प्रस्तावित किए गए हैं। हालांकि संरक्षण के उपाय कुछ हद तक किए गए हैं, इसके संरक्षण के तरीकों का विस्तार किया जाना चाहिए। पौधों के प्राकृतिक हरित आवरण का दोहन, आवास का विनाश, मानव की बढ़ती जरूरतों के परिणामस्वरूप जैव विविधता की हानि हो रही है और अधिकांश उष्णकटिबंधीय जंगलों में पर्यावरणीय गिरावट आयी है।

परंपरागत रूप से कुसुम के मौजूदा पेड़ों में लाख की खेती की जाती है जो 40–100 साल पुराने हैं। पोलार्डिंग परीक्षण हाल ही में शुरू किया गया है। पोलार्डिंग के माध्यम से अधिक संख्या में शूट का उत्पादन करने में सफलता और उन पर लाख की खेती, लाख उत्पादन और लाख के भरण पोषण को बढ़ाने में एक बड़ी मदद होती है, जो अंततः कुसुम के पौधों को लगाकर किसानों को लाख की खेती के लिए प्रेरित कर सकती है। अत्यधिक दोहन के कारण पेड़ों की परिपक्वता पर, अन्य उद्देश्यों के लिए पेड़ों का विनाश, और गैर नए पौधरोपण की स्थापना के कारण कुसुम की आबादी प्रतिदिन रही है। अन्य देशों में तेजी से हो रहे आर्थिक विकास ने भी इस प्रजाति के समग्र प्राकृतिक आवासों को कम कर दिया है और इन देशों में अपने अस्तित्व को खतरे में डाल दिया। इसे संरक्षित करने और सुरक्षित करने के लिए प्रयासों की आवश्यकता है। इस प्रजाति के संरक्षण और कुशल उपयोग पर द्विपक्षीय या बहुपक्षीय सहयोग इस क्षेत्र में प्रजातियों के अच्छे प्राकृतिक संसाधनों वाले देशों के बीच शुरू किया जाना चाहिए।

***

क्रॉस लेमिनेटेड टिंबर : एक परिचय

प्रियंक मैठाणी,
पीएचडी शोधकर्ता, काष्ठ विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरु
शक्ति सिंह चौहान,
वैज्ञानिक–जी, काष्ठ विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरु
अनिल कुमार सेठी,
वैज्ञानिक–ई, काष्ठ विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरु

आमुख :

इंजीनियर लकड़ी उत्पाद क्रॉस लेमिनेटेड टिम्बर (क्रॉस लेमिनेटेड लकड़ी या सीएलटी या एक्सलैम) तेजी से दुनिया भर में प्रमुखता से उभरा है। इसके समकोण पटलीय निर्माण के कारण इसका उपयोग पूर्ण आकार की दीवार या फर्श के टुकड़े के साथ–साथ लोड–बेयरिंग रैखिक लकड़ी के घटक के रूप में किया जा सकता है। यह लेख वर्तमान निर्माण और प्रौद्योगिकी, विशेष भौतिक गुणों, डिजाइन और सीएलटी के कनेक्शन पर प्रकाश डालेगा। सीएलटी उत्पाद के लिए विकास और विश्वव्यापी बाजार पर व्यापक डेटा का उपयोग करते हुए ज्ञान की वर्तमान स्थिति का एक त्वरित मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। हाल के वैश्विक रुझानों ने विश्लेषकों को अगले दशक के दौरान उत्पादकता वृद्धि की भविष्यवाणी करने के लिए प्रेरित किया है। सीएलटी का उपयोग कर निर्माण करने के लिए, उत्पाद, परीक्षण और डिजाइनिंग के मानकों के विकास की आवश्यकता है। सीएलटी के व्यावसायिक उत्पादन से पहले, कुछ बिंदुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है :

1. आर्थिक रूप से संयोजन के लिए सीएलटी पर्याप्त कनेक्शन सिस्टम का विकास, और जोड़ों में सीएलटी तत्वों की लोड–असर क्षमता के संबंध में उपयोग की बढ़ती क्षमता
2. आधार सामग्री बोर्ड के गुणों के आधार पर सीएलटी गुणों की गणना के लिए एक पूरी तरह से सुसंगत भार धारण मॉडल, स्थानीय लकड़ी प्रजातियों और गुणों के अपेक्षाकृत तेज़ी से उपयोग की अनुमति देता है।

यह सुझाव दिया जाता है कि वैश्विक रूप से एकीकृत मानकों का सेट स्थापित किया जाए, क्योंकि इससे काष्ठ अभियांत्रिकी के लिए संभावित बाजार बढ़ेंगे और सीएलटी अन्य ठोस खनिजों (सीमेंट, ईंट आदि) पर आधारित सामग्री के साथ अधिक प्रतिस्पर्धी बन जाएगा।

सीएलटी पैनल बनाने वाले काष्ठ बोर्ड की परतें एक कोण (अकसर 90 डिग्री) पर बिछाई जाती हैं और अंतिम उत्पाद बनाने के लिए उनके चौड़े किनारों के साथ और कुछ परिस्थितियों में, उनके संकीर्ण किनारों के साथ एक साथ जोड़ी जाती हैं। परतों को एक साथ जोड़ने के बाद, उन्हें कील या लकड़ी की गिट्टी का उपयोग करके और मजबूत किया जा सकता है। एक प्रकार का सीएलटी, जो अभी भी विकास के प्रारंभिक चरण में है, इंटरलॉकिंग क्रॉस–लेमिनेटेड वुड (आईसीएलटी) है। सीएलटी तत्व के एक क्रॉस सेक्शन में बोर्डों की कम से कम तीन चिपकी हुई परतें होती हैं, सभी एक अभिविन्यास के साथ होती हैं जो आसन्न परतों के लिए ऑर्थोगोनल होती हैं। वांछित संरचनात्मक क्षमताओं को प्राप्त करने के लिए, एक ही दिशा में क्रमिक परतों को व्यवस्थित करना आवश्यक हो सकता है, जैसे एक दोहरी परत (उदाहरण के लिए, बाहरी चेहरों पर दोहरी अनुदैर्ध्य परतें और/या पैनल के कोर में अतिरिक्त दोहरी परतें) का निर्माण करना। सीएलटी उत्पाद अकसर

विषम संख्या में परतों (3, 7, या अधिक) के साथ बनाए जाते हैं।

व्यक्तिगत लकड़ी के टुकड़ों की मोटाई 5/8 इंच से 2 इंच (16 मि.मी. से 51 मि.मी.) और चौड़ाई लगभग 2.4 इंच से 9.5 इंच (61 मि.मी. से 246 मि.मी.) (60 मि.मी. से 240 मि.मी.) हो सकती है। अंगुलीनुमा जोड़ों (फिंगर जाइंट) को संरचनात्मक गोंद और बोर्डों का उपयोग करके बनाया जाता है। भट्ठा–सूखी लकड़ी का या तो नेत्रहीन मूल्यांकन किया जाता है या मशीन द्वारा तनाव रेटिंग दी जाती है। निर्माता अकसर निम्नलिखित आयामों में पैनल का उत्पादन करते हैं: 2 फीट (0.6 मीटर), 4 फीट (1.2 मीटर), 8 फीट (2.4 मीटर), और 10 फीट (3 मीटर) की चौड़ाई, 60 फीट (18 मीटर) तक की लंबाई और 20 इंच (50.8 से.मी.) (508 मि.मी.) तक की मोटाई। सीएलटी पैनल आयाम परिवहन बाधाओं से प्रतिबंधित करने में पूर्णतया सक्षम होते हैं।

दीवार की ऊर्ध्वाधर भार क्षमता को अधिकतम करने के लिए, सीएलटी पैनलों में लकड़ी की बाहरी परतें अकसर गुरुत्वाकर्षण भार के समानांतर (ऊपर और नीचे) उन्मुख होती हैं। एक फर्श या छत को इस तरह डिजाइन करना कि इसकी बाहरी परतें उसी दिशा में हों, जिस दिशा में मुख्य स्पैन महत्वपूर्ण है। बीसवीं शताब्दी की शुरुआत के दौरान, यूरोप में नवाचारों ने प्रबलित कंक्रीट को अधिक पारंपरिक लकड़ी संरचनाओं (लॉग या सीढ़ी निर्माण या जालीनुमा कार्य) के लिए एक किफायती विकल्प बना दिया। इस समय अवधि के दौरान हल्की लकड़ी के निर्माण (जाली का काम या फ्रेम निर्माण), परिवार और आवासीय भवन संरचनाएं, आकर्षक निर्माण (प्रदर्शनी या खेल हॉल, औद्योगिक हॉल, साइलो और लॉग हाउस का निर्माण), और केवल रैखिक सदस्यों से युक्त आवरण लकड़ी का प्राथमिक उपयोग हुआ करता था। खनिज–आधारित ठोस निर्माण सामग्री के बाद दूसरे स्थान पर रहने के बाद इमारती लकड़ी ने हाल ही में विशेष रूप से व्यवसाय के आवासीय, वाणिज्यिक और शैक्षिक क्षेत्रों में लोकप्रियता हासिल की है। शहरी परिसरों में लकड़ी का आश्चर्यजनक पुनरुत्थान, जहां इसकी कथित ज्वलनशीलता ने इसे सदियों से वर्जित निर्माण सामग्री बना दिया है, इसने बाजार प्रभुत्व हासिल करने में मदद की है। क्रॉस लेमिनेटेड लकड़ी (सीएलटी) के रूप में जाना जाने वाला आधुनिक पटल का लकड़ी उत्पाद हाल ही में बाजार में अपनी जगह बना चुका है। सीएलटी, या क्रॉस–लेमिनेटेड लकड़ी, एक समग्र इंजीनियर लकड़ी का उत्पाद है जो प्लेटों का रूप लेता है और एक कोण पर क्रॉस–ग्रेन पैटर्न में व्यवस्थित बोर्डों की एक बड़ी संख्या में परतों (आमतौर पर 3–7 परतें एक दूसरे से 90 डिग्री कोण पर व्यवस्थित) से निर्मित होता है।

ब्रेट्सपरहोल्ज़ (सीएलटी का जर्मन नाम) एक नया आविष्कार नहीं है; इसकी मूल संरचना जॉइनरी और बढ़ईगीरी जैसे प्लाईवुड, कोर बोर्ड, या तीन–परत ठोस–लकड़ी बोर्ड में आमतौर पर उपयोग किए जाने वाले उत्पादों के समान होती है, जिसमें समकोणीय व्यवस्था के कारण न्यूनतम सूजन और संकोचन दर के कारण विमान में उच्च आयामी स्थिरता का मुख्य लाभ होता है। सीएलटी, हालांकि, सतह और मोटाई दोनों में अपने बड़े आयामों के कारण संभावित रूप से मूल्यवान, बहुमुखी और मुक्त खड़े संरचनात्मक तत्व हैं। आराघर कंपनियां 1990 के दशक में साइड बोर्ड के लिए एक अधिक आकर्षक बाजार की खोज करना चाहती थीं, जिससे क्रॉस–लेमिनेटेड टिम्बर (सीएलटी) का निर्माण हुआ। सीएलटी के बड़े आयाम, आसान हैंडलिंग और लचीली प्रयोज्यता ने काष्ठ अभियांत्रिकी को नए बाजारों में प्रवेश करने की अनुमति दी है, लामिनार, यहां तक कि बिंदु या लाइन–समर्थित तत्वों का उपयोग करके लकड़ी में संभावित निर्माण, सुपर–संरचनाओं और मोनोलिथिक इमारतों की सीमा में वृद्धि की है। इस दृष्टिकोण से सतहों और वी–अक्षों के संदर्भ में संरचनाओं के बारे में सोच को बदलने में मददगार रहे हैं।

***

क्रॉस लेमिनेटेड इमारती लकड़ी (सीएलटी) अपनी विविधता के कारण बहुमंजिला इमारतों के लिए एक शानदार सामग्री है। आज का बाजार लगभग असीम अनुकूलन विकल्प प्रदान करता है, यांत्रिक जोड़ों या बंधुआ कनेक्शनों के साथ विस्तार करने की क्षमता की मदद से लंबाई 16 मीटर तक है और, 2.5 मीटर तक की चौड़ाई (निर्माता के आधार पर), और 500 मि.मी. तक की मोटाई भी संभव है। प्रगति की अविश्वसनीय दर के बावजूद, जो आज भी जारी है, नए अवसरों और अनुप्रयोगों की खोज नहीं की गई है। लकड़ी–कंक्रीट गगनचुंबी इमारतों को बनाने के लिए कंक्रीट के साथ सीएलटी घटकों का संयोजन एक अभिनव दृष्टिकोण है। पैनलों के बीच अपने अनूठे संबंधों के कारण, सीएलटी को जापान में तीन और सात मंजिला संरचनाओं पर भूकंपीय परीक्षण के जीवित रहने के बाद बहुमंजिला इमारतों में विशेष रूप से सफल होने के लिए हाल में ही प्रदर्शित किया गया है। यह दिखाने के बाद कि तीन–परत पैनलों का पांच–परत पैनलों के रूप में चक्रीय लदाई (भूकंप) के खिलाफ एक ही मजबूत प्रदर्शन था, निम्नलिखित शोध ने ऊंची इमारतों में सीएलटी की क्षमता साबित कर दी जहां क्षैतिज लदाई स्थितियां सबसे महत्वपूर्ण हैं। क्रॉस लेमिनेटेड लकड़ी के टुकड़ों का उपयोग करके लंदन में अब तक की सबसे ऊंची संरचना नौ मंजिला मूर्रे ग्रोव है। सीएलटी का विकास, ऊंचाई में 9 मंजिलों तक की इमारतों का निर्माण, और गंभीर तनाव समायोजन के तहत सामग्री का उल्लेखनीय प्रदर्शन, सभी शोधकर्ताओं ने बहुत ऊंची संरचनाओं के लिए लकड़ी–ठोस गगनचुंबी इमारत की अवधारणा को डिजाइन किया है। इस अध्ययन में, हम ऐसी इमारत के पर्यावरणीय लाभों और कमियों की जांच करेंगे और पृथ्वी ग्रह के भविष्य पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में बात करेंगे।

पार्श्वभूमि :

दो महत्वपूर्ण समस्याएं हैं जो अगली शताब्दी में मानवता को पीड़ित करेंगी : मानवजनित जलवायु परिवर्तन और तेजी से जनसंख्या वृद्धि और संसाधनों की कम आपूर्ति के परिणामस्वरूप दुनिया भर में आवास की गंभीर कमी। अपर्याप्त आवास के अपरिहार्य प्रभाव होते हैं, जैसे मौजूदा पर्यावरणीय और सामाजिक आर्थिक समस्याओं का बिगड़ना। घरों का यह भंडार ऊर्जा का एक बड़ा उपभोक्ता है और प्राकृतिक संसाधनों का एक महत्वपूर्ण उपयोगकर्ता है, दोनों तेजी से समाप्त हो रहे हैं।

निर्माण उद्योग दुनिया के ग्रीनहाउस गैस (जीएचजी) समकक्ष उत्सर्जन के लगभग 20% के लिए जिम्मेदार है। वर्ष 2008 में, यह ग्रीनहाउस गैसों के वैश्विक उत्सर्जन के लगभग एक तिहाई के लिए जिम्मेदार था। सुविधा को हर दिन चालू रखने के लिए आवश्यक कच्चा माल और ऊर्जा इसमें शामिल हैं। आश्चर्यजनक, निर्माण उद्योग का उत्पादन वार्षिक जीवाश्म ईंधन ऊर्जा उपयोग का 17% है। दुनिया के दस प्रतिशत जीवाश्म ईंधन ऊर्जा का निर्माण में उपयोग किया जाता है, हालांकि इन सभी संसाधनों को निर्माण में अपना हिस्सा नहीं मिल पाता है। सीमेंट निर्माण कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन का सबसे बड़ा स्रोत है, जो वर्ष 2000 और 2015 के बीच लगभग 1.5 से 4.6 बिलियन मीट्रिक टन के उत्पादन में तीन गुना वृद्धि के कारण 2015 में दुनिया के कुल 8% से अधिक के लिए जिम्मेदार है। हालाँकि, कुछ सामग्रियों में सुधार किया गया है। एक उदाहरण के रूप में, नई ऊर्जा–बचत सुविधाओं और प्रौद्योगिकी की शुरूआत के परिणामस्वरूप इस्पात का उत्पादन अधिक प्रभावी हो गया है। हालांकि, निर्माण क्षेत्र के कार्बन फुटप्रिंट का एक बड़ा हिस्सा इन 'पारंपरिक' निर्माण सामग्री के उत्पादन के कारण होता है।

अपने जीवनकाल के दौरान एक संरचना द्वारा उत्पादित कार्बन उत्सर्जन की कुल मात्रा पर विचार करते समय, इसके निर्माण में प्रयुक्त सामग्री की तुलना में भवन को बनाए रखने के लिए आवश्यक परिचालन ऊर्जा के लिए एक बड़े हिस्से को विशेषता देना आम बात है। हालाँकि, पिछले कई दशकों में, घरेलू ऊर्जा

दक्षता के विषय पर बहुत सारे शोध किए गए हैं। घरेलू इन्सुलेशन के लिए कठिन नियामक सीमाओं के साथ–साथ इन प्रगतियों ने अधिक दक्षता और कम उत्सर्जन का नेतृत्व किया है। निर्माण उत्सर्जन को संबोधित करना महत्वपूर्ण है क्योंकि निर्माण उत्सर्जन को कम किए बिना परिचालन उत्सर्जन को कम करने से निर्माण उत्सर्जन परिचालन उत्सर्जन का बड़ा अनुपात बन जाएगा। यदि परिवार अक्षय ऊर्जा स्रोतों पर स्विच करते हैं, तो वे सिद्धांत रूप में अपने ऊर्जा उपयोग में कार्बन तटस्थता प्राप्त कर सकते हैं। पहले के मुक़ाबले निर्माण सामग्री से उत्सर्जन की सटीक गणना करने की आवश्यकता के बारे में जागरूकता बढ़ी है। चूंकि परिचालन उपयोग से उत्सर्जन एक दिन नगण्य हो सकता है, सामग्री में कार्बन उत्सर्जन को कम करना स्वयं अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में अनुसंधान लकड़ी पर ध्यान केंद्रित करेगा, जो एकमात्र कार्बन नकारात्मक और व्यावसायिक रूप से उपलब्ध निर्माण सामग्री है जिसका उपयोग क्रॉस लेमिनेटेड लकड़ी (सीएलटी) जैसे उत्पादों को बनाने के लिए किया जाता है।

शहरीकरण और जनसंख्या वृद्धि ने पहले से ही सीमित भूमि आपूर्ति पर दबाव डाला, जिससे बड़े निर्माण घनत्व की आवश्यकता हुई। ज्यादातर मामलों में, यह अधिक ऊर्ध्वाधर ऊंचाई के साथ संरचनाओं के निर्माण की आवश्यकता होती है। लकड़ी, आसानी से जल जाती है, परंपरागत रूप से केवल अपेक्षाकृत कम वृद्धि वाले निर्माण (ज्यादातर पश्चिमी देशों में) के निर्माण के लिए नियोजित की गई है। क्रॉस लेमिनेटेड इमारती लकड़ी (सीएलटी) जैसे नए बड़े पैमाने पर लकड़ी के घटक, और काष्ठ अभियांत्रिकी में अन्य प्रगति ने लकड़ी का उपयोग करके मध्यम और ऊंची इमारतों का निर्माण करना संभव बना दिया है। इन्हें कंक्रीट और स्टील के समान उच्च मानकों के लिए बनाया जा सकता है, जिससे ये उन सामग्रियों के लिए एक व्यवहार्य विकल्प बन जाते हैं। पश्चिमी हेमलॉक, सिटका स्प्रूस, डगलस फ़र और एसपीएफ़ लकड़ी कुछ आयातित लकड़ी हैं जिनका उपयोग यूरोप में सीएलटी का उत्पादन करने के लिए किया जाता है।

विनिर्माण प्रक्रिया :

विशिष्ट सीएलटी निर्माण प्रक्रिया लॉग चयन और समूहीकरण के साथ शुरू होती है, योजना, गोंद अनुप्रयोग, पैनल लेआउट और दबाने, पैनल काटने, सतह परिष्करण, लेबलिंग और अंततः पैकेजिंग के साथ जारी रहती है। सीएलटी उत्पादन सफल होने के लिए, यह आवश्यक है कि उपयोग की जाने वाली लकड़ी की गुणवत्ता और चिपकने वाले बंधन की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले पैरामीटर दोनों को लगातार प्रबंधित किया जाए। कठोर कारख़ाना गुणवत्ता नियंत्रण परीक्षण यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि अंतिम सीएलटी उत्पाद इच्छित प्रदर्शन करेंगे। लकड़ी को भट्ठे में तब तक सुखाया जाता है जब तक कि नमी की मात्रा 12: से 3: के बीच न हो जाए। नमी की सही मात्रा के साथ, आप आयाम परिवर्तन और सतह के टूटने को रोक सकते हैं। लकड़ी को पहले से सुखाया जा सकता है, हालाँकि कार्य स्थल पर अधिक सुखाने की आवश्यकता हो सकती है। लंबर के आयाम और गुणवत्ता को ट्रिमिंग और फिंगर जॉइनिंग द्वारा समायोजित किया जा सकता है।

पैनल के आकार एक निर्माता से दूसरे में भिन्न हो सकते हैं। इस्तेमाल की गई सामग्री और एडहेसिव (गोंद) के आधार पर, असेंबली में 15 मिनट से लेकर एक घंटे तक का समय लग सकता है। कच्चे माल के मामले में गोंद सीएलटी के बाद दूसरे स्थान पर है। बंधे हुए लकड़ी के टुकड़ों के लिए, वही उच्च मानदंड उपयोग किए जाते हैं, जो चिपकाने के लिए किए जाते हैं। इनमें पॉलीयुरेथेन, मेलामाइन और फेनोलिक–आधारित चिपकने वाले गोंद शामिल हैं जिन्हें अधिकृत किया गया है। या तो किनारे या सतह पर गोंद का उपयोग किया जा सकता है। गोंद के उपयोग के बाद पैनलों को साधारणतया हाइड्रोलिक या वैक्यूम प्रेस और दबाव वाली हवा का

उपयोग करके एक साथ दबाया जाता है। पैनलों को अकसर दिखने में एक समान बनाने के लिए स्थापना के बाद प्लेनिंग/या सैंड किया जा सकता है।

क्रॉस लेमिनेटेड इमारती लकड़ी के उत्पादन के लिए तीन मुख्य गोंद का उपयोग किया जाता है:–

1. पीआरएफ (फिनोल – रिसोरिसिनॉल–फॉर्मेल्डिहाइड
2. ईपीआई (इमल्शन पॉलिमर आइसोसाइनेट)
3. पीयूआर (एक–घटक पॉलीयुरेथेन)

दबाने वाले उपकरणों के आधार पर, निम्नलिखित वर्गीकरण किया जा सकता है :–

1. हाइड्रोलिक प्रेस उपकरण के माध्यम से सतह बंधन
2. वैक्यूम प्रेस उपकरण के माध्यम से सतह बंधन
3. पेंच, खपची, कीलों के दबाव का उपयोग करते हुए सतह बंधन

दबाने के बाद सीएलटी पैनल के किनारे कट जाते हैं। दबाने के बाद तत्वों की सतहों को अलग तरह से नियंत्रित किया जाता है, जैसे बिना प्लानिंग या सैंडिंग के आगे की प्रक्रिया बढ़ाना। अतिरिक्त गैर–लोड–असर वाली परतें, जैसे ओएसबी, ध्वनिक पैनल, जिप्सम प्लास्टर बोर्ड, या ठोस लकड़ी के पैनल, इच्छित उपयोग के आधार पर उपयोग किए जा सकते हैं। सतह बंधन वह प्राथमिक तरीका है जिसके द्वारा इन पूरक परतों को एक साथ रखा जाता है। ऑर्डर से संबंधित, सिंगल–बैच उत्पादन, निर्माण और परिष्करण के तुरंत बाद सीएलटी टुकड़ों को काटना और जोड़ना आवश्यक और उचित प्रक्रियाएं हैं। इसका उद्देश्य निर्माण प्रक्रिया के समान सटीकता के साथ काटने और जोड़ने की प्रक्रिया का सुचारु रूप से संचालन भी है।

लाभ :

ठोस लकड़ी के निर्माण के कई फायदे हैं। ठोस लकड़ी अच्छे संरचनात्मक गुणों के साथ एक उत्कृष्ट टिकाऊ सामग्री है, और इसका उच्च आरामदायक प्रभाव भी है। लेकिन सीएलटी से बनी इमारत बहुत अधिक क्षमता दिखाती हैं। पूर्वनिर्माण निर्माण में होने वाली समग्र परेशानियों को कम करता है, निर्माण का समय भी कम हो जाता है, और इमारत की संरचनात्मक, ऊर्जा–बचत, ताप एवं आग रोधी क्षमताओं में सुधार होता है। लकड़ी सबसे अधिक कार्बन–कुशल और लंबे समय तक चलने वाली निर्माण सामग्री में से एक है क्योंकि पेड़ों की कटाई के माध्यम से इसकी आसानी से भरपाई की जा सकती है और इसके दुष्प्रभावों को पौधारोपण के जरिए संतुलित किया जा सकता है। एलसीए अध्ययन के अनुसार, क्रॉस–लेमिनेटेड लकड़ी की ग्लोबल वार्मिंग क्षमता वास्तव में नकारात्मक है। इसका अर्थ यह है कि यह केवल अपने स्वयं के उत्सर्जन की भरपाई करने से कहीं अधिक करता है। बल्कि, यह दुनिया भर में प्रदूषण को कम करने के लिए सक्रिय रूप से काम करता है। हालांकि, गोंद के उपयोग और प्राकृतिक दुनिया के लिए इसके संभावित परिणामों के बारे में शोधकर्ताओं द्वारा चिंताएं उठाई गई हैं।

पूर्वनिर्मित क्रॉस–लेमिनेटेड लकड़ी की दीवार और फर्श पैनल कई फायदे प्रदान करते हैं। क्रॉस–लेमिनेटिंग विधि उत्पाद की आयामी स्थिरता को बढ़ाती है, पूर्वनिर्मित लंबी और चौड़ी मंजिल स्लैब, एक मंज़िला दीवारों और बहु मंज़िला बैलून फ़्रेमयुक्त इमारत के लिए आवश्यक उच्च मंजिलों की अनुमति देती है। प्रबलित कंक्रीट स्लैब, जो दो प्रकार की कार्रवाई करने में सक्षम हैं, क्रॉस–लेमिनेटेड कंपोजिट के समान हैं, जिनमें ताकत और कठोरता के उच्च इन–प्लेन और आउट–ऑफ–प्लेन मूल्य हैं। कुछ कनेक्शन प्रणालियों पर क्रॉस–लेमिनेशन का 'सुदृढ़ीकरण' प्रभाव सीएलटी के विभाजन प्रतिरोध को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ा देता है।

सीएलटी के कुछ प्रमुख लाभ हैं :

- बेहतर संरचनात्मक, ऊर्जा की बचत, और आग ताप एवं विद्युत रोधक क्षमता

- तेज और आसान पूर्वनिर्माण (दरवाजे और खिड़कियां)
- इमारती लकड़ी की विस्तृत श्रृंखला का उपयोग
- पैनल की मोटाई उपयोगस्वरूप कम या अधिक रखी जा सकती है
- बेहतर कार्बन प्रच्छादन और नकारात्मक ग्लोबल वार्मिंग क्षमता
- एक सीएलटी मॉड्यूल का उपयोग कई उद्देश्यों और डिजाइनों के लिए किया जा सकता है
- बेहतर भूकंपीय प्रतिरोध क्षमता
- श्रमिकों को नुकसान की कम संभावना और उनका बेहतर स्वास्थ्य

अनुसंधान का दायरा :

सीएलटी, जो 1990 के दशक में ऑस्ट्रिया में अग्रणी था, तेजी से अन्य पश्चिमी देशों में लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है। इसकी विशिष्टता और विकास क्षमता दोनों भारत और अन्य एशियाई देशों में उच्च है। यही कारण है कि विनिर्माण और गुणवत्ता आश्वासन के लिए कई मानदंड और दिशानिर्देश स्थापित करना आवश्यक है। विभिन्न प्रकार की लकड़ी को एक साथ जोड़ने का एक मानकीकृत दृष्टिकोण का होना भी अति आवश्यक है। भारत में, सीएलटी को विभिन्न प्रकार की पौधों की प्रजातियों से बनाया जा सकता है, जिसमें मीलिया, यूकेलिप्टस, सिल्वर ओक, हेविया ब्रासिलिएन्सिस, पोपलर आदि शामिल हैं। चूंकि शुरुआती शोध शंकुवृक्ष पर केंद्रित था, भारतीय उगाई जाने वाली चौड़ी पत्ती वाली वृक्षारोपण प्रजातियों से इसलिए सीएलटी बनाने में काफी कठिनाई होती है। कुछ लकड़ियाँ, जैसे कि मेलिया की लकड़ी, बहुत हल्की होती हैं, जबकि अन्य, जैसे यूकेलिप्टस प्रजाति, काफी घनी होती हैं। इसके अलावा अलग–अलग जलवायु में उत्पादन एवं गोंद का चयन भी एक महत्वपूर्ण पक्ष है। विभिन्न लकड़ी के गुणों की बड़ी विविधता के कारण, सीएलटी के उत्पादन में कई चुनौतियाँ शामिल हैं।

व्यापक शोध के बावजूद, कोई भी बोर्ड सामग्री (प्लाईवुड, पार्टिकल बोर्ड, फाइबर बोर्ड, आदि) संरचनात्मक अनुप्रयोगों में उपयोग के लिए पर्याप्त विश्वसनीय साबित नहीं हुई है। क्रॉस–लेमिनेटेड टिम्बर (सीएलटी) एक नवीन सामग्री है जिसका उपयोग फर्श और दीवारों जैसे संरचनात्मक उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है; इस समकोणीय व्यवस्था में लकड़ी के बोर्डों को सरंचनात्मक गोंद की मदद से जोड़कर बनाया जाता है।

सीएलटी उस कंक्रीट का अधिक टिकाऊ विकल्प है जिसे वह प्रतिस्थापित करता है। इसे बनाने में न्यूनतम मेहनत लगती है और निर्माण पूरा होने के बाद इसका निपटान करना आसान होता है। भारत जैसे देश में, जहां 'ग्रीन बिल्डिंग' पहले से ही व्यापक रूप से स्वीकार की जाती है, सीएलटी लकड़ी को निर्माण सामग्री के रूप में उपयोग करने और शब्द फैलाने का अवसर प्रदान करता है। अधिकतर कच्चा माल वृक्षारोपण प्रजातियों से होगा इसलिए उत्पादों का स्थायित्व एक मुद्दा होगा। इस तरह के मुद्दों को दूर करने के लिए संभावित लकड़ी परिरक्षक का उचित उपयोग महत्वपूर्ण हो सकता है। इसमें सभी बिंदु शामिल होंगे–परिरक्षक का प्रकार, इसके उपयोग की अनुपात विधि आदि। लकड़ी के साथ आग के बढ़ते जोखिम के कारण, यह आवश्यक है कि लकड़ी के उत्पाद कठोर परीक्षण से गुजरें और केवल अनुमोदित अग्निरोधी सामग्री का उपयोग करें।

- चिपकने वाले जो फॉर्मल्डेहाइड देते हैं, इस वजह से एक समस्या है। इस कारण से, गोंद विकसित करने की कोशिश करने से पहले, इसकी उत्सर्जन दर का आकलन करना महत्वपूर्ण है।
- सीएलटी के क्षेत्र में नवाचार जिसमें नए गोंद, प्रजातियों के संयोजन, इंटरलॉक्ड सीएलटी का परिचय, डॉवेल लेमिनेटेड टिम्बर, नेल लेमिनेटेड टिम्बर आदि शामिल हैं।

- गोंद बंधित और यंत्रवत बंधित सीएलटी के गुणों की तुलना।

निष्कर्ष :

इमारती लकड़ी जो स्थायी रूप से प्रबंधित वनों से शुरू होती है, केवल व्यापक रूप से उपयोग की जाने वाली निर्माण सामग्री है जो वास्तव में नवीकरणीय है, और इसीलिए टिकाऊ भी है। इमारती लकड़ी का उत्पादन दशकों के एक 'मानव काल' के करीब संचालित होता है, जिसमें धातु के लिए अयस्क और कंक्रीट के लिए चूना पत्थर जैसी सामग्री बनाने के लिए सदियों और सहस्राब्दियों के बजाय 35 से 70 वर्षों तक चलने वाले स्थायी वानिकी चक्र होते हैं।

उच्च घनत्व पर निर्माण करने की आवश्यकता इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि शहरीकरण और जनसंख्या विस्तार से निकट भविष्य में सीमित मात्रा में भूमि पर दबाव जारी रहेगा। इसका परिणाम अक्सर ऐसी संरचनाओं में होता है जो अधिक ऊँचाई की होती हैं। इसके गुणों के कारण, विशेष रूप से तथ्य यह है कि यह आसानी से आग पकड़ सकता है, लकड़ी को ऐतिहासिक रूप से केवल कम वृद्धि वाली संरचनाओं के निर्माण में उपयोग करने में सक्षम होने तक सीमित कर दिया गया है। नए प्रदर्शन–आधारित अग्नि नियम, काष्ठ अभियांत्रिकी में प्रगति, और बड़े पैमाने पर लकड़ी के घटकों जैसे क्रॉस लेमिनेटेड लकड़ी (सीएलटी) के विकास ने इस तथ्य में योगदान दिया है कि लकड़ी के उत्पादों को अब मध्य और उच्च वृद्धि संरचनाओं के निर्माण में नियोजित किया जा सकता है। इनका निर्माण कंक्रीट और स्टील से बनी संरचनाओं के समान विशिष्टताओं के लिए किया जाना संभव है, जिससे ये एक व्यवहार्य विकल्प बन जाते हैं। लकड़ी के साथ निर्माण के पारंपरिक तरीकों के विपरीत, क्रॉस–लेमिनेटेड टिम्बर (सीएलटी) निर्माण का उपयोग अब मध्य और उच्च वृद्धि वाली संरचनाओं के निर्माण के लिए किया जा सकता है, जो महत्वपूर्ण व्यावसायिक संभावनाएं प्रस्तुत करता है। इसके हल्के डिजाइन के कारण, सीएलटी का उपयोग अन्य निर्माण सामग्री की तुलना में व्यापक निर्माण स्थलों पर किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यह पर्यावरण के अनुकूल वास्तुकला के विचार में योगदान देता है, जिसने इस दशक के दौरान बहुमत के हित पर कब्जा कर लिया है।

1990 के दशक के दौरान, यूरोप क्रॉस–लेमिनेटेड इमारती लकड़ी के विचार का जन्म स्थान था, जो बाद में दुनिया के बाकी हिस्सों में फैल गया। भारत के संबंध में, शोध के पहलू पर किसी भी तरह से बहुत अधिक प्रयास नहीं किए गए हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य विचार प्रदान करना और आवश्यक उचित शोध और एक सजग दृष्टिकोण प्रदर्शित करना है। सौर ऊर्जा के क्षेत्र में अग्रणी होने के बाद यह आवश्यक है कि भारतीय उपमहाद्वीप ग्रीन बिल्डिंग की अवधारणा का उपयोग करके निर्माण के क्षेत्र में काम करने वाला एक प्रमुख राष्ट्र बने और सीएलटी जैसी अवधारणाओं का उपयोग करके ऐसे उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

***

जंगली जामुन (प्रूनस कोर्नाटा) एक बहुउपयोगी जंगली खाद्य पौधा

कुलदेश कुमार, तकनीकी अधिकारी
दृष्टि, वरिष्ठ तकनीशियन
हिमालयी वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

परिचय :

प्रूनस कोर्नाटा (Prunus cornuta (Wall. ex Royle) रोजेसी फ़ैमिली से संबंधित, आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण, एक बहुउपयोगी जंगली खाद्य पौधा है। इसे बर्ड चेरी या जंगली जामुन के नाम से भी जाना जाता है। स्थानीय भाषा में इसे जमना, जमोई, जामु, जामुन जौंसर–जमनोई, जमोल, जमरोई आदि नामों से जाना जाता है। जहां कश्मीर में इसे जामन या जंबुचुले बुलाया जाता है वही कुमाऊँ क्षेत्र में इसे जमुना, बोम्बास्किंग या बोम्बाली आदि नामों से जाना जाता है। इस वृक्ष के फल जंगली जानवरों और पक्षियों का पसंदीदा भोजन होने के साथ ही इसकी पत्तियाँ पशुओं के लिए चारे के रूप में उपयोग में लायी जाती हैं।

जंगली जामुन का पेड़

विवरण :

जंगली जामुन एक पर्णपाती वृक्ष है जो 18 मीटर तक की ऊंचाई वाला हो सकता है। इसकी छाल हल्के भूरे से भूरे रंग की होती है। इसकी पत्तियां अंडाकार से लेकर भाले के आकार की चोंचदार, दंताकार पर्ण तट तथा 10–15 सें०मी० तक लंबी हो सकती हैं। पेड़ पर अप्रैल से जून तक फूल लगते है जो सफ़ेद रंग के तथा 5–7.5 मि०मी० तक लंबे होते हैं। फल 7–13 मि०मी० व्यास वाला तथा गोल होता है। शुरुआत में फल हरे या हल्के लाल रंग का होता है जो पकने पर गहरे बैंगनी या काले रंग का होता है। फल मई से जून महीने तक लगते हैं जो जून से अगस्त महीने तक पकते हैं। पौधे की ऊंचाई और पत्ती की रचना के आधार पर जंगली जामुन की दो किस्मों कोर्नाटा और विलोसा का उल्लेख मिलता है।

वितरण :

यह वृक्ष विस्तृत ऊंचाई वाले क्षेत्रों के लिए अनुकूलित है। अधिकांशतः जंगली जामुन का पेड़ हिमालय में जम्मू कश्मीर से सिक्किम 2100–3500 मीटर तक की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। कोर्नाटा किस्म (वेरायटी) जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, तमिलनाडु, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, असम, नेपाल और भूटान में पायी जाती है, जबकि विलोसा किस्म (वेरायटी) जम्मू एवं कश्मीर, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, भूटान, अफगानिस्तान, यूरोप, उत्तर

जंगली जामुन का फूल और फल

की ओर साइबेरिया और पश्चिम चीन तक पायी जाती है।

हिमाचल प्रदेश में यह शिमला जिले के नारकंडा, कुफ़री, खड़ापत्थर, कुप्पड़धार, चांसल, किन्नौर जिले की भावा वैलि, रुपि, बड़ा खंबा, कटगाओं, सांगला, रकच्छम, कुल्लू जिले के हमटा जंगल, कोठी, चिकाधार, तोश, तुलगा फुलगा, खीरगंगा, ग्रेट हिमालयन राष्ट्रीय उद्यान, सिरमौर जिले के चूड़धार आदि क्षेत्रों में पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश की भावा वैलि में जहां यह 1500–4500 मीटर की ऊंचाई तक भी पाया गया है। वही प्रदेश के शिमला जिले के खड़ापत्थर क्षेत्र में यह 2000–3200 मीटर की ऊंचाई तक पाया गया है।

उपयोग :

1. प्रूनस कोर्नाटा का फल पोषक तत्वों से भरपूर और खाने योग्य होता है। इसका फल क्षेत्र में पाये जाने वाले पक्षियों का पसंदीदा भोजन है। पके हुए फलों से जूस भी निकाला जाता है। इसके कच्चे फल में प्यास बुझाने का गुण होता है। कच्चे फलों के गुद्दे का उपयोग चटनी बनाने में भी किया जाता है।
2. इस वृक्ष की पत्तियाँ पशुओं के लिए उपयुक्त चारा है। इसकी पत्तियों का चारा पशुओं में दूध उत्पादन को बढ़ाने वाला माना जाता है।
3. इसकी लकड़ी फर्नीचर के रूप में उपयोग की जाती है। साथ ही यह कृषि उपकरणों के हैंडल आदि बनाने के लिए एक अच्छी लकड़ी है।
4. जंगली जामुन की लकड़ी का उपयोग स्थानीय लोगों द्वारा ईंधन की लकड़ी के रूप में भी किया जाता है।
5. वृक्ष से निकलने वाले गोंद का उपयोग एड्हीसिव के रूप में किया जाता है।
6. फल से निकलने वाली गुठली से तेल निकाला जाता है जो बादाम के तेल की तरह स्वाद वाला होता है। तेल का उपयोग खाना बनाने तथा शरीर की मालिश के लिए भी किया जाता है।
7. रोग प्रतिरोधक और ठंड सहनशीलता के गुण होने के कारण प्रूनस कोर्नाटा के स्टॉक पर स्वीट चेरी (प्रूनस अविउम) की कलम भी की जाती है।
8. एक शोध के अनुसार इस वृक्ष की छाल में रोगाणु रोधक गुण भी पाये गए हैं। इस पेड़ की छाल में एंटी आक्सिडेंट एक्टिविटी भी पायी गई है। इसके अलावा परंपरागत रूप से जंगली जामुन का उपयोग एनीमिया को ठीक करने के लिए किया जाता रहा है।

खेती की तकनीक :

जंगली जामुन जंगलों में ही पाया जाता है जिसकी खेती प्रायः नहीं की जाती। क्योंकि यह वन्यजीवों का पसंदीदा भोजन है इसलिए वन विभाग द्वारा इस पौधे को जंगलों में लगाया/उगाया जाता है। इस पौधे की खेती की तकनीक पर बहुत ही कम काम हुआ है। इस पौधे का प्रसार बीजों और नर्सरी में उगाई

गई शाखों की कलम से ही किया जाता है। भौतिक और भ्रूण निष्क्रियता होने के कारण बीजों में बहुत कम अंकुरण होता है जिसके कारण बीजों से इसका प्रसार कठिन है। कठोर बीज आवरण होने के कारण बीजों को या तो यांत्रिक रूप से बीज आवरण को हटाया जाता है या फिर गाढ़े सल्फ्यूरिक अम्ल में बीजों को एक घंटे के लिए डुबोया जाता है। इसके उपरांत पानी से धोकर लगाए गए बीजों में केवल 15–20% तक ही अंकुरण पाया गया है। बीजों की निष्क्रियता खत्म करने के लिए अभी अनुसंधान की आवश्यकता है। इसका प्रसार प्रायः कलमों द्वारा ही किया जाता है। कलमों को जनवरी या जुलाई के महीने में रोपित किया जाता है। इस पौधे के प्रसार की तकनीक पर बहुत ही कम साहित्य उपलब्ध है।

निष्कर्ष :

जंगली जामुन वर्तमान में बहुत ही कम उपयोग में लाया जाने वाला पेड़ है जिसमें स्थानीय लोगों की आर्थिकी बढ़ाने की क्षमता है। प्राचीन काल में इस वृक्ष का उपयोग बहुचलित था परंतु वर्तमान में संकीर्ण खाद्य प्रजातियों के चयन और फर्नीचर का बेहतर विकल्प होने के कारण इसका उपयोग दिनोत्तर कम होता जा रहा है। चूंकि जंगली जानवर और पक्षी इसके फलों को पसंद करते हैं; मानव वन्यजीव टकराव को दूर करने के लिए यह एक उपयुक्त पौधा है जिसे जंगलों या उपजाऊ जमीन की परिधि में लगाने से जंगली जानवरों को फसलों से दूर रखा जा सकता है। कुछ स्थानों में इस पौधे में पुनर्जनन की समस्या भी देखी गयी है जिस पर शोध की आवश्यकता है। कुछ स्थानों में इस पेड़ की पत्तियों में लीफ़ स्पॉट की बीमारी भी देखी गयी है जो पोलीस्टिग्मा रबरम नाम की फंगस के कारण होती है। इसलिए भविष्य में किए जाने वाले वृक्षारोपण कार्यों के लिए प्रजातियों के बेहतर कीट और रोग प्रतिरोधी क्लोन का चयन करने की सख्त आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त इस पौधे पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का कोई भी साहित्य उपलब्ध नहीं है।

***

पर्यावरण

आशा. एस., सहायक
पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय
एकीकृत समन्वय कार्यालय, बेंगलूरु

ईश्वर की श्रेष्ठ रचना है सृष्टि,
पृथ्वी माँ स्वरूप है तो प्रकृति जीवन स्वरूप है।

मानव का जीवन पृथ्वी एवं प्रकृति के बिना निराधार,
स्वच्छ पर्यावरण ही पृथ्वी के अस्तित्व का आधार।

विकास और आधुनिकता ने किया सृष्टि का नुकसान,
शहरों का भौतिक विकास जलवायु परिवर्तन का सबसे बड़ा कारण।

काट रहा है मानव जंगल वन, फैल रहा है खूब प्रदूषण,
पर्यावरण को हम बचाएँ, हम सभी तक ये संदेश फैलाएँ।

पेड़ तो कोई लगाता नहीं, हवा चाहिए शुद्ध ही सबको,
क्यों बिगाड़ें धरा की हालत हम, माता है ये हमारी इसका सम्मान करें हम।

पर्यावरण है जीवन का अंग, प्रदूषण करता है जीवन भंग,
जन जन की है यह अभिलाषा, सुन्दर पर्यावरण हमारी जिज्ञासा।

मृदा संरक्षण में जलवायु परिवर्तन की भूमिका अहम् है,
समाज को प्रकृति से जोड़ने की आवश्यकता है।

प्रकृति के साथ सद्भाव में रहना ज़रूरी,
पृथ्वी में संतुलन बनाए रखना मानव की मजबूरी।

यह है पर्यावरण हमारा, इसकी रक्षा सबका धर्म,
इसमें प्राण बसे हैं सबके, कर ले मानव यह शुभ कर्म।

***

खतरे में हल्दू के पेड़ का अस्तित्व

विवेक वर्मा एवं डॉ फातिमा शीरीन
ईमेलः vivekdevverma@gmail.com
उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान,
जबलपुर, मध्य प्रदेश

हल्द्वानी को जिस प्राचीन वृक्ष से जाना जाता है, वह लुप्त होता जा रहा है। हम इसे न तो देख पाएंगे और न ही भविष्य में इसे नुकसान से बचा पाएंगे। हल्द्वानी भारत के उत्तराखण्ड राज्य के नैनीताल जिले का एक शहर है। यह कुमाऊँ मंडल का सबसे बड़ा शहर है और देहरादून के बाद राज्य का दूसरा सबसे बड़ा शहर है। हल्द्वानी, कुमाऊं का सबसे बड़ा आर्थिक, शैक्षिक, वाणिज्यिक और आवासीय केंद्र है। इसीलिए इसे 'कुमाऊँ का प्रवेश द्वार' कहा जाता है। कुमाऊँनी भाषा में इसे 'हल्द्वेणी' भी कहा जाता है, क्योंकि यहाँ 'हल्दू' प्रचुर मात्रा में मिलता था।

प्राचीन हल्दू का पेड़ अब दुर्लभ है और हम मनुष्यों के कारण जीवित रहने के लिए संघर्ष कर रहा है। सुभद्रा कुमारी चौहान जी ने हल्दू के घने वृक्ष को सराहते हुए कविता लिखी है, जिसमें उन्होंने हल्दू को माँ के समान माना है। पहले यह पेड़ अपने आप उग जाता था, लेकिन अब नमी की कमी के कारण बीजों का अंकुरित होना मुश्किल है। वन अनुसंधान केंद्र अब इसे संरक्षित करने में मदद के लिए हल्दू के पेड़ लगा रहा है। यह पेड़ 110 फीट लंबा और 20 फीट चौड़ा हो सकता है। इसकी लकड़ी का उपयोग टेबल और कुर्सियों जैसे फर्नीचर बनाने के लिए किया जाता है और इसका उपयोग कंघे और बंदूक जैसी चीजें बनाने के लिए भी किया जाता है। हल्दू जैव विविधता के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एक ऐसा पेड़ है जो नम स्थानों में भी उग सकता है।

जैव विविधता के लिए भी उपयोगी

हल्दू का पेड़ जैव विविधता के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एक स्वच्छ वायु वातावरण बनाने में मदद करता है, साथ ही पक्षियों, बंदरों, गिद्धों और चील सहित कई अलग–अलग जीवों के लिए एक घर भी है। इस पेड़ की पत्तियों का उपयोग भोजन के लिए भी किया जाता है और पेड़ की टहनियों का उपयोग आग जलाने के लिए किया जाता है।

बीज अंकुरित होने के लिए चाहिए पर्याप्त नमी

वन अनुसंधान केंद्र के शोध का कहना है कि हल्दू का बीज बहुत छोटा होता है यह काफी बड़ी संख्या में होता है। यही कारण है कि पहले हल्द्वानी के चारों तरफ हल्दू के बहुत सारे पेड़ हुआ करते थे। लेकिन अब क्योंकि लोगों ने शहर का निर्माण कर लिया है, हल्दू के बीजों को उगाने के लिए जो पानी जरूरी था; वह अब उपलब्ध नहीं है। इसका मतलब है कि हल्दू के पेड़ों के विलुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है।

हल्दू की लकड़ी मजबूत होती है और उसमें सुंदर चमक होती है। यह अकसर अलमारी और दुकानों के साथ–साथ फर्नीचर डिजाइन के लिए रैक बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इस लकड़ी पर काम करना आसान है और यह किसी भी सेटिंग में अच्छा दिखता है।

छाल का प्राकृतिक रंग के रूप में इस्तेमाल

हल्दू के पेड़ की छाल का इस्तेमाल प्राकृतिक रंग बनाने के लिए किया जाता है, जिसका इस्तेमाल खाद्य पदार्थों सहित कई चीजों को रंगने के लिए किया जा सकता है। इसका रंग विशेष रूप से सुंदर है और कई जगहों पर इस्तेमाल किया जा सकता है।

पहाड़ियों की तलहटी में उगने के लिए सबसे अच्छी जगह हल्दू का पेड़ पहाड़ियों की तलहटी में पाया जाता है। इसलिए इसके लिए हल्द्वानी सबसे अच्छी जगह है। यह पेड़ टनकपुर और चंपावत की तलहटी में पाया जाता है। इस कारण उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र इसके लिए बेहतर हैं।

इस तरह संरक्षित कर सकते हैं हम हल्दू का पेड़

वन अनुसंधान केंद्र, जबलपुर के अनुसार हल्दू पेड़ की उपयोगिता को देखते हुए इसे संरक्षित करना शुरू कर दिया गया है। इसके लिए पौधालय तकनीक विकसित की गई है। बीज अंकुरित करने के साथ ही वर्धी प्रजनन अथवा वानस्पतिक पुनरोत्थान के माध्यम से पौधे तैयार किए जा रहे हैं। स्कूल परिसर, वन क्षेत्र, सार्वजनिक स्थान जैसी तमाम जगहों पर इन पोधों का रोपण किया जा रहा है। इन पौधों का अस्तित्व बचाने के लिए अलग–अलग प्रोजेक्ट्स चलाए जा रहे हैं। इस दिशा में हम सभी को सभी तरह के प्रयास करने चाहिए ताकि हमारा पर्यावरण के प्रति कर्तव्य पूर्ण हो सके।

***

जलवायु और आर्थिक कृषि वानिकी की लाभकारी पद्धतियां

पंकज कुमार और सत्य प्रकाश विश्वकर्मा
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर, मध्य प्रदेश

वैश्विक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कृषि का एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है लेकिन भूमि प्रबंधन में उभरती नई पद्धतियों में उत्सर्जन को कम करने की क्षमता होती है, अत्यधिक गहन पद्धतियों के कारण होने वाले पारिस्थितिक और जलवायु संबंधी नुकसान के बारे में पता चलता है। ऐसा ही एक प्रयास कृषि पद्धतियों या कृषि वानिकी में वृक्षों की खेती और संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण है, इसमें कई महत्वपूर्ण सह–लाभों के साथ आकर्षक समाधान भी निहित है।

ऐसी कई पद्धतियां हैं, जिनका उपयोग कृषि वानिकी के लिए किया जा सकता है जिनमें से कुछ को काम में लाया गया है, हज़ारों सालों से इस तरह की विधियों में एली क्रापींग (वृक्षों की एकल पंक्तियों को लगाना शामिल है जैसे बीच–बीच में फ़सलें उगाना) वन चारागाह या पशुओं के साथ पेड़ों को मिलाना चरागाह क्षेत्र वन खेती और अन्य कृषि पद्धतियों में पेड़ों को जोड़ना निश्चित रूप से जटिल हो सकता है और विभिन्न स्थितियों में लागू करना मुश्किल हो सकता है और ऐसा कोई एक मॉडल नहीं है जो हर किसी के लिए व्यावहारिक हो, लेकिन क्षेत्र के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। जैसे कि बहुत वृक्षों को शामिल करने से अधिक प्रजातियों का परिचय होता है जिससे आमतौर पर एक या अनेक प्रजातियों की नई पद्धतियों के बारे मे पता चलता है और बदले में फसल उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए सुधार किए जाते हैं।

जलवायु प्रभाव को कम करने के लिए अग्रणी कृषि द्वारा कार्बन पृथक्करण प्रक्रिया होती है जो कार्बन को वायुमंडल से खींचकर पद्धति के विभिन्न घटक (वृक्ष एवं फसलों के जैव भार में) में वृद्धि करती है। फसल और अन्य कृषि वानिकी पद्धतियों में कार्बन की मात्रा खाद और मिट्टी पर निर्भर करती है। सामग्री और मिट्टी की गुणवत्ता लंबी अवधि के लिए कृषि वानिकी पद्धतियों को अपनाया जाता है।

इसके अतिरिक्त अध्ययनों से पता चला है कि कृषि वानिकी खराब स्थिति में मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार और उसे बहाल कर सकती है भूमि उन देशों में, जो अपनी आय के मुख्य स्रोत के रूप में छोटे पैमाने के खेतों पर निर्भर होते हैं, ये पद्धतियाँ कृषि उत्पादकता में वृद्धि के माध्यम से जीवन स्तर में सुधार कर सकती हैं। कृषि वानिकी के माध्यम से चरागाहों को भी बहाल किया जा सकता है जिससे समुदायों को अपने पशुधन को बेहतर ढंग से बनाए रखते हैं।

कृषि वानिकी के विभिन्न प्रभाव तीन मुख्य क्षेत्रों में बंटे हैं जहां कृषि वानिकी सकारात्मक भूमिका निभा सकती है जैसे कि जलवायु दबाव को कम करना,

मिट्टी की गुणवत्ता और जैव विविधता में सुधार और स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को मजबूत करना तथा इन क्षेत्रों में इसके प्रभाव के कारण, कृषि वानिकी को प्रमुख माना जाना है।

कृषि वानिकी से विकासशील देशों में सामाजिक और आर्थिक स्थितियों में सुधार की काफी संभावनाएं होती हैं जैसे कि देश में मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार और कार्बन के माध्यम से जलवायु परिवर्तन को कम करने की इसकी क्षमता को अधिक महत्वपूर्ण देशों में इसे एक आकर्षक कृषि पद्धति भी बनाना चाहिए जिससे कि आर्थिक संसाधन या बड़ी कृषि पद्धतियों में इन लाभों के कारण कृषि वानिकी जारी रखनी चाहिए। उदाहरण के लिए छोटी आबादी में कृषि वानिकी को तब तक शुरू नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि इसे स्थानीय परिवेश में स्वीकार नहीं किया जाए जब तक कि तकनीकी ज्ञान और सटीक जानकारी पूर्ण न हो। ताकि कृषि वानिकी पद्धतियों को सफलतापूर्वक लागू किया जा सके साथ ही पूर्व में किए गए शोध या अध्ययन द्वारा यह निष्कर्ष निकलता है कि कम कृषि प्रभाग में कृषि वानिकी सफल साबित हो सकती है।

***

दम तोड़ती दिल्ली की यमुना

हरप्रीत कौर कालरा,
वरिष्ठ अनुवादक,
राष्ट्रीय प्राकृतिक विज्ञान संग्रहालय, दिल्ली

भारतीय संस्कृति में नदियों को पूजनीय स्थान प्राप्त है। भारत के पौराणिक ग्रंथों में प्रकृति के महत्व को भली–भाँति उजागर किया गया है। भारत की 'गंगा मैया' की विशालतम सहायक नदी है यमुना। यमुना का उद्गम उत्तराखंड का यमुनोत्री ग्लेशियर है। यमुना भारत के सात राज्यों में बहती हुई, संगम (प्रयागराज, उत्तर प्रदेश) में गंगा से जा मिलती है। यमुना न केवल धार्मिक बल्कि सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण धरोहर है। लगभग 57 मिलियन लोग यमुना के पानी पर निर्भर करते हैं। करीबन 10,000 क्यूबिक बिलियन मीटर पानी के वार्षिक बहाव से दिल्ली की 70 प्रतिशत पानी की पूर्ति यमुना से होती है। हिंदू संस्कृति में यमुना को 'देवी यमुना' के रूप में पूजा जाता है तथा पुराण के अनुसार यमुना 'सूर्य की पुत्री' तथा 'यम की बहन' है। मान्यता है कि इस पावन नदी में स्नान करने से मनुष्य के सभी पाप धुल जाते हैं। पर क्या दिल्ली की यह यमुना अब भी वास्तव में पावन है या हमने इसे अपवित्र कर दिया है?

हालाँकि दिल्ली में यमुना केवल 22 कि.मी. के दायरे में बहती है जो कि इसकी कुल लंबाई का मात्र 2 प्रतिशत है, लेकिन यमुना को 80 प्रतिशत प्रदूषण दिल्ली ही देती है। दिल्ली की घनी आबादी तथा औद्योगीकरण के कारण यमुना भारत की सबसे ज्यादा प्रदूषित नदी है, खासकर दिल्ली में यह अत्यधिक प्रदूषित है। दिल्ली में लगभग 58 प्रतिशत अनुपचारित (untreated) या आंशिक रूप से उपचारित अपशिष्ट (waste) नदी में डाल दिया जाता है। यहाँ यमुना के अत्यधिक प्रदूषित होने का यही मुख्य कारण है।

दिल्ली के 22 किलोमीटर के फैलाव में यमुना में कुल 22 नालों की 'वेस्ट स्ट्रीम्स' मिलती हैं। शोध के अनुसार, यमुना में गिरने वाले नालों में से वज़ीराबाद और नजफ़गढ़ नाला इसके कुल प्रदूषण के 58 प्रतिशत के लिए ज़िम्मेदार हैं। इनमें भी नजफ़गढ़ नाला सबसे अधिक प्रदूषित है। नजफ़गढ़ नाला प्रदूषण लोडिंग का 171.7 टन प्रतिदिन यमुना में बहा देता है।

दिल्ली प्रदूषण नियंत्रण समिति तथा केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) द्वारा यमुना प्रदूषण नियंत्रण समिति को प्रस्तुत की गई एक रिपोर्ट के मुताबिक दिल्ली का कम से कम 90 प्रतिशत घरेलू अपशिष्ट पानी यमुना में जाता है। यह अपशिष्ट पानी मुख्यतः घरेलू गतिविधियों से आता है जिसकी वजह से

इसमें डिटरजेंट, लॉन्ड्री केमिकल तथा फॉस्फेट कंपाउंड अत्यधिक मात्रा में पाए जाते हैं। सामान्य रेंज 0.0005–0.05 मिलीग्राम प्रति लीटर से अधिक फॉस्फेट कंसेंट्रेशन होने पर नदी में जगह–जगह पर जहरीली झाग की परत उत्पन्न हो जाती है।

पानी की गुणवत्ता की मॉनिटरिंग से यमुना के पानी में काफ़ी मात्रा में हैवी मेटल पाए गए हैं। निकल, ज़िंक, कॉपर, आयरन, लेड आदि यमुना के पानी में हानिकारक मात्रा में मौजूद हैं। इनमें से आयरन/लौह (Fe) अधिकतम तथा सामान्य सीमा से ज्यादा मात्रा में पाया गया। पानी में हैवी मैटल की अत्यधिक मात्रा से स्वास्थ्य पर गंभीर असर पड़ता है। ये शारीरिक विकास को घटा देता है, अंगों व तंत्रिका प्रणाली को नुकसान पहुँचाने के साथ–साथ कर्क रोग (कैंसर) जैसे गंभीर रोगों का कारण बनता है।

त्यौहारों के दौरान घटिया लेड, क्रोम पेंट तथा प्लास्टर ऑफ पैरिस से बनी मूर्तियाँ नदी में विसर्जित कर दी जाती हैं। विभिन्न आस्थाओं के बीच भारत

में पूजा–अर्चना के बाद की सामग्री जैसे पॉलिथीन बैग, फूल, साज–सज्जा का सामान आदि नदी में ही विसर्जित कर दिए जाते हैं। सीपीसीबी द्वारा पाया गया है कि विसर्जन के उपरांत क्रोमियम तथा आयरन जैसे हैवी मेटल्स के स्तर में बहुत वृद्धि होती है। सीपीसीबी की रिपोर्ट के अनुसार पानी में क्रोमियम की मात्रा स्वीकार्य सीमा से 11 गुना तथा आयरन की मात्रा स्वीकार्य सीमा से 71 गुना बढ़ जाती है। यदि इस पानी का उपचार नहीं किया जाता है तो संभावना है कि विषैले पदार्थ फ़्लडप्लेन पर उगाई जा रही सब्ज़ियों के माध्यम से फूड चेन में प्रवेश कर जाएँ।

नदी के प्रदूषण का कारण अनुपचारित सीवेज भी है। यद्यपि दिल्ली के विभिन्न हिस्सों में सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट बनाए गए हैं तथापि इन सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट्स से उपचारित या आंशिक रूप से उपचारित सीवेज अपशिष्ट सीधा अथवा कैरियर नालों द्वारा नदी में फेंका जा रहा है। बिजली न होने, मशीनी खराबी अथवा अनुरक्षण के अभाव के कारण ठप पड़े सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट से कई बार अनुपचारित सीवेज सीधे नदी में चला जाता है जिससे पानी और अधिक दूषित हो जाता है। इसी कारण से यमुना में जैविक प्रदूषण बढ़ गया है और पानी की रसायन ऑक्सीजन डिमांड बहुत अधिक हो गई है।

यमुना के किनारे, हर कुछ फीट की दूरी पर प्लास्टिक के कचरे के ढेर मिल जाते हैं। इनमें ज्यादातर कूड़ा सिंगल यूज़ प्लास्टिक होता है जो खुले नालों में फ़ेंके गए कचरे के साथ नदी में प्रवेश कर जाता है। इसमें रिसाइकिल किए जा सकने वाला प्लास्टिक अपशिष्ट भी शामिल है।

औद्योगीकरण यमुना के प्रदूषित होने का प्रमुख कारण है। यमुना प्रदूषण पर किए गए अनुसंधान के अनुसार औद्योगिक क्षेत्रों में क्षारीय (अल्कलाइन) डिटरजेंट के बढ़ते प्रयोग तथा अन्य क्षारीय अपशिष्ट के कारण यमुना में गिरने वाले नजफ़गढ़ नाले का पी.एच. मान (pH) बहुत बढ़ा हुआ है। अधिकांश नदियों का pH neutral होता है लेकिन यमुना का pH इससे अधिक है। यमुना क्षारीय होती जा रही है और pH के बढ़ने से पानी में विषैले रसायन आसानी से घुल जाते हैं जो जलीय जीवों के लिए खतरनाक हैं।

यमुना का दिल्ली में प्रवेश स्थान–पल्ला, यहाँ यमुना कम प्रदूषित है

विभिन्न शोध बताते हैं कि यमुना के पानी में घुले हुए अजैविक पवदे जैसे कैल्शियम, मैग्निशियम, सल्फ़ेट, क्लोरीन आदि सामान्य सीमा से बहुत अधिक मात्रा में पाए गए हैं जिसके कारण इसकी इलेक्ट्रिकल कंडक्टीविटी सामान्य सीमा से अधिक है। किसी पदार्थ/सॉल्यूशन की पानी में करंट कंडक्ट करने की क्षमता को कंडक्टीविटी कहते हैं।

हाल ही में हुए शोध के अनुसार यमुना के पानी में टी.डी.एस. (वज़ीराबाद के पास) तथा अमोनिया की अत्यधिक मात्रा पाई गई। स्वीकार्य सीमा से अधिक अमोनिया होने पर पानी अनुपचारिक (untreatable) हो जाता है।

सरकार द्वारा लाई गई यमुना ऐक्शन प्लान तथा यमुना शुद्धिकरण ड्राइव जैसी योजनाएँ वास्तविकता के धरातल पर तभी सफल और संधारणीय सिद्ध होंगी जब ये सामाजिक, पर्यावरणीय तथा आर्थिक पक्षों में संतुलन पैदा करने की क्षमता रखती हों। इन सभी पक्षों को ध्यान में रखकर बनाई गई परियोजनाएँ सभी के लिए लंबे समय तक लाभप्रद होंगी। यमुना की स्थिति को सुधारने के लिए प्रशासन

दिल्ली में यमुना की हालत

स्तर पर कई उपाय किए जाने चाहिए जैसे– अधिक सार्वजनिक शौचालयों का निर्माण जिससे नदी में जाने वाले सीवेज को कम किया जा सके, मूर्तियाँ बनाने हेतु प्लास्टिक व हानिकारक सामग्री पर बैन लगाना तथा ईको–फ्रेंडली मूर्तियों को सस्ते दामों में आम जनता को उपलब्ध कराना, अस्पतालों तथा उद्योगों द्वारा नदी में फेंके जा रहे अपशिष्ट पर नियमों का कठोर क्रियान्वयन सुनिश्चित करना, मानक नियमों का अनुपालन न करने वाले वर्तमान सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट का उन्नयन करना, ऑटोमेटेड नदी गुणवत्ता मॉनिटरिंग प्रणाली विकसित करना, जनता जागरूकता अभियान आदि। प्रशासन व सरकार के प्रयासों को सफल बनाने में क्षेत्रीय जनता द्वारा अपनाई गई ईको–फ्रेंडली जीवनशैली और यमुना की बेहतरी के प्रति किए गए उपाय बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। वर्षा जल–संचयन प्रणाली के प्रयोग से पानी की घरेलू आवश्यकता को पूरा करना, केवल जैविक सामग्री से निर्मित ईको–फ्रेंडली मूर्तियों का ही प्रयोग करना, सिंगल यूज़ प्लास्टिक का प्रयोग न करना आदि इसमें शामिल हैं। इसके साथ ही अब नदियों के महत्व को समझते हुए पूजा–आस्था आदि से संबंधित सामान नदी में प्रवाहित न किया जाए। इससे बेहतर तो इनमें कुछ सामान किसी ज़रूरतमंद के काम में लाया जाए। इसके अलावा प्रशासन द्वारा ऐसी अपशिष्ट प्रबंधन प्रणाली का निर्माण किया जाना चाहिए जिसमें अपशिष्ट को रिसाइकिल तथा अपसाइकिल करना समुदाय की आजीविका का साधन बन सके खासतौर पर 'रैगपिकर' इस अपशिष्ट से आजीविका अर्जित कर सकते हैं।

सरकार व जनता द्वारा किए गए इन 'ग्रीन' उपायों से संभव है कि यमुना का काला पानी जो कभी बिल्कुल साफ़ हुआ करता था, वापिस अपने मूल रूप जैसा हो सके। ज़रूरत है कि सभी उपाय निरंतर व नियमित रूप से संगठित व कठोर क्रियान्वयन के साथ किए जाएँ।

संदर्भः–

1. International Journal of Scientific Research
2. सीपीसीबी की विभिन्न रिपोर्टें
3. सभी फ़ोटो–Google

***

तितलियाँः एक मूल्यवान पर्यावरणीय संकेतक

शिवानी भटनागर, अमीन उल्लाह खान,
राज कुमार सुमन एवं ममता सांखला
वन संरक्षण प्रभाग, शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान,
जोधपुर

तितलियों की आबादी को स्वस्थ पर्यावरणीय दशाओं के संकेतक के तौर पर जाना जाता है। परागण, खाद्य श्रृंखला और पारिस्थितिकी तंत्र में भी तितलियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है लेकिन प्रदूषण, कीट नाशकों के उपयोग, जंगलों की कटाई और जलवायु परिवर्तन से तितलियों की आबादी पर संकट मंडराने लगा है।

तितलियाँ प्रकृति की सुंदर रचनाएँ हैं जो 'ऑर्डर लेपिडोप्टेरा' से संबंधित हैं। हमें तितलियों की आवश्यकता है क्योंकि वे जैव–संकेतक हैं जो एक पारिस्थितिकी तंत्र में थोड़े से बदलाव को महसूस कर सकती हैं। तितलियाँ अनगिनत कारणों से हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं जिनमें निश्चित रूप से उनकी सुंदरता, अद्वितीय जीवन इतिहास, उनके निवास स्थान के विभिन्न अनुकूलन, उनका प्रवास और ऐसे कई पहलू शामिल हैं। तितलियों का शरीर तीन भागों में विभाजित होता है : सिर, वक्ष और उदर तथा इनके पास दो जोड़ी 'स्केली' पंख और तीन जोड़ी पैर व दो संयुक्त नेत्र होते हैं। वयस्क तितलियां फूलों से नेक्टर व पोलन प्राप्त कर अपना पालन–पोषण करती हैं व लार्वा पहले शाकाहारी होते हैं व पेड़–पौधों के पत्ते खाते हैं। चूंकि तितलियों को लार्वा, प्यूपा और वयस्क अवस्था में जीवित रहने के लिए सभी प्रकार की वनस्पतियों की आवश्यकता होती है, इसलिए उनका आदर्श आवास घास, जड़ी–बूटियाँ, झाड़ियों और फूलों के पेड़ों का मिश्रण है। तितलियाँ मधुमक्खियों की तरह, पौधों में परागण करती हैं। वे विभिन्न प्रकार के पक्षियों, मकड़ियों, सरीसृपों, उभयचरों, स्तनधारियों और अन्य जानवरों के लिए खाद्य स्रोत भी हैं।

तितलियाँ पौधों की प्रजातियों को परागित करने में मदद करती हैं। तितलियों की बहुतायत अकसर एक संकेत है कि एक पारिस्थितिकी तंत्र संपन्न हो रहा है। यह इस तथ्य के कारण है कि तितलियाँ शिकारियों और शिकार के रूप में खाद्य श्रृंखला का एक महत्वपूर्ण घटक हैं। वयस्क तितलियाँ और

कैटरपिलर अन्य जानवरों जैसे चमगादड़ और पक्षियों के भोजन का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। अगर तितलियाँ पृथ्वी से खत्म हो जाएं तो सेब से लेकर कॉफी तक कई खाद्य फसलों के स्वाद से हम वचिंत हो जाएंगे। तितलियां जब फूलों का रस पीकर परागण करती हैं, तो फूलों का रूपांतरण फल में संभव हो पाता है। संयुक्त राष्ट्र की संस्था फूड एंड एग्रीकल्चर ऑर्गेनाइजेशन के अनुसार दुनिया की 75 प्रतिशत खेती परागण पर निर्भर करती है। पर्यावरणविदों का मानना है कि तितलियों के खत्म होने का असर दूसरे जीवों पर भी पड़ सकता है क्योंकि उनके अंडो से बने लार्वा और प्यूपा कई दूसरे जीवों का भोजन होते हैं। तितलियाँ अपने वितरण में लगभग दुनिया भर में हैं और पर्यावरण परिवर्तन के अत्यधिक संवेदनशील संकेतक हैं। ये खाद्य श्रृंखला में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और साथ ही पौधों की परागणकर्ता भी हैं। कीट संरक्षण के लिए तितलियों को महत्वपूर्ण माना जाता है (नया एटआल, 1995; स्मेटसेक,1996)। स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र (गज़ौल, 2002) के तहत पर्यावरण गुणवत्ता मूल्यांकन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के कारण, दुनिया भर में इन पर अधिक ध्यान दिया जाता है। सूक्ष्म आवास या जलवायु परिवर्तन के प्रति उनकी तीव्र और संवेदनशील प्रतिक्रियाओं और अन्य वन्य जीवों की विविधता और प्रतिक्रियाओं के प्रतिनिधियों के रूप में, तितलियों को आज मूल्यवान पर्यावरणीय संकेतक के रूप में पहचाना जा रहा है।

भारत, जैव संसाधनों की समृद्ध विविधता वाला एक विशाल देश है। भारतीय प्राणी विज्ञान सर्वेक्षण के अनुसार भारत में तितलियों की 1,318 प्रजातियां दर्ज की गई हैं। अंतरराष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (आई.सी.यू.एन) के अनुसार भारत में तितलियों की 35 प्रजातियां अपने अस्तित्व के लिहाज से गंभीर रूप से संकट ग्रस्त हैं। आई.सी.यू.एन ने भारत की 43 प्रजातियों को संकट–ग्रस्त और तीन तितली प्रजातियों को न्यूनतम रूप से विचारणीय संकट–ग्रस्त श्रेणियों में रखा है। प्राकृतिक संसाधनों के अवैज्ञानिक प्रबंधन के कारण हमारी अधिकांश तितलियाँ तेजी से लुप्त हो रही हैं। विभिन्न कारणों जैसे औद्योगीकरण, वनों की कटाई, जंगलों में आग, कीटनाशकों का अधिक प्रयोग, अधिक चराई और तितलियों के लार्वा एवं वयस्क के लिए खाद्य पौधों की कमी के कारण, निकट भविष्य में तितली की आबादी गंभीर रूप से प्रभावित हो सकती है। तितलियों को वन की स्थिति के संभावित पारिस्थितिक संकेतक माना जाता है। यह माना जाता है कि संकेतक प्रजातियों या अन्य प्रजातियों की उपस्थिति/बहुतायत का संकेत देती हैं, या अपनी उपस्थिति या बहुतायत में परिवर्तन के माध्यम से पर्यावरण में रासायनिक/भौतिक परिवर्तनों का संकेत देती हैं (लैंड्रेसएटआल, 1988; सिम्बरलोफ, 1998)। रेड डाटा बुक के अनुसार वन्य प्रजातियों के लिए सब से बड़ा खतरा उन आवासों का विनाश और परिवर्तन है जिन पर वे निर्भर करती हैं जैसे वनों की कटाई, वन क्षेत्रों में कृषि का विस्तार और वानस्पतिक प्रजातियों की आबादी में बदलाव आदि भी कीट विविधता को कम करता है (वेल्सएटअल 1984)। कीट आबादी विश्व स्तर पर तेजी से गिरावट का अनुभव कर रही है (दिरजो एट आल 2014, स्टोर्क एट आल, 2015) जिसका निहितार्थ पारिस्थितिक तंत्र के कार्य और आर्थिक सेवाओं में हो सकता है (एलन–वार्डेलएट आल 1998, पॉट्सएट आल, 2010)

खतरों के प्रभाव और उनके डाउन स्ट्रीम प्रभावों के परीक्षण के लिए तितलियों को आदर्श बायो इंडिकेटर (लेनहार्डएंडविटर, 1977; न्यूमेलिन एट आल 2007) माना जाता है। तितलियों की सीमित फैलाव क्षमता लार्वा फूड प्लांट विशेषज्ञता और मौसम और जलवायु पर घनिष्ठ निर्भरता कई तितली प्रजातियों को सूक्ष्म परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील बनाती है। भूमंडलीय ऊष्मीकरण के कारण पृथ्वी की जलवायु बदल रही है। वायुमंडलीय प्रक्रियाओं में बदलाव हो रहा है मौसम के पैटर्न, गर्म तापमान और अधिक चरम

घटनाएं (कार्ल एट अल 1996 ईस्टरलिंग एट आल 1997, 2000; ग्रोइसमैन एट आल, 1999), जिसका मुख्य कारण औद्योगिकीकरण, वनोन्मूलन आदि हैं (आईपीसीसी, 2001)। विशेष रूप से, तापमान और वर्षा की चरम घटनाएं अब आम होती जा रही हैं। चरम मौसम की घटनाएं प्राकृतिक आबादी समुदायों और पारिस्थितिक तंत्र के कई पहलुओं को प्रभावित करती हैं (परमेसन एटआल, 2000) तथा जैव विविधता पर प्रभाव डालती हैं।

इसलिए तितलियों के संरक्षण के लिए हम सभी को एक साथ आना चाहिए। तितलियों का पर्यावरण में बहुत अहम योगदान है। आज तितलियां धीरे–धीरे कम होती जा रही हैं। आने वाले समय में बड़ी समस्या उत्पन्न न हो इसलिए घर के बागान में, स्कूलों में, बगीचों में जहां–जहां संभव हो फूल वाले पौधे अधिक से अधिक लगाने चाहिए जिन पर तितलियां आकर बैठें और पर्यावरण को संतुलित करने में मददगार साबित हों।

***

पडरी–एक अद्भुत औषधि वृक्ष (Stereospermum chelonoides)

रवि शंकर प्रसाद एवं रिकेश कुमार
वन उत्पादकता संस्थान, रांची, झारखण्ड

विश्व में लगभग 1.6 मिलियन प्रजातियां पायी जाती हैं जिसमें से 81000 प्रजातियां जंतु की और 47000 प्रजातियां पादप की हैं। पूरे विश्व में 50000–80000 पेड़–पौधे औषधि के रूप में इस्तेमाल किए जाते हैं। भारत में पाई जाने वाली पौधों की 17000 प्रजातियों में 8000 प्रजातियां औषधि पौधे के रूप में इस्तेमाल की जाती हैं। भारत की जैव–विविधता बहुत ही अच्छी मानी जाती है यहाँ विश्व की 8 प्रतिशत प्रजातियां पायी जाती हैं। पूरे विश्व में भारत चौथे स्थान पर आता है जो चीन, कोरिया और अमेरिका के बाद है। प्राचीन काल से भारत के अलावा चीन, ग्रीक, सीरिया, इजीप्ट और रोमन लोग औषधीय पौधे का इस्तेमाल विभिन्न प्रकार के रोगों के इलाज में करते आ रहे हैं।

पडरी वृक्ष

भारत के प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों जैसे ऋग्वेद, अर्थववेद, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता में औषधीय पौधों के इस्तेमाल के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है। यहाँ तक कि हमारे धार्मिक ग्रन्थ रामायण में भी औषधीय पौधे के इस्तेमाल को दर्शाया गया है। आज भी भारत की 70 प्रतिशत जनसंख्या गांव में निवास करती है जो अपनी बीमारी के इलाज के लिए जड़ी–बूटी पर ही निर्भर रहती हैं जिसका इलाज वहां के स्थानीय वैद्य किया करते हैं। 19वीं शताब्दी के बाद जब पौधों का रासायनिक विश्लेषण होने लगा तब इसकी महत्ता और बढ़ गई। उसके बाद 1806 में पॉपी से मॉर्फिन और सिनकोना से क्यूनीन निकाला गया। भारत में अभी औषधीय पौधों का बाजार 4.2 बिलियन है जिसे बढ़ाकर 2026 तक 14 बिलियन करने का लक्ष्य रखा गया है। इसके लिए भारत सरकार ने राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड की स्थापना 24 नवंबर, 2000 को की थी जिसने 'ई–चरक' नामक ऑनलाइन मार्केट की शुरुआत की है जहाँ हर कोई अपने उत्पाद को बेच सकता है। चीन विश्व में औषधीय पौधों का सबसे बड़ा उत्पादक और निर्यातक है। झारखंड, जैव–विविधता के मामले

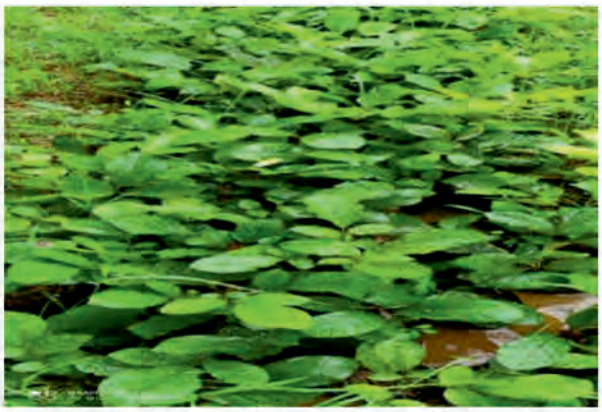

नर्सरी में तैयार पडरी के पौधे

में बहुत ही धनी राज्य है। यहाँ ग्रामीण लोग जंगलों से अनेक प्रकार की जड़ी–बूटी का संग्रह करते हैं जिसके कारण बहुत सी प्रजातियां विलुप्त होती जा रही हैं। झारखण्ड में पायी जाने वाली मुख्य प्रजातियां है, नीम, करंग, आंवला, हर्रे, बहेड़ा, महुआ, कालमेघ, हरजोद, कलिहारी, अर्जु, श्योनक, रति और बज्रदन्ती। पडरी एक पर्णपाती वृक्ष है यह मुख्यता दक्षिण एशिया देशो में तथा इंडो मलेशिया में पाया जाता है। भारत में यह असम, मेघालय, महाराष्ट्र, डक्कन, पश्चिमी घाट, मैसूर, मालाबार, ट्रेवेन्कोर, बिहार, पश्चिम बंगाल और झारखंड में भी पाया जाता है। भारत के अलावा यह बांग्लादेश, कम्बोडिया, म्यांमार, पाकिस्तान, थाईलैंड, लाओस, नेपाल और श्रीलंका में पाया जाता है। झारखण्ड में यह सारंडा,

नर्सरी में तैयार पडरी के पौधे

पडरी के फूल

दलमा, रारहा, खूंटी, कोडरमा घाटी, पालकोट, बुंडू, तमार, हज़ारीबाग इत्यादि क्षेत्रों में पाया जाता है। इसे हिंदी में पटाला,पडरी,कलाकोड और कलागोरु कहा जाता है। तेलगु–पडल, संस्कृत–पुलीला, बंगाली–पारुल, पंजाबी–पडाला और मराठी में पडल कहा जाता है। इसकी दो प्रजातियां पायी जाती हैं, एक को पटाला और दूसरे को सीता पटाला कहा जाता है।

इसके अलावा, इसे 'स्नेक फ्रूट ट्री' भी कहा जाता है। यह समुद्र तल से 700–1300 मीटर तक की ऊंचाई पर पाया जाता है। यह उन स्थानों पर ज्यादा पाया जाता है जहां दैनिक तापमान 24–32 डिग्री सेल्सियस और वार्षिक वर्षा 1200–2400 के बीच पायी जाती है। यह सूर्य की रोशनी में अच्छी तरह पनपता है। यह विभिन्न प्रकार की मिट्टी में होता है परन्तु जहां जल निकासी की अच्छी व्यवस्था तथा मिट्टी का पी. एच. 6–7 के आस–पास होता है वहां यह अच्छी तरह बढ़ता है। यह प्राकृतिक रूप से जड़ तंत्र द्वारा भी बढ़ता है।

अत्यधिक औषधीय गुणों के कारण जंगलों में इसकी संख्या अत्यधिक कम होती जा रही है। ग्रामीण लोग इसके फल और फूलों की सब्जी

पडरी की पौड और बीज

बनाकर खाया करते हैं। इसके अलावा, इसके प्रत्येक भाग का इस्तेमाल औषधि के रूप में किया जाता है। इसका उपयोग मुख्यता अपच, उल्टी, दस्त, बुखार, मधुमेह, यकृत की समस्या, अस्थमा, वायु, पित्त, कफ, हृदय रोग, बवासीर, मोटापा, श्वास की समस्या, सिरदर्द और हिचकी इत्यादि में किया जाता है।

इसकी लकड़ी का उपयोग फर्नीचर बनाने तथा जलावन के रूप में किया जाता है और इससे अच्छी किस्म का चारकोल प्राप्त होता है। हमारे संस्थान में बीज द्वारा इसके पौधे तैयार किये जा रहे हैं ताकि आने वाले समय में इसे अन्य जगह लगाया जा सके और संबंधित विभागों को प्रदान किया जा सके ताकि इस प्रजाति को बचाया जा सके। प्राकृतिक आवास में इसकी संख्या बहुत ही कम होती जा रही है। जंगलों में इसके वृक्ष बहुत लम्बे हो जाते हैं इस कारण इसके बीज का संग्रह करना बहुत ही कठिन हो जाता है। इसके बीज इतने हल्के और छोटे होते हैं जो फल के फटने के बाद बिखर जाते हैं और आसानी से नहीं मिलते हैं क्योंकि ये बहुत ही हल्के होते हैं जो हवा में उड़ जाते हैं।

इसका वृक्ष 10–20 मीटर ऊँचा हो सकता है तथा इसके तने की गोलाई 60–80 सेंटीमीटर हो सकती है। इसकी पत्तियाँ संयुक्त होती हैं जो 1–2 फ़ीट लम्बी हो जाती हैं तथा इसमें 3–4 जोड़ी पत्तियाँ होती हैं जो खुरदरी होती हैं। इसके फूल हल्के गुलाबी रंग के घंटी के सामान होते हैं और सुगन्धित होते हैं जो हमेशा शाखाओं के सिरे में पाए जाते हैं।

इसे प्रायः बीज, कटिंग और एयरलेयरिंग द्वारा लगाया जाता है। हमारे संस्थान में बीज द्वारा इसके अनेक पौधे तैयार किये गए हैं। इसके बीज बहुत छोटे होते हैं जो कागज की तरह हल्के होते हैं इसके एक फल में लगभग 30–40 बीज पाए जाते हैं। इसकी अंकुरण क्षमता 80–90 प्रतिशत तक पायी जाती है। जंगलों में इसकी अंधा–धुंध कटाई के कारण इसकी संख्या बहुत कम होती जा रही है। इस कारण भविष्य के लिए इसका संरक्षण अति आवश्यक है, नहीं तो इसे विलुप्त होने में बहुत समय नहीं लगेगा। क्योंकि यह एक बहुत ही उपयोगी औषधीय वृक्ष है, आयुर्वेद और स्थानीय वैद्य द्वारा इसका बहुतायत से उपयोग किया जाता है। इस प्रकार स्थानिक और गैर–स्थानिक विधि द्वारा इसे संरक्षित करने की जरूरत है। ताकि आने वाली पीढ़ी इसका इस्तेमाल कर सके। अंत में मैं यह कहना चाहूँगा की जंगलों में पाए जाने वाला यह औषधीय पौधा ग्रामीणों की आय का एक अच्छा स्रोत है जो जीविकोपार्जन में बहुत सहायक होता है, अतः इसका संरक्षण अति आवश्यक है।

***

तेलंगाना राज्य के कुछ महत्वपूर्ण नट वनोत्पाद

पंकज सिंह, कोडम चन्द्रप्रकाश,
मैरी चन्दना एवं वरुण सिंह
आनुवंशिकी और वृक्ष सुधार प्रभाग,
वन जैव विविधता संस्थान
दूलापल्ली, कोंपल्ली (एस.ओ.), हैदराबाद, 500100, तेलंगाना

भारत की जैव विविधता में कई प्रकार के वन अकाष्ठ उत्पाद वृक्ष उपलब्ध हैं। जिनमें से कुछ वृक्षों से नट की प्राप्ति होती है जोकि एक वन अकाष्ठ उत्पाद है। प्रायः जो फल केवल एक बीज रखता है और सूखने पर कड़े छिलके वाला अकेला बीज बनाता है उसे नट कहते हैं। नट प्रायः कठोर आवरण रखते हैं। तेलंगाना राज्य में 21214 वर्ग कि.मी. वन क्षेत्र हैं (वन सर्वेक्षण रिपोर्ट, 2022) एवं इनमें रहने वाले जनजाति और ग्रामीण लोग अपने जीविकोपार्जन हेतु इन वनों में स्थित वन अकाष्ठ उत्पाद पर निर्भर रहते हैं। तेलंगाना राज्य के वनों में कई प्रकार के वन अकाष्ठ उत्पाद, जैसे फल, बीज, नट, राल, वैक्स, छाल, कंद, फूल, शहद इत्यादि मौजूद हैं। इन सभी में से नट जैसे, मार्किंग नट, क्लीनिंग नट, और सोपनट जीविकोपार्जन हेतु संग्रहण किए जाने वाले महत्वपूर्ण वन अकाष्ठ उत्पाद हैं। इन नटों के बारे में संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है –

सोपनट (सपिंडस एमर्जिनैटस) :

यह एक सपिंडस वंश का वृक्ष है जिसे हिन्दी में रीठा के नाम से जाना जाता है, और तेलुगु में कुंकुडु के नाम से। यह एक 10–12 मीटर बड़ा वृक्ष होता है जिसमें भूरे रंग के फल और

काले रंग के बीज आते हैं (चित्र–1)। अक्टूबर से फरवरी तक इसमें फूल और फल आते हैं। तेलंगाना में नट संग्रहण का सही समय मार्च से मई के बीच माना जाता है।

जैसा कि विदित है कि इन नटों में कई प्रकार के सपोनिन पाये जाते हैं जोकि साबून के स्थान पर उपयोग किए जाते हैं। इसका उपयोग प्राकृतिक

चित्र 1 : सोपनट वृक्ष और फल और सूखा रीठा (स्रोत : कोडम चन्द्रप्रकाश)

शैम्पू और हेयर क्लेन्सर बनाने में भी होता है। यह नट तेलंगाना में रहने वाले लोगों के लिए एक महत्वपूर्ण वन अकाष्ठ उत्पाद है और संग्रहकर्ताओं से 40 रुपए/किग्रा. की दर से तेलंगाना गिरिजन सहकारी निगम द्वारा खरीदा जाता है (तेलंगाना गिरिजन सहकारी निगम की धनसूची)। इसके अलावा, इस नट का उपयोग विभिन्न बीमारियों के उपचार में भी किया जाता है।

मार्किंगनट (सेमिकार्पस एनाकार्डिअम) :

मार्किंगनट, जिसे हिन्दी में भिलवा के नाम से जाना जाता है, एक एनाकार्डेसी वंश का वृक्ष है। तेलुगु में इसे नल्ल जीडी के नाम से जानते हैं। यह एक 12–14 मीटर का बड़ा वृक्ष है (चित्र – 2)। दिसम्बर से जनवरी तक इसमें फूल और फल आते है और तेलंगाना में नट संग्रहण का उचित समय मार्च से मई के बीच माना जाता है।

जैसा कि नाम से विदित है कि इन नटों का उपयोग कपड़ों पर मार्किंग करने हेतु किया जाता रहा है। इसका उपयोग विभिन्न बीमारियों के उपचार में भी किया जाता है। संग्रहकर्ताओं द्वारा इस महत्वपूर्ण वन अकाष्ठ उत्पाद को संग्रह के पश्चात 12 रुपए/किग्रा की दर से तेलंगाना गिरिजन सहकारी निगम द्वारा खरीदा जाता है (तेलंगाना गिरिजन सहकारी निगम, 2022 धनसूची)।

चित्र 2 : मार्किंगनट वृक्ष और फल; स्रोत : कोडम चन्द्रप्रकाश

क्लीनिंगनट (स्ट्रीकनस पोटेटोरम) :

यह एक लोगनीएसी वंश का वृक्ष है। तेलुगु में इसे चिल्ला गिंजलू के नाम से जानते है और हिन्दी में निर्मली। यह एक 8–10 मीटर का वृक्ष है (चित्र–3)। नवम्बर से अप्रैल तक इसमें फूल और फल आते हैं और तेलंगाना में नट संग्रहण का उचित समय नवम्बर से मार्च के बीच माना जाता है। इन नटों का उपयोग पानी को साफ करने में किया जाता रहा है साथ ही साथ इसका उपयोग विभिन्न बीमारियों के उपचार में भी किया जाता है। संग्रहकर्ताओं द्वारा इस महत्वपूर्ण वन अकाष्ठ उत्पाद का संग्रह करके 35 रुपए/किग्रा की दर से तेलंगाना गिरिजन सहकारी निगम द्वारा खरीदा जाता है (तेलंगाना गिरिजन सहकारी निगम, 2022 धनसूची)।

चित्र 3 : क्लीनिंगनट वृक्ष और सूखा नट (स्रोत : कोडम चन्द्रप्रकाश)

साभार : लेखकगण, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, नई दिल्ली की काम्पा योजना "पारिस्थितिक स्थिरता और उत्पादकता वृद्धि के लिए वानिकी अनुसंधान को सुदृढ़ करना, (एस.एफ.आर.ई.एस.पी.ई)" द्वारा पोषित परियोजना "संरक्षण और मूल्यवर्धन के माध्यम से वन अकाष्ठ उत्पाद का सतत प्रबंधन" के लिए आभारी है। लेखकगण, तेलंगाना वन विभाग एवं तेलंगाना गिरिजन सहकारी निगम, हैदराबाद के सहयोग के लिए भी आभारी हैं।

***

ट्रांस–हिमालय : एक अनूठा पारितंत्र

दुष्यंत, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी,
वन परिस्थितिकी एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान
कॉनीफ़र कैम्पस, पंथाघाटी, शिमला

प्रकृति, हमारे चारों ओर विद्यमान सबसे बड़ी शाश्वत सच्चाई है, जिसे हम हर पल अपनी ज्ञानेन्द्रियों से देख, सुन, स्पर्श और महसूस कर सकते हैं। कुदरत का अनंत सौंदर्य, सदियों से मनुष्य के लिए सुख और आनंद का पर्याय रहा है। इसीलिए, हमारे वेदों, उपनिषदों और पुराणों में, प्रकृति और मनुष्य के गहरे संबंध का बहुतायत में वर्णन मिलता है। भारतीय साहित्य में भी मानव और प्रकृति के बारे में कई कृतियाँ लिखी गई हैं। वास्तव में, प्रकृति शब्द "परा" और "कृति" दो शब्दों से मिलकर बना है। परा का अर्थ है सबसे उत्तम या श्रेष्ठ और कृति का अर्थ है सृजन। पृथ्वी पर पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के वन एवं वनस्पतियाँ, अनेकों किस्म के जीव–जंतु और तरह–तरह के पारितंत्र, भगवान द्वारा सृजित प्रकृति के विविध स्वरूप एवं अनूठी रचनाएँ हैं। हमारे देश में उत्तर की ओर स्थित, ट्रांस–हिमालय का क्षेत्र भी ऐसी ही एक विशिष्ट जैव–भौगोलिक इकाई है, जिसका भौतिक और जैविक दृष्टिकोण से अद्वितीय महत्व है। इंडियन ट्रांस–हिमालय का सम्पूर्ण भू–भाग वर्षा छाया (रेन–शैडो) क्षेत्र के अंतर्गत आता है और यहाँ बहुत कम वर्षा (<50 मिमी) होती है। इसके अतिरिक्त इन क्षेत्रों में तीक्ष्ण परा–बैंगनी किरणें, तापमान में अधिक उतार–चढ़ाव, अत्यधिक शुष्कता, कम वायुमंडलीय दबाव, कम ऑक्सीजन, तेज हवाएँ और सर्दियों के दौरान भारी बर्फबारी होती है। समुद्रतल से औसतन 4000 मीटर से अधिक ऊंचाई पर स्थित, मरुस्थलीय वातावरण से सदृश्यता के कारण इस विलक्षण भू–भाग को सामान्य तौर पर शीत–मरुस्थल या ठंडे रेगिस्तान के रूप में जाना जाता है। हमारे देश में लगभग 1,86,200 वर्ग किमी का क्षेत्र ट्रांस हिमालय में फैला हुआ है और यह देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के 6% से अधिक हिस्से को निरूपित करता है।

एशिया महाद्वीप में, ट्रांस–हिमालय का अधिकतर भाग पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन और तिब्बत के अंतर्गत आता है। जबकि भारतीय परिप्रेक्ष्य में, वृहद व विशाल हिमालय (ग्रेटर हिमालय) की उत्तरी शिखा रेखा में जांस्कर और काराकोरम पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा हुआ भू–खंड ट्रांस–हिमालय को निरूपित करता है। इसमें मुख्य रूप से हिमाचल प्रदेश के लाहौल व स्पीति जिले की स्पीति घाटी, किन्नौर जिले का पूह उप–मंडल, केंद्र शासित प्रदेश लद्दाख, उत्तराखंड में पिथौरागढ़ व चमोली के भाग और सिक्किम राज्य के ऊपरी हिस्से भी सम्मिलित हैं। भारतीय ट्रांस हिमालय अनूठा और विशिष्ट क्षेत्र है, और यहाँ का सम्पूर्ण परिदृश्य ही प्रकृति द्वारा प्रदत्त अद्भुत विशेषताओं से भरा पड़ा है जिसमें सिंधु, श्योक, द्रास, कार्गिल, नुब्रा, सुरु, चांगथांग, रोपा, हांगों, पिन्न, स्पीति इत्यादि विभिन्न घाटियां विषमता और सुंदरता का बेजोड़ मेल प्रस्तुत करती हैं। इन घाटियों में हिमाच्छादित ऊंचे–ऊंचे दर्रे दूर–दूर तक फैली बंजर–वीरान स्थलाकृतियाँ, प्राकृतिक झीलें, हिमनदों (ग्लेशियरों) से निकलने वाले नदी–नाले, दुर्लभ वन्यप्राणी एवं औषधीय पौधे, जगह–जगह पर स्थित अध्यात्मिकता के जीवंत स्थल बौद्ध–मठ एवं गोम्पा, वनस्पतिविहीन मिट्टी के नग्न पहाड़ों पर आश्चर्यजनक रूप से बसे गाँव, सादा जीवन शैली वाले सरल स्वभाव के लोग

सभी कुछ तो विशिष्ट एवं अलग प्रतीत होते हैं। ट्रांस हिमालयी शीत मरुस्थलीय पारिस्थितिक तंत्र की इन्हीं विशेषताओं के कारण इसे 'वंडर लैंड ऑफ इंडिया' की उपमा प्रदान की जाती है।

ट्रांस–हिमालयन स्पीति–घाटी में बसा एक छोटा सा गाँव

हिमालय के अन्य क्षेत्रों की तुलना में ट्रांस–हिमालय में जलवायु की विषम परिस्थितियों और अत्यधिक शुष्कता के कारण वनस्पति बहुत कम और विरल हैं। परंतु यह क्षेत्र अद्भुत स्थानिक जैव–विविधता को प्रदर्शित करता है। ट्रांस–हिमालय में वनस्पतियों और जीवों की कई दुर्लभ और विशेष किस्में पायी जाती हैं। कठोर जलवायु परिस्थितियों एवं शुष्क वातावरण में वास करने के लिए यहाँ पाये जाने वाले जीवों और वनस्पतियों में विशेष प्रकार के अनुकूलन देखने को मिलते हैं। वनस्पतियों में, मुख्य रूप से भोजपत्र, जूनीपर, विलो और पॉपुलर के पेड़ और कई प्रकार की कंटीली और बौनी झाड़ियों का प्रभुत्व रहता है।

छरमा – एक उपयोगी पौधा

पौधों का जड़–तंत्र व्यापक रूप से विकसित होता है, जो उच्च वेग वाली हवाओं में पौधों को दृढ़ बनाए रखने के अलावा सर्दियों के दौरान आवश्यक खाद्य भंडारण का कार्य भी करता है। महत्वपूर्ण झाड़ीदार प्रजातियों में जुनिपर, छरमा (हिप्पोफे), सिया (रोजा वेबियाना), सोमलता (एफेड्रा जियारडियाना) इत्यादि शामिल हैं। छोटे शाकीय पौधों में रत्न जोत, सलामपंजा, कड्डु, खुरसानी अजवाईन, पुष्करमूल और मन्नू आदि उच्च औषधीय गुणों वाली बहुत सारी बहुमूल्य जड़ी–बूटियाँ मिलती हैं, जिनका उपयोग व्यापक रूप से अमची या तिब्बती चिकित्सा पद्धति में किया जाता है।

***

इसके अतिरिक्त, वैज्ञानिकों द्वारा ट्रांस–हिमालयी क्षेत्रों से स्तनधारियों, पक्षियों, मछलियों, सरीसृपों और उभयचर जीवों की विविध प्रजातियाँ अभिलिखित की गई हैं। यहाँ पर पाए जाने वाले वन्य जीवों में हिम तेंदुआ, लाल लोमड़ी, तिब्बती भेड़िया, किआंग, हिमालयन आइबेक्स, हिमालयन मर्मोट, हिमालयन ब्लू शीप इत्यादि प्रमुख प्रजातियाँ हैं। शीत मरुस्थलीय पक्षियों में मुख्यतः हिमालयन स्नो कॉक, गोल्डन ईगल, चुकरपैट्रिज, स्नो पैट्रिज, ब्लू रॉक पिजन, स्नो पिजन, लैमर्जियर शामिल हैं। लद्दाख बैंडेड अपोलो और रेड अपोलो किस्म की तितलियों की कुछ दुर्लभ प्रजातियाँ ट्रांस–हिमालय में पायी जाती हैं। ठंडे रेगिस्तान में पायी जाने वाली प्राकृतिक झीलें और आर्द्र भूमि क्षेत्र (वेटलैंड्स) स्थल, जलीय जीवों और प्रवासी पक्षियों की विविध प्रजातियों के लिए जलीय पारितंत्र के रूप में विशिष्ट आवास प्रदान करती हैं। चन्द्रताल, सूरजताल, पेंगोंग जैसी सुंदर प्राकृतिक झीलें अपने पारिस्थितिक, पर्यटन, पौराणिक तथा धार्मिक मूल्यों के कारण राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।

हिमालयन मर्मोट

मनमोहक पेंगोंग झील (लद्दाख)

शीत मरुस्थलीय जलीय पारितंत्र

भारतीय शीत–मरुस्थलीय पारितंत्र न केवल जैव–विविधता का केंद्र है अपितु यह मानव के लिए भोजन, पानी, वायु, परागण, औषधीय पौधों और आवास के रूप में बहुत सारी पारिस्थितिक सेवाएँ प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, भारतीय उप–महाद्वीप की प्रमुख नदी प्रणालियाँ–सिंधु, चिनाब, सतलुज, भागीरथी–अलकनन्दा आदि का उद्गम स्थल भी ट्रांस–हिमालय में है। लगभग 2500 ईसा पूर्व, भारत के इतिहास से संबंधित विश्वविख्यात हड़प्पा संस्कृति की जन्म–स्थली भी सिंधु घाटी रही है।

वास्तव में, भारतीय ट्रांस–हिमालय का सारा क्षेत्र आकर्षक परिदृश्यों, अतुल्य संस्कृति तथा शानदार जैव–विविधता का सुंदर समावेश है। शहरों के शोरगुल और बड़े नगरों की भागम–भाग भरी ज़िंदगी से दूर ट्रांस–हिमालय में न केवल प्रकृति के मंत्रमुग्ध करने वाले स्वरूप के सदृश साक्षात्कार

होते हैं, अपितु मनुष्य, प्रकृति और अध्यात्म के गहरे संबंध का भी बोध होता है। शीत–मरुस्थलीय पारिस्थितिकी और जैव विविधता पर लगातार बढ़ते मानवीय दबाव और जलवायु परिवर्तन के कारण इस नाजुक पारिस्थितिकी तंत्र पर गंभीर खतरा उत्पन्न हो रहा है। यहाँ की कुछ वनस्पतियाँ और वन्यजीव की प्रजातियाँ या तो विलुप्त हो चुकी हैं या उन्हें संकटग्रस्त श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है। विशेषज्ञों के अनुसार, हिम तेंदुआ और हिमालयन मर्मोट जैसी संवेदनशील प्रजातियों पर जलवायु परिवर्तन के स्पष्ट प्रभाव देखने को मिल रहे हैं। बहुत जरूरी है कि ट्रांस–हिमालय की जैव–विविधताएं जीवन, संस्कृति, पारिस्थितिक और पर्यावरणीय मूल्यों के संरक्षण पर अधिकाधिक ज़ोर दिया जाए और इस धरा पर प्रकृति का वैभव चिरकाल तक बना रहे।

***

पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय में राजभाषा नीति का कार्यान्वयन

मंत्रालय के राजभाषा प्रभाग का कार्य भारत के संविधान, राजभाषा अधिनियम, 1963 (यथा संशोधित 1967), राजभाषा नियम, 1976 (यथा संशोधित 1987, 2007 एवं 2011), वार्षिक कार्यक्रम और राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा समय–समय पर जारी आदेशों में विहित संघ की राजभाषा नीति का समुचित अनुपालन सुनिश्चित करना है। इसके तहत मंत्रालय में महत्वपूर्ण दस्तावेज़ों का अनुवाद कार्य और राजभाषा नीति का कार्यान्वयन शामिल है। वर्ष 2022 के दौरान राजभाषा प्रभाग द्वारा किए गए महत्वपूर्ण कार्यों का ब्यौरा निम्नानुसार है :–

- **राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें** : उक्त अवधि के दौरान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तीन तिमाही बैठकें आयोजित की गईं जिनमें मंत्रालय के प्रभागों/अनुभागों के साथ–साथ मंत्रालय के दिल्ली–एनसीआर स्थित अधीनस्थ कार्यालयों में राजभाषा नीति के कार्यान्वयन की स्थिति की समीक्षा की गई।
- **हिंदी कार्यशालाएं** : इस अवधि के दौरान मंत्रालय एवं इसके नियंत्रणाधीन कार्यालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों को अपना शासकीय कार्य अधिकाधिक हिंदी में करने में समर्थ बनाने हेतु प्रशिक्षण देने के लिए 02 हिंदी कार्यशालाएं आयोजित की गईं।
- **निरीक्षण** : संसदीय राजभाषा समिति की तीसरी उप समिति ने मंत्रालय तथा इसके 09 नियंत्रणाधीन/अधीनस्थ कार्यालयों का राजभाषा संबंधी निरीक्षण किया। मंत्रालय के राजभाषा प्रभाग के अधिकारियों ने भी 16 क्षेत्रीय/अधीनस्थ कार्यालयों का राजभाषायी निरीक्षण किया है।
- **मेदिनी पुरस्कार योजना** : पर्यावरण संबंधी विषयों पर मूल रूप से हिंदी में पुस्तक लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए मंत्रालय की मेदिनी पुरस्कार योजना 2020–21 के अंतर्गत पुरस्कृत पुस्तकों के लेखकों को माननीय पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन राज्य मंत्री श्री अश्विनी कुमार चौबे द्वारा दिनांक 30 सितम्बर, 2022 को आयोजित समारोह के दौरान पुरस्कार एवं प्रशस्ति–पत्र प्रदान किए गए।

मंत्रालय के राजभाषा संबंधी निरीक्षण के दौरान माननीय संसदीय राजभाषा समिति के सदस्य एवं मंत्रालय के अधिकारीगण

मेदिनी पुरस्कार के विजेताओं के साथ माननीय पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन राज्य मंत्री श्री अश्विनी कुमार चौबे तथा राजभाषा प्रभाग के अधिकारी एवं विशिष्ट अतिथि

- **पर्यावरण पत्रिका का प्रकाशन** : मंत्रालय की 'पर्यावरण' पत्रिका का 70वां अंक प्रकाशित कर दिया गया है और इसी क्रम में 71वां अंक प्रकाशित किया जा रहा है।

- **हिंदी माह का आयोजनः** प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष भी दिनांक 01.09.2022 से 30.09.2022 तक मंत्रालय, एनएईबी और सीसीयू के कार्मिकों के लिए संयुक्त रूप से हिंदी प्रयोग संवर्धन, जागरूकता एवं प्रोत्साहन माह–2022 आयोजित किया गया जिसके दौरान 07 हिंदी प्रतियोगिताएं आयोजित की गईं। प्रतियोगिताओं के विजेताओं को माननीय पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन राज्य मंत्री श्री अश्विनी कुमार चौबे की उपस्थिति में 30 सितम्बर, 2022 को प्रशस्ति–पत्र प्रदान किए गए।

माननीय संयुक्त सचिव महोदय से पुरस्कार प्राप्त करते हुए हिंदी माह, 2022 के पुरस्कार विजेता

- **हिंदी सलाहकार समिति की बैठक** : मंत्रालय की पुनर्गठित हिंदी सलाहकार समिति की पहली बैठक दिनांक 04 जनवरी, 2023 और दूसरी बैठक दिनांक 20 जून, 2023 को माननीय पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्री श्री भूपेन्द्र यादव जी की अध्यक्षता में आयोजित की गई। इस बैठक में माननीय सांसद सहित समिति के गैर–सरकारी सदस्यों, मंत्रालय की सचिव महोदया, अन्य वरिष्ठ अधिकारियों, नियंत्रणाधीन कार्यालयों के प्रमुखों आदि ने भाग लिया। बैठक के दौरान मंत्रालय और इसके नियंत्रणाधीन कार्यालयों में राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग से संबंधित कार्यों की समीक्षा की गई। माननीय मंत्री महोदय और उपस्थित गैर–सरकारी सदस्यों ने हिंदी के काम में सुधार लाने के लिए अपने बहुमूल्य सुझाव दिए।

माननीय मंत्री महोदय की अध्यक्षता में मंत्रालय की हिंदी सलाहकार समिति की बैठकों का आयोजन

*****

हिंदी प्रयोग संवर्धन, जागरूकता एवं प्रोत्साहन माह–2022 के दौरान आयोजित प्रतियोगिताओं में प्रथम पुरस्कार प्राप्त करने वाला निबंध एवं कविता

बढ़ती भौतिकता, घटते मानवीय मूल्य

प्रवीर दूबे,
सहायक अनुभाग अधिकारी

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में जो देखता है, सुनता है उसी प्रकार से आचरण भी करता है। वर्तमान समय में भौतिकता के बढ़ते प्रभाव के कारण मानवीय मूल्यों में कमी आती जा रही है जिसे साफ देखा और महसूस किया जा सकता है। प्राचीन समय में लोगों के मध्य स्वयं और समाज की प्रगति हेतु एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा की भावना हुआ करती थी जिसे आधुनिक समय में बढ़ती भौतिकता की आंधी ने जहरीला बना दिया है। इस बढ़ते भौतिकतावाद के कारण मानवीय मूल्यों में जो ह्रास हो रहा है उसे निम्न बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है :–

- उपभोक्तावाद की बढ़ती संस्कृति के कारण सदियों से चले आ रहे प्राचीन संस्कारों, आध्यात्मवाद आदि को रूढ़िवादी माना जाने लगा है। सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव के कारण भी लोग सदाचार, सात्विक आचरण आदि को ढोंग मानने लगे हैं। सोशल मीडिया पर साझा किए जाने वाले अल्प–अवधि चलचित्रों में मजाक के नाम पर शिक्षकों एवं बुजुर्गों का अपमान किया जाने लगा है। प्राचीन समय में गुरु को भगवान का दर्जा दिया जाता था। संस्कृत के एक श्लोक के माध्यम से यह कहा भी गया है–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरूः साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः

प्राचीन समय में गुरुकुल हुआ करते थे जो विद्यार्थियों में सदाचार का बीज बोते थे और उनमें एक अनुशासन की भावना पैदा करते थे जो आजकल विलुप्त से हो गए हैं।

- बढ़ते भौतिकतावाद ने आधुनिक शिक्षा प्रणाली पर भी गहरा प्रभाव डाला है। बढ़ते भौतिकतावाद के कारण स्कूलों, महाविद्यालयों में बढ़ी हुई फीस को शैक्षिक गुणवत्ता का मानक माना जाने लगा है। स्कूलों, विद्यालयों में विद्यार्थियों को संस्कारी बनाने और उनमें मानवीय मूल्यों का संचार करने की बजाय एक जहरीली प्रतिस्पर्धा की भावना पैदा की जाने लगी है जिससे छात्रों में ईर्ष्या और अवसाद का भाव आ गया है।

- भौतिकतावाद की इस आंधी में भोग के अधिक से अधिक सामान जुटाने की एक होड़ सी लग गई है जिससे मनुष्य के भीतर का संतोष खत्म हो गया है। संस्कृत में एक कहावत है– **"संतोषम् परमम् सुखम्"** अर्थात संतोष से बड़ा कोई सुख नहीं है। हम सभी जानते हैं कि मनुष्य की इच्छाओं का कोई अंत नहीं है। आज जो व्यक्ति साइकिल का प्रयोग कर रहा है वह स्कूटर, मोटरसाइकिल खरीदने के स्वप्न देखता है। जो व्यक्ति स्कूटर से चल रहा है वह कार खरीदने के बारे में सोच रहा है। बैंकों

के कारण बढ़ती लोन संस्कृति की वजह से मनुष्य अपनी हैसियत से ज्यादा पैसे खर्च कर रहा है और बाद में दुखी होता है।

- भौतिकतावाद के प्रभाव के कारण समाज में सहानुभूति एवं हमदर्दी की भावना खत्म सी हो गई है। इस प्रभाव के कारण लोगों के मध्य ईर्ष्या की भावना ने जन्म ले लिया है। प्राचीन समय में लोग एक दूसरे का दुख दर्द समझते थे, अब लोग दूसरों के दुखों में सुख की अनुभूति करने लगे हैं। लोगों में सामाजिक व्यावहारिकता की कमी आई है। प्राचीन समय में लोग एक साथ उठते बैठते थे और एक दूसरे की मदद की भावना रखते थे।

- भौतिकतावाद की प्रवृत्ति ने बाजार संस्कृति को जन्म दिया है जिससे नैतिक मूल्यों में भी पतन हो रहा है। भौतिकतावाद के कारण व्यापारिक संस्थानों, अस्पतालों इत्यादि में नैतिकता की कमी साफ महसूस की जा सकती है। व्यापारिक संस्थान व्यापार बढ़ाने के लिए किसी भी प्रकार की गलत युक्ति का प्रयोग करने में संकोच नहीं करते हैं जिसने भ्रष्टाचार की भयानक बीमारी को जन्म दिया है। अस्पतालों में मरीजों के उचित इलाज की बजाय उससे अधिक से अधिक धन ऐंठने का प्रयत्न किया जाने लगा है।

- भौतिकतावाद की वजह से समाज के अर्थपूर्ण रिश्तो में कमी महसूस की जाने लगी है। प्राचीन समय में परिवार के सभी सदस्य साथ में उठते बैठते थे, एक–दूसरे के सुख–दुख साझा करते थे। भौतिकतावाद की इस आंधी ने परिवार के प्रत्येक सदस्य के हाथों में एक मोबाइल फोन दे दिया है और वह उसी में व्यस्त रहते हैं। सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव के कारण विशेषकर युवा वर्ग सोशल मीडिया को ही अपनी वास्तविक दुनिया मानने लगा है। वह सोशल मीडिया के छद्म रिश्तों और जीवन के वास्तविक रिश्तों के मध्य अंतर करना भूल गया है।

- भौतिकतावाद के कारण समाज में सहिष्णुता और प्रेम की भावना में कमी आई है। इस प्रभाव के कारण लोग छोटी–छोटी बातों पर अपना धैर्य खोने लगे हैं। लोगों के पास एक दूसरे के लिए समय ही नहीं बचा है जिससे समाज में परस्पर प्रेम की भावना भी कम हुई है। एकल परिवारों का बढ़ना भी भौतिकतावाद का एक दुष्प्रभाव है।

- भौतिकतावाद की वजह से सामाजिक व्यावहारिकता में कमी साफ महसूस की जा सकती है। जैसाकि कहा गया है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, यदि सामाजिक व्यावहारिकता में कमी आएगी तो चाहे–अनचाहे इसके दुष्परिणाम देखने को मिलेंगे। शहरी क्षेत्रों में आपराधिक मामलों में वृद्धि इसका जीता जागता उदाहरण है। यहां तक कि लोग अपने पड़ोसियों से भी परिचित नहीं हैं।

अंत में इतना ही कहना उचित होगा कि हमें भौतिकतावाद की इस प्रवृत्ति को छोड़कर संतोष की भावना को अपनाना चाहिए जोकि सुखी रहने की असली भावना है। मनुष्य को पैसे के पीछे भागने और अधिक से अधिक संचय करने की प्रवृत्ति को छोड़कर अपने प्राचीन संस्कृति और संस्कारों को सीखने की आवश्यकता है जोकि व्यक्ति और समाज दोनों के लिए भविष्य में अति उपयोगी होगा।

''भौतिकतावाद से बनाओ दूरी।
सुख, समृद्धि के लिए यह है जरूरी।''

***

जीवन संघर्ष

नमिता यादव, **एमटीएस**

शोर है– शोर है, शोर ये घनघोर है,
इस प्रगाढ़ शोर में मन–चित्र मौन है,
संघर्ष तो है स्वयं से, तुझे प्रतिद्वंद्वी की तलाश है,
क्यों हताश है, निराश है
संघर्ष मात्र चरित्र–विकास है।।

अगर नित्त–कर्म प्रयास है,
कुछ करने की आस है।
अगर लक्ष्य अर्जुन–सा खास है,
ह्रदय श्री नारायण का वास है
तो क्यों मन हताश है निराश है,
संघर्ष मात्र चरित्र–विकास है।

जीवन संघर्ष है समुद्र–मंथन,
उपहार अमृत संग विषपान है।
मेहनत अनुरूप ही होगा परिणाम
अगर आत्म में विश्वास है।
क्यों हताश है, निराश है
संघर्ष मात्र चरित्र–विकास है।

*****

LiFE
भारत सरकार
पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय
हिंदी सलाहकार समिति की बैठक

नई दिल्ली

नाटक प्रस्तुति
ब्लैक पर्ल आर्ट सोसाइटी
के कलाकारों द्वारा

भारत सरकार
पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की
हिंदी सलाहकार समिति की बैठक

भारत के रामसर साइट

आजादी के 75 वर्ष में 75 रामसर साइट नामित

आज़ादी का अमृत महोत्सव

G20 भारत 2023 INDIA
वसुधैव कुटुम्बकम्
ONE EARTH • ONE FAMILY • ONE FUTURE

इंदिरा पर्यावरण भवन, जोर बाग रोड़, नई दिल्ली–110003